TEXT FLY WITHIN
THE BOOK ONLY

UNIVERSAL LIBRARY

OU_180753

UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83 R14G Accession No. G.H. 1716

Author राघव, रांगेय

Title घरौंदे १९४६

This book should be returned on or before the date last marked below.

घरौंदे

लेखक

रांगेय राघव

सरस्वती प्रेस बनारस

कॉपीराइट, १९४६
रांगेय राघव

प्रथम संस्करण, फरवरी १९४६

मूल्य
५)

: मुद्रक :
श्री प त रा य,
सरस्वती प्रेस, बनारस।

—प्रिय

बाबू

को

—•:०—

दो शब्द

प्रस्तुत उपन्यास मैंने सन् १९४१ में लिखा था। इसके समाप्त होने के एक सप्ताह बाद रूस पर जर्मनी ने आक्रमण किया था। उस समय तक युद्ध का, नागरिक जीवन पर (यद्यपि ग़ुलाम देश में वह कुछ नहीं होता) विशेष होते हुए भी प्रकट रूप में सीधा प्रभाव नहीं पड़ा था। इस उपन्यास का विषय, जून सन् १९४१ के पहले का है।

उस समय मैं कॉलेज में बी. ए. का विद्यार्थी था। अतएव, मैं उसी क्षेत्र को ढंग से अपना सका। पात्रों में मैंने अपने समाज के विभिन्न स्तरों का, तथा अपने देश के विभिन्न विचारों का एक साथ चित्रण करने का प्रयत्न किया है। मुझे विश्वास है, कुछ सीमा तक मैं सफल हुआ हूँ।

रांगेय राघव

१

'आरंभ'

भूमिका

गर्मी की धूल भरी साँझ, जिसमें थमी लू की भभक पसीने का ख़ुमार झलका रही है, एक बहुत हल्की लाली में झपका खाने लगी है। सड़क। चौराहा पास है जिसपर लाल पगड़ीवाला कोई अफ़सर अपने जीवन की थकान को जेठ के तड़पते अजगर-सा फुंकार और अकुलाहट भरा पाकर भी अपने काम से कम तनख़्वाह की तबाही भरी तसल्ली और संतोष में गाड़ी—प्रगति—और चल संसार को हाथ दिखा रहा है, आदमियों को ठीक राह पर चला रहा है। उसके सिर पर दिन में ही बिजली का लट्टू जल रहा है, क्योंकि शहर की चुंगी की शाम आजकल भी छः ही बजे हो जाती है जैसी कि शिमले में अक्सर होती होगी; लट्टू में न चमक है न रोशनी, मगर वह जल रहा है, क्योंकि वह सफ़ेद की जगह पीला नज़र आ रहा है। धूल का अकस्मात् उठता ग़ुबार, सुदूर पश्चिम के वाहन—जो पूँजीवाद की उपज होकर उसे मदद दे रहे हैं—उन्हें सलामी बजा देता है। मक्खियाँ धीरे-धीरे कम होने लगी हैं। कुछ ग़रीबी के कलेवे, बहुत से अमीरी के तरसते पुतले और बीच के रुपये के लालची। यह सड़क है, हर ज़माने में नई तरह से बनाई गई और हर नये ज़माने ने उसे कच्चा क़रार दिया।

यूनिवर्सिटी का एक हिस्सा। कालेज अपने सिर पर सूली लिये खड़ा है। इधर उधर बहुत सी चीज़ें हैं। और यह रेस्त्रां है, जिसे सिर्फ अंगरेज़ी पढ़े-लिखे रेस्टोरेंट, अधकचरे रेस्टूँरा और बेपढ़े-लिखे यानी हिंदुस्तानी होटल कह अपना नाम देकर पुकारने की तृष्णा दिखाते हैं। एक बुरे दाँतोंवाला बनिया—टुटपुँजिया—एक किनारे एक रंग-उड़ी कुर्सी पर बैठकर सामने मेज़ पर अपनी छोटी पूँजी को बढ़ाने की कोशिश कर रहा है। उसका लड़का अपने से कम इज़्ज़त पानेवाली बहिन से खेल रहा है, मचल रहा है और बनिया जो मास्टर कहलाता है, कभी उसे प्यार से देखता है और कभी अपने नौकर पर शुबहे भरी नज़र डालकर अपनी लंबी कलम

को छोटी दावात में तिरछा गिराकर पुरानी निब में स्याही भरने की कोशिश करने लगता है।

यहाँ चहल-पहल। दिन में सूरज की रोशनी, रात में बिजली की। लड़के, गुज़रती लड़कियाँ। शोरगुल। गधे, गाय, भैंस, कभी कदाच ऊँट भी। लॉरी, ताँगे, इक्के, मोटर, साइकिल और ग़ुलाम आदमियों की आज़ादी को अजीब लगनेवाली मुर्दा-दिल आराम पसंद शोखी।

सिगरेट का पैकेट बीड़ी के बंडल से सटा पड़ा है। सिगरेट को पैसे का नाज़ है, बीड़ी को अपने पीनेवाले की मेहनत का।

सिगरेट कहती है—मैं कितनी गोरी हूँ, सुंदर! सुंदर!

बीड़ी कहती है—मैं आती आँधी के रंग की हूँ, मैं फौजों की वर्दी हूँ! और तू?

सिगरेट बड़बड़ाती है—अरी मेरा रंग रुपये का सा है, तेरा?

बीड़ी भुनभुनाती है। सिगरेट चाँदी की पन्नी से उझक कर देखती है।

'अरे,' कोई कहता है, 'दो डबल का बीड़ी का बंडल तो देना।'

तभी कोई हल्के से मगर घमंड से कहता है—'प्लेयर्स नेवीकट एक पैकेट!' और एक चवन्नी की हल्की खन्न की आवाज़।

पहले सिगरेट; फिर बीड़ी, और जैसे दो पैसे का बंडल एक अहसान सा हुआ है।

मास्टर सिर उठाकर देखता है। लड़का इस वक्त या तो बर्फ़ कूट रहा है या किसी के लिए पान लगा रहा है।

काम का वक्त है, फ़ुर्सत का नहीं। दुनिया इतनी आसान नहीं जितनी समझी जाती है। अपना अपना रहना, कमाना, खाना, पीना, चैन की तरफ़ बढ़ाते हैं और ऊपर ईश्वर है, सो तो है ही, उसे कौन मना कर रहा है।

अब कुछ दिन बाद फिर लड़कों की भीड़भब्बड़ होगी और कुछ दिन उस शोरगुल की ताज़गी में पूर्व और पश्चिम मिलकर नये उत्साह से मध्यवर्ग की कसौटी पर जमने की ज़्यादा से ज़्यादा कोशिश करेंगे। कोई सूट में होगा और कोई निकर और खुले कॉलर की कमीज़ पहनकर सूटवालों का मज़ाक उड़ायेगा कि कमबख़्त अंगरेज़ों की नक़ल कर अपने को ख़्वामख़्वाह तंग करते हैं। कभी अंगरेज़ भी गर्मी

में टाई बांधते हैं और अपनी पूर्वी चाल पर उसे गर्व से मुस्कराना भी पड़ेगा। साइकिलवाला बगल की दूकान से बिल लायेगा—नाम अगरेज़ी में लिखा जिसमें दो हिज्जे की गलतियाँ होंगी, बीच में हिंदी जो किसी मिडिलपास की लिखावट की पसलियों पर चोट करती सी होगी, और नीचे बहुत बार लिख-लिखकर आदी हो गये हाथ की दस्तखत।

'कहो भाई मनोहर, अच्छे तो हो?' लड़का कहने लगा।

'क्यों नहीं बाबूजी, आपकी दुआ है। अब तो आप जल्दी से पास भ्रस करके कलट्टर बन जाइए तो मैं आप ही के संग चलूँगा।'

'ज़माना तंग है' कोई बुड्ढा कहेगा जो बुढ़ापे की बनिस्बत अपनी जवानी के दिनों की यादगारों में बहुत मशगूल होगा। ज़माना हमेशा से तंग है, मगर उनकी नज़र में नई पीढ़ी हमेशा बदकिस्मत और नया ज़माना हमेशा बद से बदतर होता जा रहा है। वे सोलह बरस की उम्र तक हाँ और न का फ़र्क नहीं जानते थे, सो आजकल के लड़के अपने हाथों ही अपनी जिंदगी बरबाद करने लगते हैं।

'नौकरी तो आपको मिलके रहेगी' पास का दर्ज़ी जो .फुर्सत में खड़ा है, कहता है।

'अजी बस में तो चला', कहता है रशीद कि, चलनेवालों का अपने साथ—इस ग़रीब विद्यार्थी के साथ एक झुंड बन जाता है—वे लोग जिनकी बातें ज़रूर चलती हैं, मगर पेट भूखा रहकर भी पैर कभी चलने की तक़लीफ़ नहीं करते। उनकी बेकारी पर विद्यार्थी की नौकरी है, जो कहलाती है अफ़सरी! ठीक है, जब तक कालेज में हैं तब तक तो ऐश है ही। आगे जिसने पैदा किया है वह खाने को देगा।

फिर एकाध बात, मगर बिल चुकाने का कहीं नाम नहीं आता, और न साइकिल-वाले को फ़िक्र है; क्योंकि तीन रुपये के हिसाब में एक रुपया और साढ़े तीन आने के सिवाय बाकी सब एक तरफ़ा ब्याज है।

हर शुरू का एक आख़ीर होता है, आज़ाद और चेतन इस आख़ीर को आदि ही मानता है। मगर .ग़ुलाम दिमाग़ और .ग़ुलाम सूरत को इन बातों से कोई मतलब नहीं। यह कालेज है, कालेज, कालेज। लड़के, लड़कियाँ, प्रोफ़ेसरः अक्लमंदी, बेवकूफ़ी और मुहब्बत के अपनेपन में नफ़रत का आलम सब पर छाया हुआ। मास्टर के पास वक्त

नहीं है। कभी फ़ुर्सत में यह दातों को हँसी में भद्दी तरह से मँढ़कर कहता है—जी हुकुम, मिजाज़ तो अच्छे हैं, और अचानक ही उसकी आँखें अपनी हिसाब की कापी में से कुछ खोजने लगती हैं। उसकी तक़दीर है कि ज़िन्दगी में वह अपने को अभागा समझे और साथ ही जैसा कि आदमी को 'अक्सर देखा गया है', ज़मीन पर खड़े मकान की तरह होना चाहिए, वैसे वह है, यानी कि उसे अपने से काम और अपना घर पालने से—और जो लड़के कि उसके यहाँ आते हैं और जरूरत से ज़्यादा रुपये दे जाते है वे आवारे हैं, फ़िज़ूल-खर्च हैं, और उनके लिए मास्टर की एक उदास हँसी काफ़ी है……

कुछ ही लड़के आजकल भटक पड़ते हैं। उनके पास एक यादों की दुनिया है, वह खुशनुमा दिन जब वे ऊनी कपड़े पहन सकते थे, जब लड़कियाँ फ़र के हल्के कोट कंधों पर टाँग सकती थीं, तब जाड़े थे, कालेज की मौज़ें थीं, मजाकों की तड़प थी और तभी अचानक इम्तहान ने आकर उनके सपनों को टुकड़े-टुकड़े कर दिया। साल भर के चुनाव, खेल-कूद, प्यार-मुहब्बत और भूलें सब पर इम्तहान उँगली रख-रखकर उनके दिमाग में उनके नंबर काटने लगा। अब महसूस हुआ कि जो कुछ है वह लियाक़त के लिए नहीं, इसी दिन के लिए है। सारी ज़िंदगी क़यामत के लिए है और जैसे ख़ुदा की याद और हूरों की रहमत क़यामत से बचाने को है, वैसे ही 'प्रोस्पेक्ट्स' और इम्तहान के हल किये छपे जवाब इस अँधेरे में रोशनी दिखाने को हैं। एक नफ़रत-सी भर रही है। वे अलग-अलग होने लगे। आदाब अर्ज़! आदाब अर्ज़!! कहिए मिजाज़ तो अच्छे हैं। दुआ है आपकी, वर्ना ख़ाकसार किस काबिल है और मिल्टन की 'पैरेडाईज़ लौस्ट' में जितनी ताक़त है उतनी उसकी रीगेण्ड में नहीं। ट्रिगनोमेट्री भी क्या बला है? वायलेट रेज़ में अगर एक स्पर्म और एक ओवम छोड़ दिया जाय, भाई वैल्स ने बड़ी मदद दी। जी नहीं वन शिलिंग फ़ोर पेंस पर सर पुरुषोत्तम दास ठाकुरदास की पूरी स्पीच पढ़िए, आप अब स्कूल में नहीं हैं। बेकन, मिल, लाक, स्मिथ, शोपेन्हार, कांट, ऐरिस्टौटिल, राधाकृष्णन्, सर बोस, और ऐसे ही किताबी लोगों ने मुहज़बानी राजनीति और बेकार की बातों की जगह ले ली है। गलीलियो को कभी कहीं सुख है।

मगर मास्टर को तो कोई इम्तहान नहीं देना था तब भी और कुछ लड़के तब उसकी अच्छी बेइम्तहानी तक़दीर पर हसद करते थे; 'हाँ!' मास्टर कहता था—

'अरे सांवल'— जो उसका नौकर था—'चाय के लिए केटली चढ़ाय ही रख। सर्दार होस्टल से बाबू नंबर १३, १४, २२ इसी वक्त आते हैं न! आते ही होंगे। फिर आध घंटे बाद कपूर होस्टेल से नंबर १७, २३, २९ और मुस्लिम होस्टेल से······ भाई, यही कुछ आखिरी दिन हैं, फिर तो बाज़ार मंदा है ही, समझे! 'सो जा बेटा सोजा' कहके वह पलँग पर पड़े बच्चे को थपथपाता जाता है, 'सांवल, देख पान तैयार रहें और मुझे तो कल से ज़बर्दस्त वसूली करनी है, कितने ही तो भागने की फ़िक्र में होंगे······'

मास्टर के एक बीबी होगी जिसका नशा भी ज़रूर ढल गया होगा, क्योंकि वह जवान है और उसके अभी से दो बच्चे हैं, मगर क़ायदे से तो एक बच्चा है—वही लड़का, और होने को तो सभी हैं—वह भी परमात्मा की ही देन है······

२

झगर

[२]

प्रवेश-द्वार

जुलाई का महीना डग भर कर आ गया। होस्टलों में लड़के लड़कियाँ ऐसे आ टिके जैसे सुबह की भटकी चिड़ियाँ शाम को घर की याद करके लौटती हैं, मगर रात में ही शिकारी के जाल में फँस जाती हैं। चिड़ियों को लासे का जो शौक होता है। ज़िंदगी कितनी व्याकुल और चंचल है। नगरी में हलचल सी भर उठी है। यह एक नया मुसाफ़िर है जिसे जीने के बाद मरना है जिसके अरमानों की थाती को जुट कर भी लुट जाना है।

कालेज के दफ़्तर के बाहर-भीतर भीड़ इकट्ठी थी। वह क्लर्क जो दफ़्तरी से बढ़ कर कुछ नहीं काम की जिम्मेदारी से सेक्रेटरी की इज्जत पा रहा है। पितृ-पक्ष में कौआ भी श्राद्ध के लिए जरूरी हो जाता है।

'आपने फाइल नम्बर ४१ देखी, मिस्टर शुक्ला?'

'जी हाँ'

फिर दोनों काम करने लगे। भीड़ की उत्सुक आँखें।

'देखिए' सेक्रेटरी कहता है, 'इस काउंटर का मतलब है कि इसके उधर ही आप लोग ठहरें।'

'अभी स्कूल से नये ही आये हैं?।'

फिर पुरानों की हँसी। मगर लड़कों को कोई बेइज्जती चुभ नहीं रही है। मकतब और पाठशाला से ही जिनके कान खिंचने शुरू हुए हैं, वे अब बड़े होकर काज़ी बन ज़रूर गये हैं, दुम छोड़कर, मगर पहले तो गधे ही थे। और कहते हैं, मतलब गधे को बाप बनवाता है। यह आपस का समझौता है।

एक मिनट को सेफ़ खुलता है। दस, बीस, तीस,···अस्सी...सौ, रखिए शुक्लाजी सेफ़ में। इधर नौकर को दम मारने की फ़ुर्सत नहीं है। अभी वह

सेक्रेटरी के लिए घर पर सब्जी खरीदकर रख आया है और फिर पिन लेने डेढ़ मील बाजार भागा और अभी साढ़े आठ ही बजे हैं।

'आपको कालिज मुबारक हो' एक सेक्रेटरी की दो सौ रुपये की घमंडी आत्मा बोलती है 'अब आप साहब के पास ऊपर ले जाइए, फार्म 'डी' पर दस्तखत करा लीजिए, हाँ, फ़ीस लीजिए शुक्ला बाबू।'

'जी लाइए जल्दी बाबू सा'ब।'

काउंटर पैन पर रुपये खन खन बज उठते हैं। बाहर की भीड़ में यह कोई नहीं सुनता। फिर फ़ोन की घंटी.. ट्रिं ट्रिं...

'हलो! कहिए। मैं हूँ सेक्रेटरी मिशन कालेज। हाँ प्रिंसिपल साहब हैं। अच्छा अच्छा। ओह! कौन कैप्टेन राय बोल रहे हैं। मैं अभी सब फ़ार्म तैयार करा देता हूँ। आपकी कौन लड़की? मिस लोला! वेल! वेल!! आप मोटर में जल्दी तशरीफ़ लाइए। बड़ी तक़लीफ़ की आपने ...ह ह ह. थैंक्स। थैंक्स...ह ह ह...

और तो सब आराम कर रहे हैं। तकलीफ़ सिर्फ कैप्टन राय ने की है, सिर्फ़ उन्होंने ही।

'आप लोग ज़रा आफ़िस से बाहर तशरीफ़ ले जाइए। थैंक्स!

सबसे पीछे का लड़का सबसे पहिले निकल आया फिर धीरे धीरे सब निकल चले और आखीर में कोई रेजकारी गिनता भी निकल आया।

सेक्रेटरी कहने लगे—'मिस्टर शुक्ला बड़ी परेशानी है। देखिए न? आखिरी वक्त पर इत्तला दी है, कैप्टेन राय ने। अब बतलाइए क्या करें?

ऐसिस्टेंट शुक्ला ऐसे नज़र उठा कर देखने लगा कि क्या करें? हमारे तुम्हारे किये क्या होगा! हमारे सत्तर और तुम्हारे दो सौ से एक कैप्टेन के साढ़े सात सौ बहुत ज़्यादा होते हैं। मगर वह कुछ बोला नहीं। सेक्रेटरी पसीना पोछने लगा। बोला—'इस साल पौने तीन सौ लड़कों की टक्कर में एक सौ बीस लड़कियां। बहुत हो गया साहब! पारसाल सिर्फ़ अठहत्तर थीं उससे पहले सत्तावन' जैसे जबसे लड़कियां आने लगीं तबसे इनकी ज़बान पर एक एक घाव होता गया और आज एक सौ बीस घाव पूरे हो गये। घंटी बजती है। नौकर घुसता है।

'लड़कों को बुलाओ' सुनकर वह बाहर आकर कहता है—'आइएगा बाबू लोग।'

और लड़के जो दुम दबाकर कुत्तों की तरह बाहर निकल आये थे और बाहर

आकर जिनकी दुम खड़ी हो गई थी अब फिर दुम दबा कर आफ़िस में घुसने लगे।

उसी वक्त एक लड़का—बाइस तेइस वर्ष का—एक खंभे के पीछे से निकलकर डोम के नीचे खड़े होकर इधर-उधर झांकने लगा। वह एक पजामा पहने है और एक सादी कमीज़। जेब में बारह आने का जापानी फाउंटेनपेन है और एक ट्वील का अधमैला रूमाल। सिर के बाल धूल भरे मगर कढ़े हुए और पैरों में सस्ती चप्पल। माथे पर पसीने की बूँदें छा रही हैं और कांखों में लाल-लाल सा पसीना बह रहा है। उसके हाथ में एक फ़ार्म है और वह इधर-उधर झांक रहा है। एक लड़का जिसको ऑफ़िस में भी घुसने का अभी मौका नहीं मिला है, उससे पूछने लगा—'आपका एडमीशन हो गया ?'

लड़का कहने लगा—'अभी तो नहीं, आपको मालूम है वाईज़ प्रिंसिपल का आफ़िस कहाँ है ?'

'मुझे नहीं मालूम,' सच्चा जवाब है, क्योंकि वह ख़ुद नहीं जानता। 'आपका फार्म देखूँ ?' लेकर पढ़ने लगता है 'भगवतीप्रसाद, इंटरमीजियेट, फर्स्ट क्लास, डिस्टिंक्शन—इंगलिश, केमिस्ट्री, मैथमेटिक्स। ओह ! गुड ! आपको तो चाहे जहां ले लिया जायेगा। क्यों वाइस प्रिंसिपल को क्या करिएगा ? इंटर आपने कहाँ से किया ?'

'चंदौसी से। काम है ज़रा।' और वह हटकर दफ्तर के एक नौकर से पूछने लगा। उत्तर मिला—'गैलरी के दांये तरफ़।'

मगर यह गैलरी क्या है ? कहां है ? वह सोच ही रहा था कि किसी पुराने घोड़े ने हिनहिनाकर उसके कंधे पर हाथ रखकर पूछा—'कहो बरख़ुर्दार ! काहे में भर्ती होने आये हो ? तुम्हें तो तुम्हारी हुलिया देखकर ले लिया जायेगा। प्रिंसिपल, प्रोफेसर, और तो क्या नौकर तक सब शौकीन हैं'— और वह ठठाकर हंस पड़ा। इस भगवती-प्रसाद की हुलिया की तारीफ़ ! वह सिर्फ़ गरीब है।

'बिचकते हो यार ! फ़ार्म तो दो।' और पढ़कर कहता है, 'नाम करोगे उस्ताद बलिया भी गये हो कभी ! तब लो हाथ मिलाओ। भूलोगे तो नहीं वर्ना हम रो देंगे।'

'वाईज़ प्रिंसिपल का कमरा कहाँ है, बता दीजिए।'

'अच्छा साहब, यहाँ से इस सीढ़ी पर चढ़िए, फिर दांये मुड़िए, फिर बांये, फिर उत्तर, फिर दक्खिन......

मगर कहनेवाले का ध्यान बंट गया ; लड़कियाँ नई और पुरानी आ रही थीं।

वह देखने लगा। जब वह चली गई तो मुड़कर कहने लगा—'ज़मींदार हो कि लंबरदार। अरे यार, ठहरे कहाँ हो?'

तब भगवती कह उठा, 'यहीं एक जगह है।'

'कोई खतरनाक है!'

'नहीं, जी, एक धरमशाला है' और यह स्वर वास्तव में ऐसा बजना चाहिए था जैसे कि महल पर से शाहज़ादी के पान की पीक थूकते समय किसी नीचे चलते राह-गीर पर गिर पड़ी हो और वह चीख रहा हो कि मैं ग़रीब हूँ। अब कपड़े बदलने को भी तो नहीं हैं!

'और मिलना किस लिए है?'

'प्रिंसिपल साहब ने कहा है कि वाईज़ प्रिंसिपल बर्सर हैं, वही सब कुछ करते हैं, तुम फ़ीस माफ़ करवाने उन्हीं के पास जाओ। मैं ईसाई नहीं हूँ वर्ना एक थर्ड क्लास की पूरी फ़ीस माफ़ है, क्योंकि वह ईसाई है।' लड़के के स्वर में एक व्यथा झलक उठी जैसे ईसा मसीह की किसी ने गर्दन उमेठ दी हो।

'अच्छा तो दोस्त जाओ मिल आओ। आओ तुम्हें पहुँचा दूँ।'

कि इतने में कैप्टेन राय अपनी नई मर्सीडीज़ बेंस में आ पहुँचे और संग में उतरी उनकी लड़की—लीला राय।

'ठहरो दोस्त' कहकर लड़का भगवती से अलग हो गया। वह एक सुंदर, स्वस्थ युवक था। रेशमी कमीज़ और गहरे ख़ाकी का सूट, काला जूता पहने था। सर के बाल कढ़े हुए। अचानक उसके हाथ में जेब से सिगरेट केस निकल आया। अपने आप सिगरेट मुँह से लगी और धूंआ गुबार बनकर, एक चक्कर, दो चक्कर, तीसरा आधा उठा' और एक धुँधली रेखा बादलों की तरह सरक उठी। उसकी आँखों में एक नज़र थी बड़ी तड़पीली। उसने देखा—मिस लीला राय! एक पतली दुबली मगर मांसल लड़की, सफ़ेद साड़ी पहने, और पल्ला ऐसे ओढ़े कि उसकी डेढ़ छाती के गोल नज़र आ रहे थे; चाइनीज़ डिज़ाइन की चप्पल और भकभका रंग और सिर के कंधों तक कटेबालों के बीच में से उसका तोते का-सा मुँह। बड़ी सुंदर थी। उसने देखा कैप्टेन राय जो अपनी वर्दी में उससे बातें कर रहे थे, उसने देखा मर्सीडीज़ बेन्सका स्टीयरिंग व्हील और उसकी निकोटीन से पीली पड़ी उंगलियाँ अपने

आप उसके होठों पर पहुँच गईं और होठों में तड़प कर ऐसे धूँआ छोड़ा जैसे जंक्शन पर आकर रेल आराम की सांस छोड़ रही हो।

मगर भगवती को कोई मतलब नहीं, उसने लीला को देखा, ऊपर का भगवती अपनी दरिद्रता में सिकुड़ गया, मगर अंदर का भगवती एक टीस से भर उठा। एक लौ-सी झक बनकर उठी, ऐंठी, उमड़ी मगर किसी ने मरोड़कर उसे उसके कपड़ों सा बना दिया।

बाहर धूप थी। डोम के नीचे बाहर की बनिस्बत बहुत अच्छी ठंडी हवा चल रही थी।

लड़का धीरे धीरे लौट आया। जैसे जग हार गया था, मगर उसने मुड़कर देखा कि लीला सबको देख रही थी, और सबमें एक वह भी था। हार-जीत नहीं अब एक भावना को एक पक्षीय सुलह हो गई थी। उसने भगवती के कंधे पर हाथ रखकर बहुत पुराने दोस्त की तरह कहा—'क्या फ़िदा हो गये, उस्ताद ?'

भगवती चौंक उठा। वह झेंप गया। शराफत के पैर टटोलते हुए कहा—'जी नहीं, मैं तो......

लड़का बोला—'अमाँ ? बनते क्यों हो ? आओ वाइस प्रिंसिपल के पास हो आयें, नये आये हो न ? तभी एकदम चकाचौंध-सी लगती है। जानते हो यह कौन हैं ? ये हैं लीला राय। इनकी बड़ी शोहरत थी कि कालेज में आनेवाली हैं। गज़ब का गाती है रेडियो पर। कैप्टैन की लड़की है। ऊंची चीज़ है। है न पटाख़ा!'

भगवती कुछ भी जवाब नहीं दे सका। संकोच ने उसका गला अवरुद्ध कर दिया। वर्सर का दफ्तर आया।

लड़के ने कहा—'घुस जाओ सीधे। ताका-झांकी मत करो। मैं जा रहा हूँ।'

सहसा भगवती ने पूछा—'आपका शुभ नाम ?'

'शुभ ही तो नहीं है कमबख्त, वर्ना क्या हम इतने साल बाद भी यहीं होते! वैसे कहने को सब कामेश्वर कहते हैं।'

भगवती मुस्करा दिया। दोनों ने एक दूसरे की ओर हँसती हुई आँखों से देखा और हाथ मिलाये। कामेश्वर चला गया। भगवती ठिठककर उसे देखता ही रह गया।

[३]

प्रश्न

भगवती ने कमरे में घुसकर देखा हर चीज़ क़ीमती थी। फ़र्श पर बिछा क़ालीन, उसपर सोफा सेट, और बड़े बड़े शीशे के गोल गमले जिनमें तालपत्रों का झुरमुट-सा अत्यंत सुंदर दिखाई देता था।

कामेश्वर ने भगवती के कंधों पर हाथ रखकर उसे बिठाते हुए कहा—'क्यों पसंद नहीं आया? क्या देख रहे हो ऐसे?'

भगवती ने कुछ कहा नहीं। वह इस वैभव को देखकर मन ही मन सकपका गया था। उसकी भावना में एक बार यह बात भी उठी कि जो कुछ है अत्यंत सुंदर है, कहीं उसके छूने से कुछ खराब न हो जाये। उसे याद आया अपने गांव का घर। वह कच्चा है, ऊपर छान है, भीतर मा है। मा को सदा से ही उसने विधवा देखा है, जिसने प्रारंभ में उसे चक्की पीस-पीसकर पाला है। उसके बाद वह ज़मींदार के यहाँ काम करने लगी थोड़े दिन बाद उसे गांव की पाठशाला में दाखिल करवा दिया गया। भगवती की प्रतिभा देखकर पंडितजी बड़े प्रसन्न हुए। वे अपने पोपले मुँह से सर्वत्र उसकी प्रशंसा करने लगे। मिडिल में वह अव्वल आया। वजीफ़े से उसने हाई स्कूल पास किया और फिर फर्स्ट आया। ज़मींदार साहब ने तब उसे बीस रुपये महीना देकर चँदौसी भेज दिया। वजीफे की मदद भी मिली। इंटर भी पास किया। मा प्रायः अधेड़ हो चली थी किंतु उसका यौवन फिर भी सुगठित लगता था जैसे अकाल वैधव्य के कारण जो सोता बहा नहीं उसी संचय से वह झाई मारनेवाली घूंसे की चोट-सा यौवन अभी भी जाग रहा था। गांव में सब अजीब अजीब बातें कहते किंतु ज़मींदार बड़े आदमी थे। सरकार ने उन्हें 'सर' की पदवी दी थी और विद्यानुरागियों को देखकर उनके हृदय में अपार श्रद्धा थी। एक मात्र पुत्र को उन्होंने पढ़ने को विलायत तक भेज दिया था। आज तो भगवती को फिर बोर्ड का वजीफ़ा जो मिल रहा था, कालेज से भी मिल गया। फिर कोई हाथ बढ़ाने का मौका नहीं आया।

भगवती यह दुनिया और वह दुनिया मिलाने में ऐसा तल्लीन हो गया कि उसे क्षण भ कुछ भी ध्यान नहीं रहा। सामने ही एक नृत्यावस्था में मग्न नारी की संगमर्मर की मूर्त्ति थी। उसकी ओर ऐसे निर्निमेष देखते हुए लक्षित कर कामेश्वर ने कहा—'क्यों? मालूम देता है नृत्य में बहुत दिलचस्पी लेते हो?' और एकाएक उठ खड़ा हुआ। उसने भगवती का हाथ पकड़ लिया और कहा—'चलो मेरे साथ। तुम्हें एक कलाकार से मिलाऊँ।'

भगवती ने कहा—'कहाँ?'

'चलो भी!'—कहकर वह उसे घसीटकर ले चला। भगवती उसके पीछे-पीछे चलने लगा। कामेश्वर रेशम की पतलून और रेशम की सुर्ख़ कमीज़ पहने था। लाल रेशम की झलमल से उसके गालों पर लाली झलक रही थी। उसके वह सूखे से मुलायम बाल और गति में एक उन्माद, भगवती ने यह सब देखकर अपने आपको कुछ हीन-सा अनुभव किया। वह एक साफ़ पूरी बाँहों की कमीज़, एक साफ पजामा, और चप्पल पहने था। उसके बाल रूखे थे, किंतु फिर भी उसमें धीरता थी, जिससे कामेश्वर उसके प्रति सारे बंधन छोड़कर अनुरक्त हो गया। कहाँ वह एम. ए. का विद्यार्थी कहाँ यह थर्ड इयर में, किन्तु कामेश्वर चाहता था, वह इस लड़के की झिझक छुड़ा दे, उसे अपनों में मिला ले। उसके कमरे में जाकर एक ही दृष्टि में वह समझ गया था कि भगवती की आर्थिक दशा अच्छी नहीं।

कामेश्वर ने दो कमरे पार करके तीसरे एक छोटे से कमरे में ले जाकर उसका हाथ छोड़ दिया और आवेश में बोल उठा—'इंदिरा! here you are आज मैं एक नई चिड़िया लाया हूँ।'

भगवती सहम गया। एक लड़की पलंग पर औंधी पड़ी कुछ पढ़ रही थी। अपने पांव उसने उठा लिये थे और झुला रही थी। वह गहरे हरे रंग की रेशमी साड़ी पहने थी और उसके पांवों का गोरा रंग चिलचिला रहा था। भगवती ने देखा, वे पांव वास्तव में मुलायम ही नहीं, बड़ी गठन भी थी उनकी। बालों की लटें मुख पर बल खा रही थीं। उसने अपना बच्चों का-सा मुँह उठाया और टेढ़ी नज़र से भगवती की ओर देखा। मुस्कराई और उठकर बैठ गई तथा हाथ जोड़े। भगवती से कहा—'बैठिए।'

कामेश्वर ने उसे कुर्सी पर धक्का देते हुए कहा—'यह हैं भगवती! है न लड़कियों का-सा नाम? थर्ड इयर में आये हैं। फ़र्स्ट क्लास। डिस्टिंक्शन इन् इंगलिश, कैमिस्ट्री, एंड मैथमेटिक्स।'

लड़की ने एक बार गर्व से भगवती की ओर पानी भरी झलमल आँखों से देखा, जैसे उससे मिलकर उसका आदर हुआ है। उसने स्नेह से ऐसे सिर हिलाया जैसे धन्य हो ।

'कैसे आ जाता है आप लोगों का फ़र्स्ट क्लास ?' उसने अचरज से कहा—'हमें तो यह भी नहीं मालूम कि सेकेंड क्लास कैसे आता है ?' वह मुस्कराई और कामेश्वर की तरफ़ देखकर—'और भैया तो थर्ड क्लास के लिए भी वर्जिश करते हैं,' वह खिलखिलाकर हँस पड़ी । कामेश्वर ने दो क़दम पीछे हटकर दोनों हाथ उठाते हुए कहा—'आत्मसमर्पण ! आत्मसमर्पण !!'

'तो कितने दिन छिपा सकोगे ? अब यह तुम्हारे मित्र हो गये हैं तो क्या इन्हें पता नहीं चलेगा ?'

कामेश्वर ने कुर्सी खींचकर उसपर बैठते हुए कहा—'यह हमारे घर में सबके दोस्त हो सकते हैं, यह इनमें खास बात है । ममी तो वैसे भी पढ़ाई लिखाई की सुनकर ख़ुश हो जायेंगी । तुम्हारी ही बात थी । सो तुम्हारे लिए भी एक बात सूझ पड़ी है । भगवती को नृत्य से बहुत शौक है ।'

इंदिरा ने बात काटकर पूछा—'नाचते भी हैं ?'

भगवती शर्मा गया । उसने कहा—'जी नहीं ।' इंदिरा अपनी शोख़ी पर अपने आप हँसी । उसकी सूरत कामेश्वर से बिल्कुल मिलती जुलती थी । कोई भी कह सकता था कि वह उसकी सगी बहिन थी । किंतु फिर भी उनमें एक विचित्र भेद था । कामेश्वर की सूरत पर पौरुष था, इंदिरा के स्त्रीत्व । और यह एक ऐसा छायाभेद था कि कभी-कभी उनकी सूरतें बिल्कुल अलग-अलग मालूम पड़ती थीं ।

कामेश्वर ने फिर कहा—'नाचते हैं या नहीं, यह तो तुम परख लेना, लेकिन शौक इन्हें ज़रूर है ।'

'क्यों ? तुम्हें कैसे मालूम हुआ ?' इंदिरा ने पूछा—'मुमकिन है नृत्य पर किताबें पढ़ने भर का शौक हो ।

भगवती की झिझक हट गई । उसने कहा—'जी नहीं, किताबें नहीं पढ़ता । कोई नाचे तो देखता हूँ ।'

इसी समय नौकर ने आकर कहा—'माताजी बुला रही हैं ।'

कामेश्वर ने कहा—'अच्छा, जाओ इंदिरा !'

नौकर ने हँसकर कहा— 'फिर टाल दिया बाबूजी ? बीबीजी को नहीं, आपको बुलाया है, आपको ।'

'अरे मुझे ?'—वह ऐसे उठा जैसे लाचार हो । इंदिरा फिर खिलखिलकर हँसी । कामेश्वर ने कहा—'अच्छा देखो । इन्हें बिठाये रखना । जल्दी ही आता हूँ ।' और भगवती से मुड़कर कहा—'घबराना मत । अभी आता हूँ । समझे ?'

वह चला गया । कमरे में इंदिरा और भगवती रह गये । कुछ देर तक भगवती को ढूँढनेपर भी बातचीत का कोई सिलसिला नहीं मिला । इंदिरा क्षण भर उसकी ओर देखती रही फिर बोली—'आपका पूरा नाम क्या है ?'

'भगवतीप्रसाद ।'—उसने सकोच से कहा ।

इंदिरा ने फिर कहा—'तो आपको नृत्य से दिलचस्पी कैसे हो गई ?'

'मुझे नही मालूम ।'—भगवती ने अजीब उत्तर दिया ।

'आपको नही मालूम ?'—वह हँसी,—'कमाल करते हैं आप ! कल आप कहेंगे कि मैं अपना नाम भी नहीं जानता ।'—भगवती मुस्कराया । इंदिरा उसकी कुर्सी की ओर झुककर बोली—'आपने किस किसका नृत्य देखा है ?'

भगवती फिर पशोपेश में पड़ गया । उसने आज तक किसी का भी नृत्य व्यक्तिगत रूप से नही देखा था । अधिकांश गांव में सामूहिक नृत्य देखे थे, काछियों के, धोबियों के, मैना और जाटों के । किंतु यह वह कैसे कहता । उसके मुँह से अपने आप निकल गया—'देखा तो उदयशंकर तक का है, लेकिन शांतिनिकेतन के सीखे हुए लोगों के नृत्य मुझे अधिक पसंद हैं ।'

'शांतिनिकेतन !' इंदिरा ने उत्साह से कहा—'तब तो आप बहुत जानते हैं । बताइए न, आपने देखा होगा ।' वह उठी और उसने कमल की तरह उँगलियाँ खोलकर हाथ उठाकर कहा—'यह शांतिनिकेतन की अपनी छाप है, ऐसी और कहाँ मिलेगी ? भारत में इस नृत्यकला के पुनर्जागरण में बहुत बड़ा हाथ उन्ही का है । यह देखिए न...'

दाँया पैर आगे रखकर जो उसने खड़े-खड़े अंगचालन किया, भगवती विभोर होकर देखता रह गया । वह दौड़कर गई । आलमारी खोलकर घुँघरू निकाले और बैठकर घुटनों तक साड़ी हटाकर पाँव में बाँध लिये । फिर भूमि पर से उठकर खड़ी हो गई और नृत्य करने लगी । भगवती देखता रहा । नाचते-नाचते वह थक

गई और पलंग पर भरे-भरे श्वास लेती फिरकन में ही आ लेटी। उसका वक्षस्थल फूल रहा था, गिर रहा था। भगवती ने देखा उसकी नशीली आँखें उसीके मुख पर केंद्रित हो रही थीं। अधलेटो सी अवस्था में भगवती को लगा प्रथम बार, कि नारी में कितना बल होता है। वह पुरुष-यौवन के पत्थरों के बांध को तोड़ देने के लिए क्यों व्याकुल हो जाता है ?

उसने कहा—'आप गज़ब करती हैं। आप जब नाच रही थीं मुझे लग रहा था, साक्षात् मेनका मेरे सामने नृत्य कर रही है।'

कुहनी टेककर हथेली पर ठोड़ी रखते हुए इंदिरा ने पूछा—'मेनका कौन ? वह भी तो एक नर्त्तकी है ?'

'जी नहीं' भगवती ने कहा—'वह एक अप्सरा थी। उस समय उसे मालूम हुआ कि अंगरेज़ी सभ्यता की छाया में पली वह लड़की भारत के प्राचीन के बारे में कितना कम जानती है। उसे झुँझलाहट हुई। यह जो पुनर्जागरण का अतीत के प्रति मोह है, इसी लिए कि अब यूरोपियन इन सबकी प्रशंसा करने लगे हैं, और अंगरेज़ी में गीता पढ़ना एक फ़ैशन हो गया है। आख़िर क्या करें यह लोग ? यह तो तहेदिल से चाहते हैं, मगर वह कमबख़्त अंगरेज़ ही हैं जो इन्हें सब कुछ पालकर भी अपने में मिलाते नहीं। इसी लिए यह भी लाचार होकर देश की दुहाई देते हैं, वह देश जिसको आज़ाद होना चाहिए ताकि यह भी स्वतंत्र होकर बाल रूम में नृत्य कर सकें, इंगलैंड जायें तो स्वतंत्र होने के नाते इनका भी अन्य राष्ट्रों के नागरिकों की भांति सम्मान हो।

'अप्सरा ?' इंदिरा ने आँखें फाड़कर कहा।—'अप्सरा तो इंद्र के पास होती थीं। अच्छा आपका मतलब Nymphs से है। तो बताइए न ? मेनका की कहानी सुनाइए। मैं तो इन कहानियों के बारे में कुछ जानती ही नहीं। सच 'डैडी' ने हमेशा से अंगरेज़ी स्कूलों में पढ़ाया। मुझे तो शर्म लगती है कि मैं इन बातों को नहीं जानती। सुनाइए न ?'

भगवती फिर घिर गया। यह तो एक नई बला लग गई। उसने इधर-उधर देखा, बात करने के लिए और कुछ था भी नहीं। कहा—'विश्वामित्र थे न ?'

इंदिरा को यह मालूम नहीं था। उसने कहा—'अच्छा !' अर्थात् फिर। भगवती क्षुब्ध हुआ।

'तो एक बार वह तप करने बैठे। उनके तप से ब्रह्मांड डोल उठा। इंद्र डर गया। उसने नवीन यौवन की अमरता से गर्वित मेनका को उनका तप खंडित करने के लिए भेजा। जिस समय विश्वामित्र ध्यान में मग्न थे मेनका उनके सामने जाकर नृत्य करने लगी। उसके नूपुर बजने लगे, चारों ओर फूल खिलने लगे किंतु विश्वामित्र के नयन नहीं खुले। अप्सरा का आँचल उड़ गया, वह समस्त शक्ति से नृत्य करने लगी उसके नूपुरों की झंकार से स्वर्ग तक मुखरित हो उठा। नदन-कानन में गानेवाले गन्धर्व स्वर्ण के चषकों को लेकर भूले से बैठ रहे। अप्सरा का मादक यौवन सहस्र-दल पद्म की भाँति खुल गया उसकी समस्त रूपराशि भारवाही गध की भाँति आकाश और पृथ्वी के बीच मलयानिल के वाहन पर बैठ कर झूम उठी। धीरे से विश्वजित् महामेधावी विश्वामित्र के नयन खुले। दोनों के नयन चार हुए

'शाबाश...!' कामेश्वर ने कमरे में घुसते हुए कहा—'मैंने तो समझा था कि दोनों बुद्धुओं की तरह अलग-अलग मुंह फुलाकर बैठे होंगे, और यहाँ तो पूरी कथा चल रही है। क्यो इंदिरा, वीरेश्वर और समर, न जाने कौन कौन आये तू उनमें से किसी से भी नहीं खुली। भगवती सचमुच मेधावी हैं।'

भगवती चौंका। इंदिरा—वह सब बनते बहुत हैं।'

'हाँ तो सुनाओ भगवती, कहे जाओ। मैं तो बड़ा इच्छुक हूँ कोई मुझे पुरानी कहानियाँ सुनाये। उनमें सचमुच इतना मादक प्रभाव होता है, कहो न भगवती !'

इंदिरा ने कहा, 'कि यहाँ विश्वामित्र ऋषि की बात सुना रहे थे। इनकी भाषा बड़ी कठिन है, लेकिन उसमें सगीत बड़ा है। बड़ा मज़ा आ रहा था। तुमने तो सब बातें बिगाड़ दीं।'

'अरे वह !' कामेश्वर ने कहा—'वह तो सब क्या कहने। उसपर मैंने एक जर्मन कवि की टीका पढ़ी थी, वाह ! क्या किताब है। दर असल पुराने भारत में क्या कमी थी। अब वह बातें न रहीं। तुम सुनाओ। ममी ने बुला लिया था, वर्ना मैं क्यो जाता ? हाँ बात तो है ही यह कि ..

इंदिरा ने बीच ही में कहा—'सुनने दो न भाई ज़रा ?'

'ओह यस !' कामेश्वर ने सिर हिलाते हुए कहा—'तुमने ठीक कहा।'

दोनों ने भगवती की ओर देखा। भगवती का तार टूट गया था। वह उसे जोड़ने का प्रयत्न कर रहा था। मन में विचार आया कहीं कामेश्वर कुछ का कुछ न

समझे। आखिर उसकी बहिन है। लेकिन कामेश्वर के हृदय की मेज़ का शीशा बिल्कुल स्वच्छ था ; उस पर तनिक भी भाफ़ नहीं पड़ी थी। वह बहुत हद तक इन भारतीय सीमाओं के संकोच को छोड़ चुका था। भगवती अभी तक एक लड़की को सुना रहा था। उसे विश्वास था कि वह उससे अधिक जानता था। किन्तु अब जो श्रोता है वह तो जर्मन कवि की टीका पढ़े हुए है, कहीं मेरी बात दूध की मक्खी न बन जाये! वह इसी चक्कर में पड़ा था कि नौकर ने प्रवेश किया और कहा—'बाबूजी!'

'क्या है ?'—कामेश्वर ने मुड़कर पूछा।

'सरकार! बीरेश्वर बाबू आये हैं।'

'अकेले हैं ?'

'जी नहीं, साथ में और लोग भी हैं।'

'तुमने पहचाना कौन-कौन हैं ?' कामेश्वर ने पूछा—'बता सकते हो ?'

'सरकार एक तो पतले दुबले से हैं, चश्मा लगाते हैं, दूसरे एक और हैं।'

'तो लाओ, तब तो यहीं।' कामेश्वर ने फैलकर लेटते हुए कहा।

नौकर चला गया। इंदिरा ढंग से बैठ गई। भगवती अचकचाया-सा बैठा रहा। कमरे में तीन व्यक्तियों ने प्रवेश किया।

'हेई! हेई!' वीरेश्वर ने चिल्लाकर कहा—'हलो इंदिरा क्या हो रहा है ?'

इंदिरा मुस्कराई। उसने कहा 'हम लोगों को मिस्टर भगवती एक कहानी सुना रहे थे।'

आनेवालों ने अपने-अपने लिए एक-एक कुर्सी का इंतजाम कर लिया और फिर उत्सुक आँखों से भगवती की ओर देखा।

वीरेश्वर काफ़ी कुछ कामेश्वर का-सा। रंग साँवला-सा। हरी एक उद्भ्रांत और मार्मिक-सा युवक। और समर! वह बांसों का एक झुरमुट, जिसपर कपड़े डाल दिये गये हों, जो ऐसा लगता हो जैसे धूप में पेड़ों की छाया कांप रही हो और जिसकी सारी सफ़ाई भी एक निरपेक्ष छलना हो।

कामेश्वर ने ही कहा—'तुम लोग जानते हो कि नहीं ?'

तीनों ने नकारात्मक रूप से सिर हिलाया। कामेश्वर ने कहा—'मिस्टर भगवती-प्रसाद। थर्ड इयर में आये हैं। फर्स्ट क्लास······

इंदिरा ने कहा—'चलो रहने दो, हरबार इनका सर्टिफिकेट पढ़कर सुनाने की क्या ज़रूरत है? फिर अपना परिचय देते वक्त क्या कहा करोगे?'

सब हँस पड़े। भगवती ने उन लोगों को हाथ जोड़ा। वीरेश्वर ने उत्तर दिया। हरी अपने ध्यान में मग्न था। समर की जैसे समझ ही दूर रह गई।

इंदिरा ने फिर कहा—'आप विज्ञान के विद्यार्थी ही नहीं, आप भारत की प्राचीन संस्कृति के बारे में भी काफ़ी जानते हैं, नृत्य में विशेष अनुराग है ..'

वीरेश्वर ने संदेह से देखा। भगवती ने कहा—'आप लोगों के बारे में मुझे जानने का सौभाग्य नहीं देंगे क्या?'

इंदिरा ने कहा—'आइए। मैं बताती हूँ। आप मिस्टर वीरेश्वर। आप मिस्टर समर, आप मिस्टर हरी।'

परिचय न्यून था जैसे इन लोगों की सत्ता का केतन केवल मा-बाप का दिया हुआ एक सम्बोधन अथवा संज्ञा थी, जिसका सम्बोधित वस्तु से संसर्ग बनाकर ही उनका पूर्णत्व साबित कर दिया गया था। फिर कुछ सोचकर कह उठी—'आप सब बी० ए० पास कर चुके हैं और अब एम० ए० की कक्षाओं में वक्त काट रहे हैं।'

वीरेश्वर ने ऐसे देखा जैसे धन्यवाद, कहा तो। और समर और हरी कुछ समझ नहीं पाये। हरी ने चौंककर पूछा—'तो आपने इसी साल इंटर पास किया है?'

भगवती के बोलने के पहले ही इंदिरा ने कहा—'इंटर मीजियेट!'

अपमान की क्षुब्धकरी जिस भावना का प्रयोग करने का प्रयत्न किया गया था, वह सब निष्फल हो गया। स्त्रियों की सहानुभूति वास्तव में बहुत बुरी होती है। अच्छा खासा आदमी उनके पक्षपात से भीतर ही भीतर कुढ़ जाता है। उसे यह ग्लानि होने लगती है कि आखिर उसमें ऐसी क्या बात है जो हममें नहीं है, और विद्यार्थी वर्ग जिसमें यूरोप के योद्धाओं की मध्यकालीन स्पर्धा होती है, उसे स्त्रियों के सामने व्यर्थ की प्रतिद्वंद्विता करने की विशेष रुचि होती है।

वीरेश्वर ने एक बार पुरानी आँखों से कामेश्वर की ओर देखा, मुस्कराया, लेकिन कामेश्वर गंभीर रहा। तब वीरेश्वर की समझ से इस बात ने टक्कर ली कि यह व्यक्ति फांसा नहीं गया, वरन् इससे कामेश्वर तो क्या स्वयं इंदिरा भी प्रभावित है। इंदिरा जो आज तक किसी से ऐसे बात नहीं करती थी, आज दिलचस्पी लेती हुई इनके बीच

में आकर बैठी है और अनजाने ही उसमें यह भावना भी है कि भगवती पर प्रहार न हो, जिसमें उसको कोई हीनता न छुए ।

भगवती कुछ ऐसा बैठा रहा जैसे उसे इन दलबंदियों से कोई मतलब नहीं । वह जैसे इन दो से परिचित है वैसे ही इन तीन से भी होना चाहता है, उसे कोई फ़र्क करने की ज़रूरत नहीं है, और वह उन तोनों से भी वैसे ही सहानुभूति पाने की आशा रखता है । वह एक बार सब पुरुषों को ओर देख गया और फिर उसने मुक्त दृष्टि से इंदिरा की ओर देखा । देखा और चौंक गया । इंदिरा उसकी ओर ही देख रही थी । उसकी दृष्टि में एक भावना थी–'घबराना मत । यह सब कुछ नहीं ।'

दोनों एक दूसरे की तरफ़ देखकर मुस्कराये । इंदिरा के नयनों में एक तृप्ति थी मानों उसने एक निकटता, एक अपनेपन का अनुभव किया था ।

कामेश्वर ने उस खामोशी को दूर करने के लिए जेब से सिगरेट केस निकाला और आगे बढ़ाया । तोनों ने सिगरेट ले ली । भगवती ने हाथ जोड़ दिये । इंदिरा देखकर हँस दी, फिर कहा —'अब यह क़ायदा पुराना पड़ गया है । खाली नो थैंक्स कहना काफी है । आइए, हम आप इस बारे में एक-से हैं । चलिए आपकी 'ममी' मे मुलाकात करा दूँ । वे आपको देखकर बहुत खुश होंगी ।'

भगवती ने कामेश्वर को ओर देखा । कामेश्वर ने सिर हिलाकर कहा—'अरे तो तू क्या समझती है कि भगवती कोई बूढ़ा है जो धार्मिक हो। वह तो सिर्फ़ ज़रा उसे भारत की प्राचीन बातों में दिलचस्पी है। उसका तूने तो उल्टा सीधा मतलब लगा लिया ।'

'मैंने यह तो नहीं कहा । ममी की कहती थी ।' इंदिरा ने उठकर कहा ।

कुछ नहीं । भगवती और इंदिरा भीतर चले गये । कुछ देर बाकी लोग कुछ सोचते रहे । फिर हरी ने कहा—'कामेश्वर ! वक्त आ गया है, अब मुझे वोट देना । मैं लिटरेरी सेक्रेटरी के लिए खड़ा हो रहा हूँ ।'

'ज़रूर'—कामेश्वर ने कहा । वह इस बात को बढ़ाना नहीं चाहता था । दिल में यक़ीन था कि अभी से वायदे करने से क्या फ़ायदे ? जब जो होगा देखा जायेगा । हरी के लिए जीवन में इससे अधिक किसी बात का मूल्य नहीं ।

थोड़ी देर तक वे चुपचाप सिगरेट पीते रहे । फिर वीरेश्वर ने ऊबकर कहा—'कामेश्वर ! क्या विचार है ? इस साल कैसी रहेगी ?'

कामेश्वर कुछ सोच रहा था । उसने अनमने स्वर से उत्तर दिया—'देखो !'

बगल के कमरे से खट-खट की आवाज़ आई। चारों चौकन्ने हो गये। उन्होंने देखा, द्वार पर लवंग खड़ी थी और उसके साथ थीं लीला राय। चारों आदर दिखाने के लिए उठ खड़े हुए।

लवंग कूल्हे नचाती खट-खट करती आकर एक कुर्सी पर बैठ गई। उसके पीछे-पीछे लीला भी चलती आई। चारों बैठ गये।

लवंग ने टेढ़ी नज़र से कामेश्वर को भाला मारते हुए कहा—'आप जानते हैं इन्हें? यह हैं मिस लीला राय। कॉलेज में इसी साल आई हैं। और आप हैं मिस्टर कामेश्वर इंदिरा के भाई। कामेश्वर ने हाथ जोड़ दिये। उत्तर भी मिल गया। फिर लवंग ने एक-एक करके तीनों से परिचय करा दिया। लीला अभी तक खड़ी थी। समर लवंग की ओर चश्मे में से घूर रहा था। जो भाला कामेश्वर को मारा गया था वह दुर्भाग्य से समर के सीने में जा अटका था। बाकी लोग लीला को छिपी-छिपी नजरों से देख लेते थे।

लवंग ने कहा—'बैठो न लीला? खड़ी क्यों हो?'

लीला संकोच करती हुई बैठ गई। वह एक अल्हड़ चपल बालिका थी। पाउडर की एक मोटी तह उसके मुख पर चिपक रही थी, किंतु लवंग के सामने उसका शृंगार कुछ नहीं था। लवंग के रंगे सुर्ख होंठ, नकली लाली से चिचकते गाल, रूखे मगर सुगंधित कंधों पर लहराते बाल और सेंट की अत्यधिक खुशबू ने उसके चारों ओर एक अजीब सा वातावरण बना दिया था। अधिकांश अंगरेजी बोलना, बीच में कभी-कभी ख़याल आने पर हिंदी का प्रयोग करना, एक बार बात करना, दो बार मुस्कराना, और तीन बार हँसना, तथा दुनिया को बेवक़ूफ समझनेवाली नजर से अपना दर्प प्रदर्शित करना आदि बातें ऐसी थीं जिनसे प्रत्येक उपस्थित युवक मन ही मन उससे चिढ़ता था, किंतु स्पर्धा सबमें थी, उसकी जवानी सबको लजीज़ मालूम देती थी। एक विचार आता था कि बनती तो इतनी है, एक बार आ जाय घिराव में, फिर देखें कैसे आँख मिलाती है। सारी शोख़ी को क़दमों की धूल बनाकर कुचल दिया जाये। बड़ी मस्ताती है गंध में कि उंगलियों में भींचकर मसल दी जाये। किंतु वह अपने निश्चिंत-सी; सब ठीक है; लवंग ने आज कुछ घुटन का अनुभव किया। उसने कहा—'इंदिरा कहाँ है?'

कामेश्वर ने कहा—'वह अभी आती है। भगवती को ममी से मिलाने ले गई है।'

'कौन भगवती ?'—लवंग ने पूछा ।

'एक मेरा नया दोस्त है । इंदिरा के नृत्य का पारखी है ।' कामेश्वर ने सिगरेट का कश खींचते हुए कहा । लवंग ने देखा चारों व्यक्ति उससे कुछ संतुष्ट नहीं थे । उनकी दृष्टि लीला पर अधिक थी । लवग अपने पुरानेपन के प्रति इस अवहेलना को स्वभावगत क्षेत्र होने के कारण शीघ्र ताड़ गई । वीरेश्वर ने कहा—'मिस लवग ! आप अबकी गर्मियों में कहाँ कहाँ रहीं ?'

'कहीं नहीं ।' लवंग ने कहा—देखिए न ? हम काश्मीर जाने वाली थीं, वहाँ तो जा नहीं सकीं । बात यह है, डैडी ने कह दिया कि हमें छुट्टी नही मिलेगी । फिर क्या करते ? ममी ने भी कह दिया कि अब घर छोड़कर क्या जाऊँ । तुझे जाना हो तो कुछ दिन के लिए मंसूरी चली जा । वहीं गई थी मैं । लेकिन आप जानते हैं, अकेले में कुछ अच्छा नही लगता । डाक्टर सिन्हा के यहाँ जाकर ठहरी थी । दूसरों के घर ठहरना क्या ज़्यादा अच्छा लगता है ? उनके एक दोस्त राजेंद्रसिह भी वहीं ठहरे हुए थे । उन्होंने कहा—'अभी ठहरिए । हाल में ही लड़ाई की वजह से लौट आना पड़ा, वर्ना इंगलैंट में ही थे चार साल से ।'

सुनी यह बात भगवती ने इंदिरा के साथ कमरे में घुसते हुए ।

समर ने पूछा—यह राजेंद्रसिह कौन हैं ?

लवंग उसके मुँह से कोई भी बात सुनकर हँसती है । बोली—'चंदौसी के पास कहीं बहुत बड़े ज़मींदार हैं ।'

भगवती सुनकर चौंक गया । यह उसके गांव के ज़मींदार के बेटे का जिक्र यहाँ क्यों ? फिर विचार आया कि यह वर्ग उसका नहीं । उसके मालिक की हैसियत के लोग हैं, वह जिनकी भगवती प्रजा है, रियाया है । राजेंद्रसिह वही हैं, जिसके पिता ने रुपये देकर भगवती को दया करके पढ़ाया है ।

इंदिरा को देखते ही लीला और लवग ने उसके दोनों हाथों को पकड़ लिया और वे अंदर चली गईं । भगवती से इंदिरा ने चलते चलते मुड़कर कहा—'क्षमा करिएगा ? नमस्ते ।'

भगवती विक्षोभ से भर गया । उसे लगा, सामने बैठे वे सब युवक उसकी इस उपेक्षा से प्रसन्न थे, व्यंग्य से मुस्करा रहे थे । किंतु वह भ्रम था । वास्तव में वे उससे तब भी प्रभावित थे । इंदिरा का स्नेह उसके प्रति सबको खल गया ।

कामेश्वर को लवंग की यह आदत मालूम थी। प्रारंभ में वह सदा अपरिचित व्यक्ति के प्रति एक अनुपेक्षणीय तिरस्कार-सा दिखाती थी। वह चाहती थी, सब उसकी ओर अधिक से अधिक आकर्षित हों।

कामेश्वर ने भगवती को हाथ पकड़कर पास बिठाते हुए कहा—'बुरा न मानना। यह लड़की बड़ी तोताचश्म है। चाहो तो तुम भी अपनी किस्मत आज़मा लो।'

सब हँस दिये और उनका हृदय भगवती के प्रति सरल हो गया। किंतु भगवती मन ही मन सकुच गया। उसने अनुभव किया कि इन लोगों का साथ बनाये रखना वास्तव में उसकी औक़ात से कितना ज़्यादा बाहर था।

वह केवल मुस्करा दिया।

[४]

साम्राज्य

एक साँप सी सड़क की लपेटों ने दूर दूर तक अपनी गति फैला रखी है। एक ओर कला-विभाग है, दूसरी ओर विज्ञान। (साइंस) कला के एक किनारे ही कामर्स-विभाग है। पहला महीना समाप्त हो चुका है। प्रोफेसर नारायण आते, क्लास घबरा कर खड़ा हो जाता। किंतु हर कायदे में असंतोष की छोटी भावना होती है, प्रत्येक तमीज़ में एक चचलता।

भगवती काम कर रहा था। लैब में उसकी तन्मयता प्रसिद्ध हो चुकी थी। कामेश्वर के कारण उसे काफ़ी लोग कालेज में जानने लगे थे। बहुत से लोगों की उपेक्षा अथवा उदासीनता उसके प्रति इसी कारण थी कि वह केवल पढ़ाई में ही निरत रहता था। समर कहता कि आदमी को एकदम किताबी कीड़ा भी नहीं होना चाहिए। कामेश्वर सुनता और बजाय कोई बहस करने के उसे टाल जाता। समर इसपर बहुत अविश्वास करता।

भगवती विज्ञान का विद्यार्थी है, किंतु दर्शन और अर्थशास्त्र में भी उसका ज्ञान है। शाम को कभी कभी वह मैच देखने निकल जाता था और कभी कभी वह साँझ के डूबते बादलों के आगे लड़कियों के हास्टेल की छत पर लड़कियों को खेलते देखकर वह किसी भविष्य के सपने में डूब जाया करता था। दिन भर वह काम करता, शाम को अख़बार पढ़ता और फिर रात को वह दीवालों पर फौरमूला लिखा करता था। उसका जीवन तब जितना एकाकी था उतना ही अब भी, मगर तब वह ग़रीब था, अब नहीं, तन से नहीं मन से।

मगर इस वक्त वह काम कर रहा था। काम का मतलब हुआ कि कोई और विचार उसके दिमाग़ में आ ही नहीं रहा था। रोशनलाल लैब एसिस्टेंट उसकी फ़र्माइशों से झल्ला उठता था, लेकिन वह ख़ुश था, क्योंकि वह चाहता था कि कोई ऐसा

आदमी आये जो लैबोरेटरी का नाम रोशन करे और इसी चक्कर में उसकी भी इज्ज़त बढ़ जाये।

नौकर आता था और चुपचाप घुसता था। टूटे सामान उठा ले जाता था।

कैवेंडिश की सी शक्ल के डाक्टर कुमार आकर देखते थे। उसे काम करते देखकर मुस्कराकर सिर हिलाते थे। और सिंक में झाँककर देखते थे कि कोई सिगरेट का टुकड़ा वहाँ तो नहीं फेंक गया, क्योंकि ऐसा करने की उन्होंने मनाही कर रखी थी, क्योंकि वहाँ सिगरेट पाने का मतलब था कि लैबोरेटरी में होम हुआ था।

नाइट्रिक एसिड की बोतल पास में रखी थी। नीले पीले रंग के एसिडों से आल्मारी में शीशियों पर विचित्र रंग छा रहे थे। यह विज्ञान-विभाग था। समर दूर खड़ा पत्तों पर उंगलियाँ फिरा रहा था। वह कला का विद्यार्थी था, यह जगह उसके लिए परदेश थी।

ज़हीर जो ज़ुआलोजी का अध्ययन करता था, दूसरे डिपार्टमेंट में काम कर रहा था। 'लाइबीथाईडीस – मामूली मामूली क़द की तितलियाँ, नर के आगे के पैर छोटे ....'

वीरसिंह उससे बढ़कर कह रहा था—'यह देखो, तीनों फेमिली—'पारालिडी, ल्यूकेनिडी और स्कारावाइडी.....'

'यह हैमिडैक्टाईलस (छिपकली) है या लगी ?'

और उनके ठहाके से लैब गूंज उठती थी। कपूर होस्टल की ओर कभी कभी कोई साईकिल या पैदल चला जाता था। कभी कभी लड़कियां फोल्ड का पार करके अपने होस्टल चली जाती थीं, जिन्हें साइंस लाइब्रेरियन अपने टूटे और अगाढ़ दाँतों में कुटे पान की जुगाली करते हुए कार्ड पर से निगाह उठाकर देख लिया करता था। सब जगह काम हो रहा था। कुछ मनमौज रेस्तराँ से लौटकर आ रहे थे, जो अपनी सिगरेट को पूरा फूँक देने के लिए बाहर कपाउंड में खड़े बातें कर रहे थे।

'यार! इस पढ़ाई ने तो रेढ़ कर रखी है, भला यह भी कोई मौसम था ?'

'चलो, अच्छा हुआ, हरी को कर्ज़दारों से दम मारने की तो भी कुछ दिन की फुर्सत हो जायेगी।'

और उनकी हँसी से एक-आध ऊँचे खयाल की लड़की अपने कौमन रूम की चिक में से उभककर देखती है। लड़कों की निगाह निशाना चूकना नहीं जानती। वह हट

जाती है और दस मिनट तक उसी की बात होती रहती है।

एक क़ामर्सवाला आकर पूछने लगा—'साहब, ढूँढ़ते ढूँढ़ते थक गया। आख़िर बताइए तो वह बायालोजी डिपार्टमेंट कहाँ है? जिससे पूछता हूँ वही कहता है, ज़ुआलोजी कि बोटैनी? तो क्या दो अलग अलग हैं?'

कोई जवाब नहीं देता। एक दूसरे की तरफ़ मुड़-मुड़कर देखते हैं और ठठाकर हँसते हैं। कामर्सवाला झेंपता है।

'वाह, मेरे दोस्त, कमाल करते हो,' वहीद कहने लगा, 'आप अपने नाम को तो ज़रा ज़ाहिर करो।'

'मुझे···मुझे कैलास कहते हैं।'

'अमाँ, कहने को तो सभी कुछ न कुछ कहा ही करते हैं, मगर तुम हो क्या?'

उनकी हँसी रुकनेवाली नहीं है। कामर्सवाला कुछ नहीं समझता। इसमें उसका कोई दोष नहीं है। उसे कभी साइंस और आर्टस से पाला ही न पड़ा था। उसे कभी अपने डिपार्टमेंट से छुट्टी न थी। बुक कीपिंग, इकनौमिक्स, ज्योग्राफी, टाईपिंग, इंग· लिश, एकौंटेंसी और उसने जाने क्या क्या ले रखा था। सिर पर चोटी थी। मगर जैसे जैसे कालेज में उसके दिन बढ़ते जा रहे थे, वैसे वैसे चुटिया कम होती और धीरे धीरे धोती नीचे आती जा रही थी। वह गोरा था, अच्छा ख़ासा। लड़के उसे घेर-कर खड़े हो गये। इतने में प्रोफ़ेसर रशीद उधर से निकले और लड़का जान बचाकर वहाँ से निकल भागा। लड़के हँस रहे थे।

कौरिडोर में बदरुद्दीन और नसरू गुज़र रहे थे। नसरू कहता जा रहा था—'डिसटिल ऐपीफ़िसिस आफ़् रेडियस्, डिसटिल ऐपीफ़िसिस आफ़् अल्ना······'

लेकिन बदरुद्दीन कह रहा था—'तुमने उन हड्डियों का ऐपीफ़िसिस देखा? उसमें क़तई मलटैनग्युलम्म मेजस का कोई निशान न था।'

'मैटाकारपल विन् प्रोज़िमल ऐपीफ़िसिस······'

दोनों चले गये थे। भगवती अब भी झुका हुआ काम में लग रहा था।

कौरिडोर में फिर आवाज़ आने लगी—'दो क्लीन ज़िंक के तार ज़िंक के सल्फ़ेट के सोल्यूशन में डूबे हुए और बारी बारी से डेनियल सेल के पोल्स से जुड़े हुए, क्या होगा?'

'बी सी एरिया=ऐरिया ए बी × क्रास थीटा यानी कि······'

कुछ देर बाद फिर शांति छा गई।

भगवती इस वक्त मिक्सचर को बड़े गौर से देख रहा था कि लड़कियों के ज़ोर के हँसने से उसके हाथ काँप उठे और घबराहट में टेस्ट्यूब गिर गया। वह गुस्से से फुँकार उठा। ख्वामख़्वाह उसके जमा किये रुपये इस तरह बेकार एपरेटस के टूटने से कट रहे थे। इनमें से कौन देने जायगी! इन्हें क्या है? घर बसाना है। कमाना होगा हमें। वह दाँत चबाने लगा। इतने में लीला ने झाँककर देखा। वह बहुत धीरे से बोली: 'माफ़ कीजिए। आपको मालूम है, ऊषा कहाँ है?'

'उनका घंटा ख़त्म हो गया।'

'फिर आप भी तो उसी क्लास में हैं।'

'वह लोग सब वक्त काटने आते हैं, काम करने नहीं।'

'ओह!'

भगवती शर्मा गया। उसने इतनी मृदुल लड़की से इतनी कठोरता से व्यवहार कर दिया! सच है, उसे शील छू भी नहीं गया। लीला उस घमंडी लड़के को देख रही थी ताज्जुब भरी निगाहों से, मगर दोनों ही शर्मा गये थे। भगवती अपनी झेंप मिटाने को कहने लगा—'माफ़ कीजिए, क्या कहूँ! कमबख़्त टूट गया।' और वह मुस्करा उठा। वह भी एक तृप्ति से मुस्करा उठी।

'बड़ा अफ़सोस है' वह इठलाकर बोली 'आपही का नाम मिस्टर भगवती-प्रसाद है?'

'जी हाँ, कहिए।'

'कहना तो कुछ नहीं है, मैंने ऊषा से आपका नाम सुना था।'

'और आपको मिस लीला राय कहते हैं न?'

'हाँ हाँ'

भगवती चुप हो गया। लीला कहती रही—'टैस्ट्यूब टूट गया, तो हम क्या करें? आप क्यों चौंके?'

'जी, मैं चौंकता भी नहीं, आपका मतलब है, हाँ, मेरा मतलब है कि...कि आप इतनी ज़ोर से क्यों हँसीं?'

वह ठठाकर हँस पड़ी। भगवती के बदन में जैसे एक बिजली का तार छू गया हो। वह बात बंद करने को बोला—'ऊषा अभी ही तो गई हैं। आप पहले

जुआलोजी में ढूँढ़िए, वर्ना फिर शायद आर्ट्‌स की तरफ़ ही आपको मिलेंगी।'

लीला जैसे समझ गई। बोली—'अच्छा थैंक्स।'

और वह चली गई और भगवती मुँह बाये देखता ही रह गया। उसके चले जाने के बाद कुछ देर तक एक सूनापन छा गया। भगवती को वह बुरा लगा। वह सोचता रहा। हाथ से मेज़ को छूने लगा। उसकी निगाह 'बर्नर' की जलती लौ पर अटक गई। उसने उसमें झाँका। एक भगवती खड़ा था। कोई हँसा, टेस्ट्यूब टूट गया। फिर एक लड़की आई और कोई सुदूर विन्ध्य में गा उठा—

> कश्चित् कांताविरहगुरुणा
>
> स्वाधिकारात् प्रमत्तः

और उस गीत के छोर को पकड़कर जैसे बोबुलक़ का भाट बर्फ़ीले इंगलैंड की हरियाली में एक बंद क़िले के सामने जीवन के रुद्र अपने राजा को छुड़ाने को गा रहा था......

भगवती ने देखा, लौ हवा में हिल रही थी। हवा का एक ठंडा झोंका आया था जिसमें देवदार हिल पड़े थे। चाँद खिल आया था। रोशनी से झरना काँप रहा था। उसके गीतों से आकाश मचल रहा था। धीरे से उसके होंठ अचानक ही बड़-बड़ा उठे......

> नक्षत्र, भूत, ये स्वर्ग आज
>
> हैं बना उठे छवि रे अतीत
>
> युग युग तक अणु अणु अनुपमेय

वह रुका और उसका हृदय गुनगुनाने लगा—

> स्पर्श करती दृष्टि कोमल,
>
> ओ सुहासिनि मधुर आनन,
>
> चिर मधुरिमा से विलस
>
> अभिमान का वह लास चेतन ;
>
> आह ! वह दो शब्द कोमल
>
> बिंध गया पागल हुआ मन।

जीवन का लंबा सूनापन हरहराकर प्यार से मुस्करा उठा। हृदय की अनुभूति

विकास के विशाल मार्ग पर उलझती हुई चलने लगी। युगांतर के सोये हुए पथिक ने बहुत दिन बाद दूर से गूँजती हुई बंशी की करुण रागीनी सुनकर निर्ममता के अभेद्य अंधकार में प्रकाश की एक क्षीण किरण देखी थी और वह व्याकुल हो उठा था। हवा आई और जैसे कह गई—

प्राण तुम लघु लघु गात……

भगवती चौंक उठा। उसने देखा, बर्नर व्यर्थ जल रहा था। वह जल्दी से सिंक का जल खोलकर हाथ धोने लगा और होंठ बड़बड़ा रहे थे—'सी० ए० एस० ओ० फोर… रुला ले आज भुलानेवाले।

लीला कौरिडोर में घूमकर केमिस्ट्री-विभाग में उतर गई और चक्कर देकर जुआलोजी-विभाग में घुस गई। यहाँ भी केमिस्ट्री-डिपार्टमेंट की तरह बदबू आ रही थी, मगर उतनी नहीं। कोई एम० एस० सी० का लड़का कुछ लड़कियों को म्यूज़ियम दिखा रहा था। वह आगे बढ़ गई। तब वह बाहर गार्डन में निकल गई। प्रोफेसर ऐल्फ्रेड गृह्यीन खिड़की में से साँप पर झुका हुआ दीख पड़ा—जो मेज़ पर कटा पड़ा था, और डिमौंस्ट्रेटर नरोत्तम झुककर माईक्रोस्कोप में गौर से निगाह लड़ाये था। सामने से ऊषा आ रही थी।

लौटते वक्त ऊषा और लीला को वहीं कुछ सोचता हुआ भगवती दिखा। ऊषा मुस्कराई और एकदम बोल पड़ी—'मिस्टर भगवती!'

भगवती चौंक पड़ा।

'आइए, चल रहे हैं आप आर्ट्स की तरफ़?'

'जी हाँ, जा तो रहा हूँ।'

'तो आइए न?'

इतनी बेतकल्लुफ़ थी वह लड़की और उसे भगवती को छेड़ने में मज़ा आता था। कभी कभी वह उसे अपने प्रैक्टिकल की मदद को बुला ले जाती थी और कहा करती थी—'आपको कोई बुला रहा है उधर।' जब भगवती वहाँ तक चला जाता था तो कहती थी—'अभी तो था, न जाने कहाँ चला गया। हाँ, तो अब इसे कितना गर्म करूँ?' भगवती उसे देखता रह जाता था। 'अजब लड़की है! ऐसे तंग करती है जैसे मेरी सगी छोटी बहिन हो,' लेकिन वह सोचता था कि इस तरह के रिश्ते जोड़ना मानों एक

कमज़ोरी थी। हम किसी लड़की से पहले एक सतह बना लेना चाहते हैं, ताकि मन फिर रुद्ध कारा में घूमा करे, तड़पा करे।

एक लड़का राह में पीलू के पेड़ के नीचे खड़ा अपनी फ़ीस की कापी देख रहा था। चौराहे के बीचोबीच सिपाही छाता सीने में अड़ाये खड़ा था, ताकि दोनों हाथ खाली रहें। प्याऊ पर एक गँवार पानी पी रहा था और एक कँजरिया छाती खोले बच्चे को दूध पिलाती भीख माँग रही थी। एक पेड़ के नीचे गंदा सूखा लड़का भिखारी बावला सा शून्य दृष्टि लिये बैठा था। कला-विभाग में से लड़के आ रहे थे, और वह लोग मेंहदियों के बीच से चलने लगे।

'आप इन्हें जानते हैं?'—ऊषा ने लीला को ओर दिखाकर भगवती से पूछा।

'जी हाँ।'

'ओ हो! और तुम लीला ..'

'हाँ हाँ।'

'हा हा'—वह हँसी—'यह भी खूब रहा। टिन खोलने के पहले ही अनन्नास की खुशबू से जी भर गया।' वह ज़ोर से हँस पड़ी। भगवती भुनभुना उठा। बोला—'इसमें हँसी की क्या बात थी?'

लीला उसे देखकर नीची नज़रों से मुस्कराने लगी। माली नाली खोदकर पानी ठीक बहाने की कोशिश कर रहा था। वाइज़ प्रिंसिपल का नौकर चमरी से चाय ले जा रहा था। वह लोग बिल्डिंग में पहुँच गये। छठें कमरे में क्लास हो रहा था। पाँचवा और चौथा उस वक्त खाली था। नोटिस बोर्ड के सामने कालेज का काना नौकर अपने नाटे क़द को लिये घटा बजाने का हथौड़ा लिये डोम के नीचे घूम रहा था। वे लोग नोटिस पढ़ने लगे। इन सबसे उकताकर ऊषा बोली—'हम तो थक गये कालेज से। कितनी बँधी ज़िंदगी है! आपकी क्या राय है, मिस्टर भगवती?'

'जी हाँ'—भगवती ने पहली बार वाक़ई चोट की, 'जिसको कोई काम होता है उसे हर जगह ज़िंदगी मिल जाती है, जो बेकार वक्त काटना चाहता है उसकी तो कहीं भी तबियत नहीं लगती।'

ऊषा को यह जवाब अच्छा लगा, लीला को भी। दोनों ने एक दूसरे की तरफ़ देखा, मगर भगवती उस वक्त हटकर टाइमटेबिल के पास लगी चिट्ठियाँ देख रहा था। लीला उसके पास आ गई। वह बोली—'क्या देख रहे हैं आप?'

'कुछ नहीं'—भगवती ने विस्मित होकर देखा।

'मुझे अभी तक याद है वह पहला दिन जब आप घबराये खड़े थे और कामेश्वर आपको बना रहा था,'—लीला ने कहा।

ऊषा पास आ गई थी। कह उठी—'किसका खत देख रहे थे? मेघदूत मिल गया?'

भगवती गुस्से से तड़प उठा। वह कुछ बोला नहीं।

ऊषा बोली—'किसके खत की उम्मीद से उधर से इधर आये थे, बोलो न?'

भगवती ने कहा—'मा के खत की उम्मीद से।'

लीला—'आप रहते कहां हैं?'

भगवती ने कहा—'सर्दार होस्टल में।'

ऊषा—'कमरा नंबर?'

भगवती—'पंद्रह, दायां विंग।'

ऊषा—'तब तो वीरेश्वर के पास ही?'

भगवती—'जी हां।'

लीला—'आपके कमरे में ताज बनते हैं? सुराही टूटती है?'

भगवती ने हमेशा के अटूट सच को झुठाकर कहा—'नहीं।'

'ताज्जुब'—ऊषा कह पड़ी।

इतने में एक लड़के को घेरे बहुत सी डेविड होटस्ल की लड़कियां खाली रूम नंबर ३ से निकल पड़ीं। वह लड़का राधाराम व्यास था। ग़रीब, एक आंख का सितमगर, चश्मा लगाये, मैले से कपड़े पहने, सर के बाल निहायत ऊबड़खाबड़। एक लड़की कह रही थी—'तो मिस्टर राधा.....

दूसरी लड़की ने कहा—'यह क्या बदतमीजी? राधा तो मिस होती है, मिस्टर नहीं।'

'अब मुझे ज़रा काम है, जाने दीजिए, जाने दीजिए' वह लड़का मिन्नत करने लगा, मगर लड़कियां उसे घेरकर कहने लगीं—'ठहरिए न ज़रा, क्या बिगड़ा जाता है आपका?'

'मेरे सिर में दर्द हो रहा है, मुझे बुखार आ रहा है... ..'

लेकिन एक लड़की हाथ छूकर कहती है--'कहाँ ? आपको तो कुछ बुखार उखार नहीं है !'

'अजी, यह सब बहाने हैं। उस दिन भी ऐसे ही झूठ बोल गये थे। इन्हें तो हमेशा ही कुछ न कुछ रहता है।'

'आपकी क़सम, मिस लूसी !'

लड़कियाँ लूसी की तरफ़ देखकर खिलखिलाकर हँस पड़ीं।

'तो आप काउंट वियस के ख़ानदान के हैं। रूस से बग़ावत में फ़्रांस भाग गये थे...?'

'मुझे जाने दीजिए, मुझे जाने दीजिए'—लड़का कहकर ऐसे फुदकने लगा जैसे जलते तवे पर कोई उछलकर कह रहा हो—'अरे मैं मरा, अरे मैं मरा......'

'जाने दो बिचारे को।' कोई बोली और वह छोड़ दिया गया। सबके सब, दफ्तर का नौकर तेजसिंह, भगवती, लीला, ऊषा और वे सब लड़कियाँ ठठाकर हँस पड़े। वह लड़का था ही पागल, इसलिए उसे सभी छेड़ते थे। काना नौकर आगे बढ़कर घंटा बजा उठा। वह सदा से उसे ऐसे ही बजाता रहा है, मानों वक्त बीतता जा रहा है, इम्तहान पास आयेगा, उसके लिए तैयारी करो। यह क़ायदा है, क़ानून है, जल्दी न करो और आराम भी नहीं। जिंदगी ऐसे ही चलती है।

ठन ठन ठन......

क्लासों से उठकर लड़के बाहर आने लगे। लड़के इम्तहानों से परेशान थे। बात यह थी कि रिपोर्ट घर पहुँच जाया करती थी। और बाप नाम की चीज़ हिंदुस्तान में अक्सर ख़तरनाक होती है।

जूनियर ट्यूटर कह रहा था--'आप डिगरी क्लास में हैं अब। अभी से पढ़िए, वर्ना डिवीज़न नहीं मिलेगा। यह न सोचिए कि यूनिवर्सिटी के पोल खाते में आप भी बहती गंगा में हाथ धो लेंगे। सिडनी का वह एसे, शैली की ऐडोनिस, मिल्टन की लिसीडास...' और वे दोनों आगे बढ़ गये थे।

'देखिए'—एक आवाज़ आने लगी—'फेडरेशन और कानफेडरेशन का फ़र्क़ याद रखिएगा.. ...'

तभी दूसरी—'इंडियन फाईनैंस पर आप कोई अच्छी सी किताब मुझे देंगे...' और आख़िरी—'अमाँ, पढ़ना लिखना तो है ही। सालाना में देखा जायेगा। भला हम

पढ़ने आये हैं या मज़ा लूटने ? ज़्यादा से ज़्यादा रिपोर्ट जायेगी। बुड्ढा चेतेगा और क्या ? मा हैं तब तक तो कोई फ़िक्र नहीं है, वैसे ही कौन फ़र्स्ट क्लास आ रहा है जो आई० सी० एस० ही होंगे ....'

कालेज में पंचानबे फ़ीसदी मुखों से यह बात सुनकर दीवालें उनसे स्नेह करती थीं कि ये बहुत दिनों में यहाँ से जायेंगे। और शेक्सपियर और मिल्टन उस वक्त क़ब्र में तड़प रहे थे।

आमीन ! कुछ नहीं हुआ।

---

[५]

चकमक पत्थर

इंदिरा ने पलकों को हथेलियों से मूँद लिया, फिर ठठाकर हँस पड़ी। किंतु ऊषा गंभीर बैठी चाय में चम्मच हिलाती रही। उसने इंदिरा की हँसी पर इतनी अस्वाभाविक निस्तब्धता ग्रहण कर ली कि इंदिरा एक दम चुप हो गई। उसने एक बार खिड़की से बाहर देखा और फिर कहा—'सच, उसे बड़ी दिलचस्पी है।'

'तुममें कि नृत्य में ?'—ऊषा ने फिर उसी स्वर से कहा।

इंदिरा सावधान होकर बैठ गई। उसने अपनी उँगलियों को मरोड़ा और फिर चुप होकर अपनी प्याली की ओर देखती रही। ऊषा ने अपना प्याला उठाकर एक घूँट पिया और फिर मेज़ के पार देखा—इंदिरा उन्मनी-सी बैठी थी। थोड़ी देर तक दोनों चुप रहीं। अंत में ऊबकर ऊषा ने कहा—'इंदिरा! मैं नहीं जानती कला किसे कहते हैं। और कभी जानने की इच्छा भी नहीं की। किंतु क्या तुम मुझे एक बात बता सकती हो ?'

इंदिरा ने आँखें उठाईं। देर तक घूरती रही। उसका मौन ही उसकी शंका से भरी स्वीकृति थी। ऊषा ने पूछा—'तुम्हारा हृदय कालेज में तृप्त है ?'

इंदिरा कुछ उत्तर न दे सकी। कामना का एक फूल उसने बहती धारा पर छोड़ दिया था। वह बहने लगा। बहते बहते आँखों से ओझल हो गया। उसने आँखें बंद कर लीं। जब फिर खोलीं तब चारों ओर अँधेरा छा गया था। व्याकुल होकर देखा, आकाश की ओर। वह एक छोटा सा टिमटिमाता तारा था। इंदिरा सदा से मुखर रही है। वह बात कहती है तो लगता है, यह हवा हृदय के पानी को छूकर निकल रही है, तभी इसकी ठंडक और गर्मी इतनी शीघ्रता से पहचानी जा सकती है।

अभी अभी उसके मुख से कुछ ऐसी बातें निकल गईं थीं, जिन्हें सुनकर ऊषा को विस्मय हुआ था। यह इंदिरा के जीवन में नवीन मोड़ था। आज इंदिरा उस पथ पर चली थी जिसपर धनवान बहुधा वेग से दौड़ता है और या तो खंदक में गिरता है या दूर से ही भय देखकर काँप उठता है।

उसने सिर हिलाया जिसका कुछ भी अर्थ हो सकता था। ऊषा इससे संतुष्ट नहीं हुई। उसने साड़ी का आँचल हाथ की उँगली से लपेटा, फिर छोड़ दिया। यही तो अनजाने की प्रीत है, लिपटना छूटना, उँगली वैसी की वैसी ही।

ऊषा ने कहा—'इंदिरा! मैं अपनी बात का उत्तर चाहती हूँ।'

इंदिरा ने दर्प से सिर उठाकर कहा—'तुम दोस्त हो, गुरु तो नहीं। मान लो मैं तुम्हें इस बात का जवाब नहीं देना चाहती।'

ऊषा हँसी। उसने कहा—'मैं यही सुनना चाहती थी।'

इंदिरा हतबुद्धि सी बैठी रही। उसने घड़ी की ओर आंखे उठाईं। देखकर भी समय नहीं देखा। स्मृति आई, चली गई। ऊषा से वह कोई भय नहीं करती थी। किंतु संकोच था अपनेपन का।

उसने अपने आप कहा—'भगवती के बारे में तुम्हारी क्या राय है?'

'राय?'—ऊषा उठी और कहती गई—'राय का मतलब?'

'यानी कि वह कैसा आदमी है?' इंदिरा ने पूछा।

'आदमी? आदमी कैसा होता है? इतनी बड़ी हो गईं, आदमी को भी नहीं जानतीं। जैसे सब आदमी हैं वैसा ही वह भी है। एक फ़र्क ज़रूर है।'

'क्या?'—इंदिरा ने उसे खिड़की के पास जाकर खड़ी होते देखकर मुड़कर पूछा।

'वह ग़रीब है।'—ऊषा ने गंभीर स्वर से कहा। 'मेरे विचार में वह दया करने योग्य है। मैं नहीं जानती, उसकी असली हालत क्या है? लेकिन मैंने एक बात ज़रूर देखी है। कामेश्वर का स्नेह उसके लिए अच्छा नहीं। कामेश्वर को कौन नहीं जानता......'

'ऊषा?'—इंदिरा ने कठोर स्वर से कहा। जैसे वह एक चेतावनी थी।

'तुम्हारा क्रोध ठीक है इंदिरा,'—ऊषा ने अप्रभावित होकर कहा—'तुम्हारा यह असंतोष बिल्कुल उचित है, किंतु बात मैं ठीक कह रही हूँ। तुमने देखा है, भगवती के कपड़े अब क्या से क्या हो गये हैं? अब वह कोट पतलून पहनता है। सस्ते ही

सही, मगर फ़ैशन के दायरे में वह घुस आया है। तुम मेज़ पर बैठकर खा-पी सकती हो, सिनेमा ऊँचे दर्जों में बैठकर देख सकती हो, लेकिन भगवती नहीं देख सकता। वह पढ़ने के लिए आया है, उसे पढ़ने दिया जाये, इससे बढ़कर उसका कल्याण किसी में नहीं है। तु सकी मदद करनी चाहिए।'

'मैं जानती हूँ।'—इंदिरा ने रोककर कहा,—'लेकिन ग़रीब होने से ही मैं उसका अपमान करूँगी, ऐसा नहीं हो सकता। मैं यह नहीं सोच सकती कि उसका हम लोगों में मेल-जोल उसके नुकसान के लिए है। मैंने भैया से एक बात कही है, जो उन्होंने स्वीकार करके ममो की भी इजाज़त दिला दी है। सिर्फ़ भगवती से पूछना बाकी है।'

'वह क्या?'—ऊषा ने दो पग बढ़कर कहा—'क्या, ज़रा सुनूँ तो?'

इंदिरा ने मुँह फेरकर कहा—'भगवती को मैं घर पर पढ़ाने के लिए मास्टर रखना चाहती हूँ।'

'हूँ'—ऊषा ने कहा—'वह विज्ञान का विद्यार्थी है, तुम कला की। वह तुम्हें क्या पढ़ा सकेगा?'

'अंगरेजी'—इंदिरा ने उसको कुरेदते हुए उत्तर दिया जो उसकी भीतरी निर्बलता के कारण तार की भाँति झनझना रहा था।

ऊषा ने कोई ध्यान नहीं दिया। वह फिर खिड़की के निकट जा खड़ी हुई और कहने लगी—'तुम द्वितीय वर्ष में हो ओर वह तुमसे सिर्फ़ एक क्लास अधिक है। इंदिरा, मा को तुम धोखा दे सकती हो, क्योंकि वे अब बूढ़ी हो चली हैं, लेकिन तुम्हारा कुचक्र मुझसे छिपा नहीं रह सकता।'

'तुम नहीं जानती'—इंदिरा ने टोककर कहा—'वह वास्तव में अपनी कक्षा की पढ़ाई में ही सीमित नहीं, वह कहीं अधिक जनता है।'

'प्रेम के पागलपन में जब काली लैला मजनूं को स्वर्ग की अप्सरा दिखने लगी थी तब उसकी साधारण शिक्षा को विद्वत्ता बताना कोई विशेष बात नहीं है। लेकिन तुम्हारा यह खेल मुझे पसंद नहीं। तुम सिर्फ़ उससे मिलने-जुलने का एक पथ ढूँढ़ रही हो। इसी के सहारे तुम उसे अपने जाल में आबद्ध करना चाहती हो।'

इंदिरा मुस्कराई। उसने कहा—'भूलती हो ऊषा देवी! यह स्नेह मेरा नहीं, भैया की अपनी संपत्ति है। मैं कभी संकोच नहीं करती। मुझे कहने में कभी भी कोई हिचक नहीं है, कि आज तक जितने युवक मिले हैं, उन सबमें अधिक यदि मुझे

किसी ने प्रभावित किया है, तो वह भगवती है। संकोच में रहकर मैं तुम्हारी अतृप्त तृष्णा को यह संतोष दूँ कि मेरी तुच्छता को समझ लेने में ही तुम्हारा चातुर्य है, तो मैं यह कभी नहीं होने दूँगी। संकोच एक सज्जनता कहा जाता है, किंतु मैं इसे असज्जन भावनाओं को उत्तेजित करनेवाला सबसे बड़ा कारण कहूँगी। तुम यदि भैया के ममत्व को नहीं समझ सकतीं, तो इसमें मेरा कोई दोष नहीं है। यदि तुम समझती हो कि प्रेम एक इतनी आसान बात है, तो मैं यह समझा देना अपना कर्त्तव्य समझती हूँ कि तुमने न कभी प्रेम किया है, न उसकी दुरूह प्रेरणा को समझ सकती हो।'

ऊषा के कंधों तक एक सिरहन दौड़ गई। उसने व्यंग्य से कहा--'प्रेम? प्रेम के विषय में मैं जो सोचती हूँ, वह वास्तव में तुम्हारी भावना से परे है। मेरे बिचारों को पढ़ लेने की जो तुमने अहम्मन्यता दिखाई है, वह कितनी तुच्छ है, यह वही आदमी अनुभव कर सकता है, जिसने पहाड़ पर खड़े होकर नीचे बहती नदी की क्षीण रेखा मात्र को सरकते देखा है। प्रेम?'—वह हँसी।—'प्रेम को आसान ही नहीं, बहुत आसान मानती हूँ। (प्रेम पुरुष और स्त्री के मानसिक व्यभिचार का दुष्परिणाम है, क्योंकि प्रेम की असली वेदना है, हमारे समाज का युग-युगांतर का निषेध, और जो वस्तु निवृत्ति के झूठे स्वरूप की छाया है, वह कभी भी ग्राह्य नहीं हो सकती।) तुम्हारा प्रेम तभी तक है, जब तक भगवती तुम्हारे सामने सिर नहीं झुका देता। जैसे ही पराजित होकर वह हाथ पसारेगा, उस दिन तुम्हें सहसा ही स्मरण होगा कि तुम एक धनी की पुत्री हो और प्रत्येक व्यक्ति को तुमसे प्रेम करने का अधिकार नहीं है। तुम्हारी स्थिति में वर्गों का प्रेम है। क्या तुम भगवती से विवाह करने का साहस रखती हो?'

इंदिरा कठोर हो गई। उसका मुख कुछ खुल गया था, जैसे प्रतिशोध की ऊष्मा से भीतर तक का सौंदर्य विकृत हो चला था। उसने कुर्सी पर पीछे की ओर जोर देते हुए कहा—'तो विवाह तुम्हारे प्रेम की चरम अवस्था है? बिना विवाह के प्रेम नहीं हो सकता?'

ऊषा ने कहा--'मेरे विचार से तो नहीं। प्रेम का आनंद संसर्ग है, निकट रहना है और उसके लिए विवाह के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं।'

'क्यों!' इंदिरा ने आँखें तरेरकर कहा—'स्त्री और पुरुष वह बे-मतलब की पूजा किये बिना साथ साथ नहीं रह सकते?'

'उस अवस्था का दूसरा नाम है इंदिरा देवी! हम उसे रखैल कहते हैं।'— वह उपहास से हँसी, जैसे उसने घृणा के घड़े को फोड़कर सारा गलित पदार्थ बाहर फैला दिया था। इंदिरा थोड़ी देर के लिए चुप हो गई। ऊषा उसे देखती रही। उसे विश्वास हो गया था कि उसने मर्म पर आघात किया था। कौन-सा दुरभिमानी महा-पर्वत है जिसमें अंधकार के छिपने के लिए कंदरा नहीं है! कौन सा वृक्ष है, जिसके मूल में उसके सिर की ही छाया नहीं पड़ती। ऊषा उत्तर की प्रतीक्षा में खड़ी रही। इंदिरा के आनन पर विश्रांत आकुलता थी, मानों वह इन प्रश्नों के लिए कभी भी तत्पर न थी।

उसके लावण्य-विशुद्ध रूप पर विषाद की एक काँपती रेखा भाग चली, जिसे कानों के पास लज्जा ने दो बार उमेठा और छोड़ दिया। क्षण भर में ही समस्त लाली केवल अधरों में एकत्रित हो गई। उसने दृष्टि उठाकर ऊषा की ओर देखा। देखती रही, मानों वह कुछ समझ नहीं पाती थी। इस लड़की का निर्विकार स्वरूप निर्ममता की कितनी मोटी लोहे की चदर से ढँका है, यह उसके लिए समस्या है, क्योंकि कभी वह काँच की तरह झिलमिलाती है, कभी रूढ़ियों की काई और जंग से एक कठोर प्राचीर बन जाती है। क्यों नहीं होती ऊषा को वह अतृप्त हाहाकार भरी उच्छृंखलता की तृष्णा, जो वक्षस्थल में एक गर्मी बनकर समा जाती है, जो आँखों की सापेक्ष्य गरिमा को छीनकर उन्हें कैमरा के लैंस की तरह निर्जीव कर देती है।

उसने कहा—'मन की हार में यदि मनुष्य को तृप्ति का आभास मिलता है, तो क्या तुम उसे अपनी करुणा नहीं दे सकती। हमारे द्वंद्व हमारी अपूर्णता के द्योतक हैं, उन्हें अपनी घृणा के आधार पर ठीक कहकर रचित करना आत्मघात करना है, क्योंकि वह हनन नहीं, वह एक अविश्रांत भिखारी की अनत दाह भरी तड़प है।

ऊषा ने अबकी आँख फाड़कर देखा। फिर कहा—'सच कहो इंदिरा! जिसे तुम प्रेम कहती हो, संसार से छिपाती हो, वह क्या तुम्हारे मन की शक्ति है?'

इंदिरा ने मुस्कराकर सिर हिलाया। ऊषा ने यह बात ठीक कही थी। उसके विचार में वह एक शक्ति है, तभी तो सारे बंधनों से मनुष्य ऊब जाता है। यह बंधनों के प्रति जो घृणा का भाव है वही मुक्ति की परंपरा है। ऊषा ने मानों

यह सब समझा। उसने फिर कहा—'यदि तुम इसे शक्ति कहकर चाहो कि वह सर्वसाधारण के लिए शक्ति है, तो यह मेरे लिए स्वीकृत नहीं है। वह शक्ति और कुछ नहीं, आंगिक विलास की अंतिम अभिलाषा है, आत्मा की परितुष्टि की छलना है, सारे कर्त्तव्यों को भूलने का बहाना है और उससे बढ़कर अपने स्वार्थों का एकीकरण वास्तव में कहीं और पाना असंभव है। यह प्रेम जो आगे त्याग का नाटक रचता है, वह व्यक्ति की समाज के आगे पराजय है और उससे बढ़कर भेद मिटाने का कोई अतिरिक्त साधन भी नहीं है।'

इंदिरा हँस दी। ऊषा भी। दोनों ने एक दूसरे को खुली दृष्टि से देखा। कुहासा फट गया, किरणें फूट निकलीं। इंदिरा ने कहा—'ऊषा! तुम पागल हो। तुम कुछ नहीं जानतीं।'

'नहीं जानती। यही अभिमान यदि तुम्हारी साधना का सबसे बड़ा प्रकाशस्तंभ बन सके तब भी मैं कभी नहीं तड़पूँगी। वह दिन भी दूर नहीं है जब तुम चंद्रमा को पृथ्वी के चारों ओर घूमनेवाला उपग्रह जानकर भी उसमें आग पाओगी और शय्या पर तड़पा करोगी।'

इंदिरा ने बात काटकर कहा—'ऐसा कभी नहीं होगा। मैं कभी भी मर्यादा का संतुलन नहीं छोड़ सकूँगी।'

'कैसी मर्यादा?'—ऊषा पूछ बैठी—'शय्या पर कैसी मर्यादा?'

इंदिरा उठी और उसने मुड़कर कहा—'यह सब तुम्हें किसने बता दिया?'

ऊषा ने नाक सिकोड़ी, आँखों की भौंहें तन गईं और फिर छोड़ दी जैसे तीर छोड़कर प्रत्यंचा ढीली हो जाती है। उसने कहा—'तुम मूर्ख हो।'

इंदिरा ने अधिक नहीं कहा। वह सिर झुकाकर सोचने लगी। ऊषा ने कहा—'मुझे भय है।'

'किसका?'—विस्फारित नेत्रों से इंदिरा ने अंकित कर दिया।

ऊषा ने इस प्रश्न को झुककर ऊपर से निकल जाने दिया। इंदिरा ने हठात् उसके हाथ पकड़कर कहा—'भैया से न कहना।'

ऊषा ने कहा—'केवल भैया? चाहे किसी का कोई स्वार्थ हो या नहीं। जो सुनेगा उसी को द्वेष होगा। मनुष्य को मूर्खता से भी ईर्ष्या होती है, क्योंकि मूर्खता ही उसकी बुद्धि की सीमा है।'

इंदिरा ने कृतज्ञता से सिर झुका लिया।

---

[६]

यह भी सही, वह भी सही

लीला ने देखा, लवंग आज स्फूर्ति से व्याकुल हो रही थी। वह चकित-सी देखती रही। लवंग कभी हँसती थी, कभी मुस्कराती थी। लीला ने क्षण भर को सोचा, कहाँ है इसमें जीवन की गंभीरता? क्या यह ठीक है?

बिजली की तरह कौंध हुई। आकाश मेघाच्छन्न था। ठंडी-ठंडी हवा चल रही थी। अभी अभी वे दोनों प्रोफेसर मिसरा के घर से आई थीं। प्रोफेसर को लड़कियों पर विशेष दृष्टि रखने के कारण कालेज के लड़के काफी बदनाम करते रहते हैं, किंतु वह किसी की चिंता नहीं करता। विद्यार्थियों के जीवन में उसका एक अपना पहलू है। वह अकेला हो, ऐसी बात नहीं। उसके जैसे अन्य प्रोफेसर भी हैं, किंतु कोई केवल खुशामदी है, कोई केवल कुचक्र रचनेवाला, कोई केवल गुटबंदी करनेवाला। प्रोफेसर मिसरा में यह सब बातें हैं, वह सबसे अधिक प्रभावशाली है, क्योंकि सबसे अधिक महत्त्व का उसी की सीमा से उदय होता है। उसकी व्यापकता दूसरों के जीवन का परिणाम है। वह संगीत में दिलचस्पी लेता है, किसी भी विषय पर कुछ न कुछ बोल लेता है। वह अपनी निर्बलता को सम्मान के कवच में रखता है। अपने अज्ञान को वह सरलता से अपनी पदवी के नीचे ढँक देता है। जब नवीन वस्तुओं की बात होती है तब वह प्राचीन को श्रेष्ठ साबित करता है; क्योंकि उसका दायरा उनके बाहर तिल भर भी नहीं, इसलिए वह अपनी आयु का प्रयोग करता है; और जब आनंद का प्रश्न आता है तब वह विद्यार्थियों से एक पग आगे ही रहना चाहता है, क्योंकि उसके पास साधनों का आडंबर है।

लवंग को आज उसने चाय पर बुलाया था। साथ में ही लीला थी। उसने अपना आतिथ्य उसकी ओर भी बढ़ाया था। लवंग ने कह दिया था—आप निश्चित

रहिए। मैं इन्हें अपने साथ ही लेती आऊँगी। लीला ने प्रतिरोध करना चाहा था, किंतु प्रोफ़ेसर ने कृतज्ञ होकर कहा—मुझे विश्वास है।

उसके चले जाने पर लीला ने कहा —'वाह! मुझे क्यों फांस लिया?'

'क्यों क्या हुआ?' लवंग ने पूछा। जैसे वह सब कुछ समझकर भी अनजान बन रही थी। लीला ने कहा—'तुम्हें बुलाया था, तुम जातीं।'

'बुलाया तो तुम्हें भी है?' लवंग मुस्कराई। लीला को यह अच्छा नहीं लगा। उसने कहा 'मैं नहीं जाऊँगी।'

'क्यों?'—लवंग ने उसे फिर हँसकर देखा।

'नहीं जाऊँगी, क्योंकि मैंने अपने मुंह से तो आने को कहा नहीं। दूसरे प्रोफ़ेसर हैं, कालेज का। घर पर जाने का क्या काम? मैं क्या उसकी नौकर हूँ?'

'तो आखिर तुम्हें इतनी परेशानी क्यों है?'—लवंग ने उसकी भावना पर प्रहार करते हुए कहा।

मुझे वह आदमी पसंद नहीं है। मुझे उसकी सूरत अच्छी नहीं लगती। वह डेडी का दोस्त हो सकता है।'

'मेरी समझ में नहीं आता, आखिर हम लोग बातें क्या करेंगे?'—लीला ने पूछा।

'वह अपनी लड़कियों से तुम्हारा परिचय करायेगा।'

'तो इसके लड़कियाँ भी हैं?'—लीला ने उत्सुकता से पूछा।

'हां, दो हैं, तुम अभी इस शहर में नई आई हो न इसी साल? तभी नहीं जानतीं। दोनों इसी कालेज से बी० ए० कर चुकी हैं। बड़ी तो एम० ए० है शायद। जानती होतीं तो यह न कहतीं।'

'तो मैं उन लड़कियों से जान-पहचान करने जाकर क्या करूँगी? किसी के घर जाना और वह भी इस तरह, अच्छा नहीं लगता।'

लवंग चुप हो गई। उसने कोई उत्तर नहीं दिया। लीला का रोष वह समझ गई थी।

सांझ की सुहावनी बेला में जब आसमान में एक तरफ नीली नीली घटाएं उठने लगीं, लीला गाती हुई अपने बँगले में लान पर आ गई और आराम कुर्सी पर अधलेटी-सी गुनगुनाने लगी। उसी समय लवंग ने अपनी मोटर को भीतर लाकर

खड़ा किया और दो बार अपनी गाड़ी का भोंपू बजाया। लीला उठी और उसके पास गई।

लवंग ने विस्मय से कहा—'अरे! तुम अभी तक तैयार नहीं हुईं?'

'क्यों? आखिर बात क्या है?'—लीला ने अधिक विस्मय दिखाते हुए प्रश्न किया।

'चलना नहीं है प्रोफ़ेसर के घर?'

लवंग के प्रश्न से लीला भीतर ही भीतर चिढ़ गई। उसकी बुद्धि पर कुंठा की घरघराती आवाज़ गूँज गई। क्यों यह लड़की कुछ आत्मसम्मान नहीं रखती? अधिक से अधिक फ़ेल कर देगा। इससे अधिक तो कुछ नहीं। फिर क्यों उसकी इतनी खुशामद की जाये। बड़ा आदमी है तो अपने घर का। हम भी तो किसी से कम नहीं हैं?

लवंग ने उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही कहा—'चलो न! मेरे कहने से ही एक बार चलो।'

'क्या होगा जाकर?'—लीला ने फिर व्याघात डाला।

'जो होगा वह तुम आँखों से देख लोगी। आँखें नहीं होंगी तो कुछ भी नहीं देख पाओगी। क्योंकि वैसे वहाँ देखने को कुछ भी न होगा। लेकिन तुम काफ़ी ऐसी बातें जान जाओगी जो आज तक तुमने कभी नहीं सोची होंगी। चलो! कह रही हूँ चलो। कुछ बिगड़ जायेगा, एक बार मेरी बात मानने में?'

लीला सोच में पड़ गई। फिर चुपचाप भीतर की ओर चल पड़ी। लवंग ने कहा—'जल्दी आ जाना।'

लीला भीतर जाकर कपड़े बदलने लगी। अनजाने ही उसने शीशे में अपने आपको देखा। देखा कि वह लवंग से कम तो नहीं लग रही है? याद आया। बैठकर जल्दी से अधरों पर लाली लगाई, आँखों पर जल्दी से सुरमे की हल्की रेखाएँ सलाई से खींच लीं और फिर चल पड़ी।

लवंग ने दरवाज़ा खोल दिया। लीला बैठ गई। गाड़ी चल पड़ी। दोनों में से कोई भी नहीं बोला। मोटर जब रुकी, लीला ने देखा, प्रोफ़ेसर बाहर खड़े थे और उनका स्वागत करने को प्रतीक्षा कर रहे थे। लवंग ने मुस्कराकर कहा—'देखिए ज़रा देर हो गई। आपको व्यर्थ प्रतीक्षा करनी पड़ी।'

प्रोफ़ेसर हँसा, मानों कोई बात नहीं। वे लोग जाकर भीतर बैठ गये।

लीला ने देखा, लवंग मुस्करा रही थी। उसने देखकर पलकें झुका लीं। उसने धीरे से कहा—'लवंग! जब हम प्रोफ़ेसर के घर से लौट रहे थे तब तुम हँसी क्यों थीं?'

'कुछ नहीं यों ही।' —लवंग को कुटिलता काँपकर गालों पर स्नायविक आलोड़न करने लगी। लीला ने उठकर कहा—'तुम्हें निश्चय ही बताना होगा। प्रोफेसर चालबाज़ है। मैं यह समझ गई हूं, कि उससे पढ़कर कालेज में नहीं रहा जा सकता। उसकी वे लड़कियां! उफ़! मुझे तो सच कह दूं, उनमें और बाजारू औरतों में कोई भेद नहीं देख पड़ा।'

लवंग हंसी। उसने कहा—'तुमने अभी उनकी मा को नहीं देखा। प्रोफ़ेसर को गम है तो अपनी बीबी का। जो पद उसे उसकी लड़कियाँ दिला सकी हैं, वह तो तुम देख ही चुकी हो। लेकिन प्रोफ़ेसर की पत्नी कहीं अधिक सफल होती। तब प्रोफेसर कहीं प्रिंसिपल होता। लेकिन कमबख्त दिन भर पति से लड़ती है कि तुमने दोनों लड़कियों का सत्यानाश कर दिया। अब उनका कहीं विवाह भी नहीं हो सकता, क्योंकि वह जाति ही ऐसी दकियानूसी है, जिसमें स्त्रियों को उच्च शिक्षा वर्जित है।'

'उच्च शिक्षा?'— लीला ने व्यंग्य से कहा—'यही उच्च शिक्षा है? पैसे के लिए जो स्त्री अपने को बेच सकती है वह वेश्या नहीं है, तो है क्या? प्रोफ़ेसर मिसरा ने जिस तरह अपनी लड़कियों की इज्ज़त देकर यह दर्जा हासिल किया है शायद वह इसी तरह हम लोगों को भी समझता है? क्यों?'

लवंग इस प्रश्न के लिए नितांत अनुद्यत थी। उसने अपनी सीमाओं का प्रसार संकुचित करते हुए कहा—'तुम अभी नादान हो लीला! संसार में अभी और भी न जाने क्या क्या होता है?'

'होता होगा।'—लीला ने उपेक्षा से कहा—'मुझे उस आदमी से नफ़रत है, नफ़रत है क्योंकि वह भला नहीं है। उसका पूरा ख़ान्दान हराम पर पल रहा है। अपना मान बेंचकर इस तरह सुबह शाम आराम से खाना कोई कमाल नहीं है।',

लवंग ने सुनकर चौंककर सिर उठाया। उसने धीरज से कहा--'उत्तेजित क्यों होती हो लीला? हममें से कौन ऐसा नहीं है? कोई देश का मान बेचता है,

कोई समाज का, कोई लड़की का। मैं तो उस दुनिया की सोच भी नहीं पाती जिसमें सबका सम्मान भी हो और सुख भी हो। यदि दुनिया में अकेले रहते होते, तो भी सब कुछ अपने मन के ही अनुसार नहीं हो जाता। सुख के लिए त्याग आवश्यक है। अपमान यह नहीं है। मैं अपमान उसे समझती हूँ कि साधनहीन होकर हा-हा खाता फिरे। अभिमान यदि है, तो रुपये का, धन का। सम्मान वह है जो सब कुछ होते हुए भी, करते हुए भी, कोई कुछ कहने का साहस न करे। बड़े-बड़े आदर्शों को चलाने का एक ही उपाय है। वह है धन।) तुम एक ग़रीब का घर नहीं बनवा सकतीं, बिड़ला करोड़ों का दान देता है। कौन नहीं जानता कि वह धन मज़दूरों का खून चूसकर पैदा किया गया है, धर्मादा कहकर लिया गया है। लेकिन प्रसिद्धि बिड़ला को ही मिलती है। संसार उसकी महानता की प्रशंसा करता है और उसकी सारी चालबाजियाँ उसके धन के कारण छिपी रह जाती हैं। वह दानवीर है, बड़े से बड़े नेता से मिलता है, सरकार में भी उसकी इज़्ज़त है। फिर प्रोफ़ेसर मिसरा में क्या दोष है? सैकड़ों आदमी अपनी लड़कियों की इज़्ज़त बचाने के लिए भूखों मरते हैं, लेकिन उससे उनकी हालत नहीं सुधरती। प्रोफ़ेसर को दस आदमी जानते हैं, बोस का काम उसके पैर के नीचे दबता है और कोई कुछ हो, सामने इज़्ज़त ही करता है, कुछ कहने का साहस नहीं करता। दे सकती हो इसका जवाब? क्यों? क्योंकि उसके हाथ में अधिकार है। वह चाहे कुछ करे।'

'तो? तुम्हारा मतलब है कि वह ठीक है?'

'यह तो मैंने नहीं कहा। लेकिन एक बात अवश्य है। उससे बिगाड़ करके अपनी हानि के अतिरिक्त और कोई परिणाम नहीं। मिलता है, मिले। बुलाता है, बुलाये। हम तुम एक, मगर गज़ भर के फ़ासले से। और फिर एक बात पूछती हूँ। बुरा तो न मानोगी?'

'नहीं'—लीला ने हँसकर पूछा।

'वह क्यों बुलाता है, तुम्हें? हमें? लड़कों को तो नहीं बुलाता? उसको लड़कियाँ ही दिमागवाली हैं, ऐसा तो नहीं? हम क्या नहीं कर सकतीं?'

लीला डर गई। उसने कुछ भी नहीं कहा। मुँह फाड़े अवाक् देखती रही। लवंग ने गर्व से कहा—'समाज में हमारा जितना सम्मान है, उसे पाई पाई चुकता करा लेना हमारा अधिकार है। हमारी बुद्धिमानी पुरुष की लोलुप मूर्खता का लाभ

उठाने पर निर्भर है। नहीं तो कुछ नहीं। संसार में सब अपना स्वार्थ देखते हैं, फिर अपना क्या दोष? बताओ न?'

लीला अवसन्नमना सी बैठी रही। लवंग ने ठीक कहा था। यह गाड़ी तो ऐसे ही चलती जायेगी। यह एक अजीब शत्रु है जो डाँटता है, फिर भीख माँगता है। यह एक संघर्ष है। दासी भी स्वामिनी है। उसने देखा, लवंग ऐसे मुस्करा रही थी जैसे कुछ तो नहीं, इतनी चिंता की क्या आवश्यकता?

लीला घृणा और भय से खिन्न हो गई। वह सोचने लगी कि अपमान की स्वीकृति की निर्बलता ही यदि त्याग है, तो मनुष्य का सम्मान क्या है, जो युगों से बलिदानों के पत्थरों पर व्यर्थ ही सिर पटकता रहा है।

---

[७]

विभ्रम

साँझ की सुनहली धूप पेड़ों की फुनगी पर नाच रही थी। आकाश में चंचल बादल खेल रहे थे। वायु के झँकोरे हृदय में एक चंचल स्पंदन भरकर सिहर उठते थे। यमुना अपनी मंथर गति में लहरियों में नवीन स्फूर्ति भरकर लुटा रही थी। काँपते हुए पत्तों में यौवन उत्साह से फहरा रहा था। सुंदर नीरवता गुनगुनाती हुई वायु में माधुर्य का सलोनापन भर भर देती थी।

समर चुपचाप बैठा हुआ सिगरेट पी रहा था। कामेश्वर और वीरेश्वर नहर की एक छोटी दीवाल पर बैठे, यमुना का नहर में बहकर आता हुआ पानी देख-देखकर मुग्ध हो रहे थे, वीरेश्वर कहने लगा—'उस अशांति, उस भीषणता की अपेक्षा यह निस्तब्धता कितनी अच्छी लगती है। मन चाहता है, आज नीरवता में अपनी सत्ता का लय कर दें, जिससे फिर कभी वह विषमताएँ, वह अंधकार हृदय को छू भी न पाये। कामेश्वर! मैंने सुना है तुम पी० सी० एस० का इम्तहान देने इलाहाबाद जा रहे हो?'

कामेश्वर कुछ देर चुप रहा। फिर कहने लगा—ठीक सुना है तुमने।

'तुम कामेश्वर? स्टूडेंट फेडरेशन के हर एक नेता को इस तरह साम्राज्यवाद के सामने नाक रगड़ते देखकर लोगों के दिल में उसके लिए क्या इज्जत रह जायेगी, सोच सकते हो?'

'मैं जानता हूँ, लेकिन मुझे एक बात बता सकते हो? कालेज में कौन सोशलिस्ट, कौन कम्यूनिस्ट नहीं है? इनमें से अट्ठानबे फीसदी ऐसे होंगे जो शायद साम्यवाद की अ आ इ ई भी नहीं समझते होंगे। लड़कियों में नाम पैदा करने के लिए फैसिस्टों के बारे में जानना जरूरी हो गया है। इस दोगलेपन से मुझे नफ़रत हो गई है। जब तक हम जैसे लोग इस नौकरशाही को जाकर साफ़ नहीं करेंगे, तब तक

हिंदुस्तान का यह लचर ढचरा कभी भी ठीक नहीं हो सकेगा। मुझे दुनिया में बहुत कुछ करना है। असहयोग, अहिंसा से न स्वराज्य मिलेगा, न स्वतंत्रता। दुनिया गरज रही है और तुम मंत्रों से रोशनी फैला देना चाहते हो?'

'लेकिन साम्राज्यवाद में व्यक्ति कुछ नहीं कर सकता। वहाँ व्यक्ति एक मशीन का पुर्जा हो जाता है। वहाँ कोई भी एक काम के लिए ज़िम्मेदार नहीं है। है तो सिर्फ़ वह तरीका। तुम इन बदमाशों के गिरोह में इकट्ठे हो जाओगे?'

कामेश्वर मुस्करा उठा। वीरेश्वर ने सुना, वह कह रहा था—'हम जिस स्तर के प्राणी हैं वह मध्य वर्ग है, जो रुपयेवालों में भी है और गरीबों को भी छूता हुआ है। मैं अपने मुल्क से पहले अपने घर को सँभालना चाहता हूँ। जानते हो, मैं अपने घर का वारिस हूँ और सबसे ज़्यादा ज़िम्मेदारियाँ मेरे ऊपर हैं। बोलो, जिन्होंने मुझे पाला है, इतना बड़ा किया है, अब मैं इन कामरेडों की तरह पैजामा पहनकर डोला करूँ और वह अपनी इज्जत को धूल में मिलाकर फाक़ाकशी किया करें? वक्त ही ऐसा है। आदमी को हमेशा उसकी परिस्थिति चलाती है और मैं कोई नेपोलियन तो हूँ नहीं कि मैं खुद उनपर हुकूमत चलाने लगूँ।'

'नेपोलियन'—समर ठठाकर हँस पड़ा—'नेपोलियन क्या कोई बहुत बड़ी चीज़ थी। बच्चा था बच्चा।' उसके बात करने के ढंग से दोनों चौंक उठे। मानों चूहा पहाड़ के सामने जाकर चिल्ला उठा था—'मैं छोटा हूँ' और पहाड़ से वही प्रतिध्वनि सुनकर हँस उठा था कि, 'मैं उससे छोटा हूँ, तो क्या? वह भी तो किसी से छोटा ही है।'

चश्मे के पीछे से उसकी आँखें चमक उठीं। वीरेश्वर ग़ौर से देखता रहा और उसके मुँह से अचानक ही निकल गया—'आज चाय के प्याले में एकदम ही यह तूफ़ान कैसे आ गया?'

कामेश्वर ठठाकर हँस पड़ा, किंतु समर के गांभीर्य ने उसकी हँसी को टुकड़े-टुकड़े कर दिया। वह देख रहा था मानों वे दोनों आरपार थे और उसकी दृष्टि में उनकी उपस्थिति कोई अड़चन नहीं डाल रही थी। कामेश्वर ने एक सिगरेट जलाकर धुएँ को ऊपर की तरफ़ छोड़ा। तीनों चुप हो गये। धूप जा चुकी थी। अँधियाले की धूमिल पलकों का झुकना प्रारंभ हो गया था।

वीरेश्वर ने मौन तोड़ दिया। उसने कहा—'क्या कहूँ कामेश्वर! फिर वही चुनावों का जोर है! सज्जाद, कमल और नरसिंह प्रेसीडेंटशिप के लिए खड़े हुए हैं।

मैं नरसिंह को समझा चुका हूँ कि वह बैठ जाये, मगर वह राजी नहीं होता। हरी दोनों तरफ़ का खेल खेल रहा है। रानी रेनौल्ड के पीछे मैक्सुअल उससे खार खाये बैठा है।'

समर ऐसे मुस्कराया जैसे कमरे में दूध का बर्तन खुला देखकर किसी को पास न पा, बिल्ली होठों पर जीभ फेरती है। 'वीरेश्वर'—समर कहने लगा—'ज़िंदों का भी ब्याह होता है, गुड़ियों का भी; हर्ज ही क्या है? तुम कम्यूनिस्ट हो, अब हिंदू मुसलमान करके चुनावों में अपना पासा आज़मा रहे हो? कला भी तो क्या ही लड़की है।'

'हाँ'—कामेश्वर पूछ उठा—'तुम्हारी कला के क्या हाल हैं?'

वीरेश्वर गंभीर हो गया। उसने दोनों को जलती हुई आँखों से देखा—'हाँ'—उसने कहा—'कला से दोस्ती करके मुझे शर्माने की कोई जरूरत नहीं है। और चुनावों के बारे में मैं जानता हूँ कि वह जिंदगी में कुछ नहीं, लेकिन तुम भी तो अपना वक्त काटने के लिए सिगरेट पीते हो।'

समर मुस्करा उठा। वह बोला—'जैसे शब्द उसके मुख से फिसल गये—खा पीकर जब नवाब बैठते हैं, तो उनके लिए वक्त काटना दुश्वार हो जाता है?'

बात कुछ कड़ी थी। विषमता का उदय हो सकता था। कामेश्वर ने बात बदल दी।

'हरी तुम्हारा पुराना दोस्त है, वीरेश्वर! क्या वह तुम्हारे समझाने से भी नहीं मान सकता?'

मगर समर के दिमाग़ का कीड़ा उछलने लगा था। वह कहने लगा—'एक ओर मुहम्मद गोरी बैठता है, दूसरी तरफ़ पृथ्वीराज। काश, मैकाले से मुलाकात होती तो आज वह कितना ख़ुश नजर आता। ज़िम्मेदारियों का कितना लाजवाब फ़ायदा उठाया जाता है। यहाँ से रोशनी फैल रही है, यहाँ इंग्लैंड की डिमोक्रेसी की पूरी झलक है। कोयला एक दिन केटली से कह रहा था, बड़ी काली है तू? हरी क्या? काम रुकने पर ख़ुदा को भी टाल दिया जाता है। यह मकड़ी का जाला ज़हर से भिगोया जा चुका है, कोई इसमें से बाहर नहीं जा सकती, कैसी भी मक्खी क्यों न हो!'

कामेश्वर चुपचाप सिगरेट पीता रहा। समर उठकर टहलने लगा। उसके विचित्र

स्वरूप को देखकर वीरेश्वर का क्रोध क्षणभर में ही विलीन हो गया। मनुष्य कुछ एक वस्तुओं को, चाहे वह मनुष्याकृति की ही क्यों न हो, अपने से तुच्छ समझता है। उसने उसे कोई जवाब नहीं दिया। दोनों ने एक दूसरे की तरफ़ देखा—देखा कि दोनों की दृष्टि में मानों अथाह व्यग्य अट्टहास कर रहा था। एक विलास वैभव, विजय से लदा अकबर था, दूसरा बेघरबार, भूखा, मगर आन पर अड़ा महाराणा प्रताप। जैसे किरणों को बाँधने के लिए बादल ने सिर उठाकर गर्जन किया था, मगर वह पानी को तरह पिघल उठा। और दोनों आँखें शून्य से टकराकर लौट आईं। दोनों को अपने ऊपर विश्वास था। जब दोनों ने मुड़कर देखा, कामेश्वर यमुना के पानी को चुल्लू में भर-भरकर पी रहा था। इन्हें अपनी ओर देखते देखकर वह हँसा और फिर पानी में हाथ हिलाकर मुँह पोंछता हुआ लौट आया।

'चला जाये क्यों?'— उसने पूछा।

'हाँ, अंधेरा तो हो चला है।'

तीनों लौट चले। खेतों के बीच में कोई बैठा कुछ गा रहा था। उस गीत से तीनों आकर्षित हो चले। स्वर एक स्त्री का था और वह कठ एक परिष्कृत कंठ था। कामेश्वर चुपचाप उस ओर फिसलता-सा बढ़कर एक झाड़ी के पीछे छिप गया। उसके पीछे ही वह दोनों भी थे।

और उन्होंने देखा, प्रो० मिसरा अपने हाथों पर सिर धरकर उदास बैठा है। लवंग बैठी बैठी मिट्टी में कुछ रेखाएँ बना रही है और लीला गा रही है। वह गीत फूलों से लदे सुरभित वृक्ष की कोकिला के लिए करुण पुकार थी। जब वह गीत समाप्त हो गया, प्रोफ़ेसर ने सर उठाया। लवंग के होठों पर एक कुटिल मुस्कराहट छा गई।

'खूब गाती हैं आप!'—प्रोफ़ेसर ने गंभीर नयनों से देखते हुए कहा, मानों अपने गुबार को उसने दबा लिया था। लीला समझती थी, मगर अल्हड़पन उसके जोड़ों में अठखेलियाँ कर रहा था। आग बुझने को आई थी, मगर राख की गर्मी अब भी बाकी थी।

लवंग मुस्करा उठी। उसने कहा—गाती कहाँ है लीला, जाने कितने दिलों पर अंगारों का नर्तन देखती है।

और वह सब हँसे। प्रोफ़ेसर ने चुप होकर कहा—'आप पढ़ाई में भी तेज हैं, गाने में भी···'

लीला लाज से लाल हो उठी। वह समझती थी। यह एक इशारा था कि यूनिवर्सिटी की कितनी बड़ी हस्ती से वह बात करने का गौरव प्राप्त कर रही है। जो सिनेटर है, जो उस पार्टी का है जिसने तमाम विश्वविद्यालय को काबू में कर रखा है, जो चाहे जिसे नौकरी दिला सकता है, जो चाहे जिसका जीवन शिक्षा-विभाग में नष्ट कर सकता है और जो ओहदे और रुपये के बल पर चाहता है लड़कियों को तितली बनाकर खिलाये, मगर जिसकी उम्र साथ नहीं देती·····

लीला ने सिर उठाकर देखा। और आज भी वह इसी सिलसिले की शुरुआत के रूप में इन दो लड़कियों को लाया था। यह वह धनुष था जो बाण छोड़कर एक बार टंकार से अपनी विजय घोषित करता था।

प्रोफ़ेसर मिसरा अपने विषैले जीवन से स्वयं ऊब उठता था। अपने घर के दकियानूसी वातावरण से वह उतनी ही नफ़रत करता था जितनी अपनी पार्टी के लोगों से। आज वह ऐसी अवस्था में था जब दस आदमी उसका मान करते थे और साम्राज्यवाद का घुन लगा हुआ वह प्रतीक शराबी की जलती हुई पिपासा को किसी न किसी तरह तृप्त कर लेना चाहता था। वह जानता था, लड़कियाँ उससे घृणा करती हैं, और सामने उसके विरुद्ध बोलने का साहस उनमें नहीं है। भूखी लोमड़ी कच्चा या पक्का कैसा भी मांस हो, छोड़ना नहीं चाहती थी।

लवंग को सन्नाटा कभी पसंद नहीं आता। वह नहीं चाहती, लोग आँखों में बातें किया करें कि कोई उन्हें समझे ही नहीं। वह कुछ कहना ही चाहती थी, मगर पास में कोई पदध्वनि सुनकर वह चुप हो गई और उन्होंने बड़े विस्मय से देखा, कामेश्वर, वीरेश्वर और समर ऐसे चले आ रहे हैं जैसे उन्होंने इन्हें देखा ही नहीं था।

प्रोफ़ेसर मिसरा उन्हें देखकर एक बार तड़प उठा, मगर वह फ़ौरन ही पुकार उठा—'अरे, उधर कहाँ जा रहे हैं आप लोग? आइए, आइए!'

तीनों ने बड़े आश्चर्य से मुड़कर देखा और उधर ही मुड़ गये।

यह एक विचित्र मिलन था। भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में एक ही समय में भिन्न-भिन्न विचार आये और परिस्थिति की समानता के कारण वह अपने आप समान

रूप से हो प्रायः बदले, क्या है जो यह यहाँ बैठे हैं, यह आ कहाँ से गये और यह उलझन ठोस होकर सबके दिमाग से टकरा उठी—अब ? फिर ?

प्रोफ़ेसर हँसा। उसने कहा—'मुझे उम्मीद थी कि कालेज में अब भी कुछ कवि-हृदय होंगे। बहुत दिन पहले, जब मैं पढ़ता था, ऑक्सफोर्ड में लोग मुझे घूमने का इतना शौकीन देखकर शैली कहा करते थे।'

वीरेश्वर ने उसी लहजे से कहा—साहब, मैंने आपसे कुछ भी नहीं कहा, मेरे मामाजी जब कैम्ब्रिज में थे तब उनको भी यही शौक था, लेकिन उन्हें लोग डौन-क्विगज़ोट कहा करते थे।

उठते हुए हास्य के बीच में ही प्रोफेसर समझ गया था कि यह मामाजो कोई कल्पित व्यक्ति हैं। शायद अनातोले फ्रांस के पुतोया से भी कम अस्तित्व है इनका, मगर इस समय वह रावण से भी ज़्यादा बलवान बनकर अचानक हो पैदा हो गये थे। किंतु वह सात समदर पार जाकर, दुनिया को बेवकूफ़ बनाकर, व्हिस्की पीकर दुआ करनेवाले अंगरेज़ों के सामने दुम हिलाकर अपने नसीब खोल चुका था, वह भला इस मामूली बात से क्यों विचलित होने लगा। उसने वीरेश्वर को ऐसे देखा जैसे - बस ?

न इन लोगों ने हो कुछ पूछा, न उन्होंने ही कुछ कहा। मिलन एक रहस्य बनकर हृदय को कचोट उठता था। प्रोफ़ेसर चाहता था, बात साफ हो जाये और फिर सोचता था, यह लड़के हैं हो क्या चीज़ ?

अंधकार का अंचल फहरने लगा था। हवा और ठंडो हो गई थी। लवंग उठकर खड़ी हो गई। सब लोग लौट चले। कोई दो ढाई सौ गज़ की दूरी पर एक कार खड़ी थी। लोला स्टीयरिंग व्हील पर जाकर बैठ गई। लवंग बिना पूछे हो उसकी बगल में जा बैठी। लीला ने कहा--'आप लोग आइए न ?'

तीनों ने एक दूसरे की ओर देखा। समर निर्विकार-सा देखता रहा। कामेश्वर के भीतर उत्सुकता सुहाग का घूँघट खोल चुकी थी। वीरेश्वर मुस्करा उठा। रात आ चली थी। सुदूर शहर की बिजली की बत्तियाँ चमक रही थीं। आस्मान में तारे बिखरे हुए थे। कामेश्वर सोच रहा था कि उन लोगों ने बुलाया, हमने नमस्ते तक नहीं किया और उसके बाद समझ में ही नहीं आता, जो कुछ हुआ वह क्या था ? किंतु वह हो चुका था। और लवंग जा इस तरह लीला की बगल में जा बैठी है,

क्या इसमें प्रोफ़ेसर का मूक अपमान नहीं है। फिर भी प्रोफ़ेसर बैठ चुका था। जो धारा अखंड वेग से पहाड़ी पर से लुढ़क चली थी वही अचानक नीचे एकदम ही ऐसी टुकड़े-टुकड़े होकर बहने लगी है ?

वीरेश्वर बेबस-सा सिर झुकाये था। सहसा वह बोल उठा—'आप लोगों को तकलीफ़ होगी।'

लवंग ने आश्वासन दिया—'आइए न, तकल्लुफ़ क्यों आखिर ?'

'जगह भी तो नहीं होगी' और उसने शंकित नयनों से प्रोफ़ेसर की ओर देखा। प्रोफ़ेसर गंभीर था। गंभीर ··जैसा कोई बर्फ़ीला पहाड़ होता है। उसने परिस्थिति को समझ लिया। ये लड़के पीछे से कुछ की कुछ अफ़वाह उड़ा सकते हैं और इन लड़कियों से भी इनकी अभी कोई खास जान-पहचान नहीं मालूम देती। वह बोला—'जगह तो करने ही से होगी।'

वीरेश्वर आगे बढ़कर प्रोफ़ेसर की बगल में जा बैठा। लाचार, बाकी दोनों भी किसी तरह जगह करके बैठ गये। गाड़ी चल दी।

ऊँची पहाड़ी पर दिन भर सैर करके जब लौटते वक्त ढाल पर मोटर लुढ़कती है तब यौवन एक शांति और तृप्ति से भरने लगता है एक अनबूझ शिथिलता छाने लगती है। वही इनके हृदयों में खेल रही थी।

लैला एक धनी की लड़की थी, लवंग उससे भी अधिक। लीला में धन का उतना मद न था जितना लवंग में। लवंग जीवन को समझकर अपने आप मानों नई उलझनें पैदा कर रही थी और उसे दुरूह चक्करों में घूमना अच्छा लगता था। वह बंधन नहीं चाहती थी, किंतु उसकी स्वतन्त्रता में ग़ुलामी और आज़ादी का कोई फ़र्क ही न था। इस समय जो ये पीछे बैठे हैं, इनमें कामेश्वर सबसे सुंदर है। वह साफ़ भी है, और यौवन के पौरुष की उसमें एक प्रकार की गंध है जो स्त्री चाह सकती है। वह मुड़कर बैठ गई। कामेश्वर की ओर देखकर उसने कहा—'उस दिन इंदिरा ने जो आपसे परिचय कराया उसके बाद फिर आप कभी मिले ही नहीं।'

कामेश्वर सोते से जाग उठा। वह जवाब देने की कोशिश में एक बार लवंग की ओर दृष्टि उठाते ही सिहर उठा। यह दृष्टि नहीं थी, अंगारों का इतिहास था। प्रोफ़ेसर अधमुँदी आँखों से ऊँघता हुआ सिगरेट पी रहा था। हवा का झोंका आया और सिगरेट का धूँआ उसकी आँखों में चला गया। उसकी आँखें सहसा ही मिच गईं

और देखने की इच्छा रखते हुए भी वह देख न सका। वीरेश्वर ने घड़ी देखी और अपने हाथ को कामेश्वर की जाँघ पर रखकर हल्के से एक चिकोटी काटी। कामेश्वर कहने लगा—'इस साल एक तो वक्त नहीं मिलता; फिर कुछ कालेज में आने की तबियत भी नहीं करती। बस, वक्त पर आना और वक्त पर चले जाना। कभी कभी पुराने दोस्तों से मुलक़ात हो जाती है।'

लवंग हँस पड़ी। उसकी हँसी में वह चुलबुलापन था जो फ्रांस की मांसल नाचनेवाली लड़कियों में। उसके गालों में गढ़े पड़ते थे जैसे यौवन का एक अथाह प्याला हो जिसमें उन्माद और रूप का विष भरा रहता था। कामेश्वर की इच्छा एक बार शायद उसे पी लेने की भी हुई हो। पर वह एक ऐसी नागिन थी, जिसका कोई ठीक नहीं था। कामेश्वर जानता था कि मस्त हथिनी किस तरह काबू में लाई जाती है, बिचकती हुई घोड़ी को किस तरह राह पर लाया जाता है, मगर वह बोर्जुवा लड़कियाँ! साम्राज्यवाद को यह बुरा समझती हैं, मगर रेडक्रास के फंड के लिए नाच गा सकती हैं चाहे वह साम्राज्यवादी युद्ध के लिए ही चंदा क्यों न हो रहा हो। समाजवाद भी ठीक है, मगर अपनी ग़रीबी नहीं। पार्टियों में इश्क भी लड़ाती हैं और सतीत्व का भयंकर पर्दा भी इनपर पड़ा रहता है। यह हिंदुस्तान का अजीब वर्ग था, जहाँ स्त्री न पूर्व की थी, न पश्चिम की; जहाँ आज़ादी और ग़ुलामी का ऐसा विचित्र सम्मेलन हुआ था कि न कोई आगे जाने की राह थी, न पीछे हटने की ही। अपने भीतर ही एक ऐसी कशमकश थी कि निरुद्देश्य, दिन पर दिन समय का कुछ पुरानी की जगह नई रूढ़ियों में कट जाना आवश्यक-सा था।

और लवंग सचमुच ही ऐसे देखती थी जैसे मीनार पर से शाहज़ादियाँ जनता की सलामी लेकर मुस्कराती थीं। शाहजादियाँ जो अधिकार की खोखली नींव पर अपनी परवशता, अपनी ग़ुलामी की छत के नीचे दबी रहती हैं और शराब के नशे में जीवन की वास्तविकता को बहला देने का प्रयत्न करती हैं।

अँधेरे में बिजली के खंभे सर्र-सर्र पीछे रह जाते थे। मोटर तेज़ी से भाग रही थी। यह ऐसा भोलापन था जो हृदय को उन्मत्त कर देता था। वह सब चुप थे जैसे कहने को संसार में आज किसी के पास कुछ नहीं था। जिस निरुद्देश्य गति में वह बहे जा रहे थे आज वह उनके भीतर ही हाहाकार कर रही थी।

[८]

हलचल

मोटर रुकने की धीमी घरघराहट से सबमें एक उद्दात उत्सुकता फिर छा गई। कामेश्वर और समर तो क्या, प्रोफ़ेसर और लवंग तक तय नहीं कर सके कि मोटर सहसा ही चौराहे पर क्यों रुक गई है। लवग ने झुककर देखा, सिपाही ने कोई हाथ नहीं दिया था। किसी बंगले में से रजनीगंधा की मादक सुरभि इठलाती हुई हवा को गुदगुदा रही थी। चौराहे का प्रकाश हल्का-सा इन तक पहुँच रहा था। क्षण भर के लिए वीरेश्वर ने समझा कि शायद पेट्रोल समाप्त हो गया है, या फिर कोई ख़राबी हो गई है। किंतु जब लीला ने बड़ी निश्चित खुमारी से एक मरोड़ भरी अँगड़ाई ली तब सबने उत्कंठा से उसकी ओर देखा।

प्रोफ़ेसर ने धीरे से कहा—'क्या हुआ लीला ?'

'हाँ, रोक क्यों दी तुमने ?' – लवंग पूछ बैठी।

लीला ने उत्तर दिया, मानों कहीं दूर से किसी भूले हुए शिकारी ने आह ली थी—'यहाँ से प्रोफ़ेसर साहब को दाहिनी तरफ़ जाना होगा, आप लोगों को बाईं तरफ़, तुम्हें उस तरफ़ और मुझे सामने। चारों को थोड़ा बहुत करके एक ही सा रास्ता तय करना है। इसी से मैंने गाड़ी को रोक दिया है। और अगर कोई और हुक्म हो तो वह सुनाओ।'

वीरेश्वर मुस्कराया। प्रोफ़ेसर ने उसे देख लिया। किंतु कामेश्वर तब तक उतर चुका था और उसके पीछे ही समर था। वह भी उतर पड़ा और तीनों ने हाथों को उठाकर कहा—'आपने जो तक़लीफ़ की उसके लिए बहुत बहुत धन्यवाद, बाई बाई......'

और लीला का हृदय भीतर ही भीतर चीत्कार कर उठा। अपना उज्ज्वल चरित्र इन लड़कों को दिखाने को जो उसने वृद्धप्राय प्रोफ़ेसर की इस प्रकार उपेक्ष

सी की थी उसका मतलब ही उल्टा साबित हो गया। वह चाहती थी, प्रोफ़ेसर उतर जाय और बाद में वह कामेश्वर से कुछ पूछ सके, किंतु लड़कों की समझ में इतना भी नहीं आया। उल्टा यही समझा गया है कि वह प्रोफ़ेसर को जो घर छोड़ने जाना चाहती है उसके लिए इन लोगों का उतर जाना ही ठीक है।

लीला के हृदय में इन लोगों के प्रति कुछ विशेष ममत्व नहीं था। था जो कुछ वह यह है कि प्रोफ़ेसर वृद्ध है और यौवन-यौवन है, दोनों का कोई मुकाबिला नहीं है। लीला को ऐसा महसूस हुआ जैसे अपनी हार बचाने के लिए कोई साथी को फुटबाल पास कर दे और साथी अनजाने ही अपनी ही पार्टी पर गोल करवा दे।

प्रोफ़ेसर ने दरवाज़े को बंद कर दिया था और चलते हुए इंजिन की घड़घड़ाहट में वह 'बैंग' का शब्द उसे सुनाई दिया मानों आज उसपर सब अट्टहास कर उठे थे कि हाँ जी, उसके पास पैसा है, अधिकार है और तुम लड़कियों को इससे ज़्यादा चाहिए भी क्या?

'मिस्टर कामेश्वर!'—लीला पुकार उठी।

कामेश्वर को विश्वास नहीं हुआ। फिर भी उसने कहा—'जी।'

'आप कहाँ जा रहे हैं?'

'जी, घर की ओर।'

'आप तो शायद पार्क के आगे ही रहते हैं?'

'जी हाँ।'

'आइए आप, मैं भी तो उधर ही जाऊँगी।'

कामेश्वर ने केवल अविश्वास करने के लिए सुना। शब्द उसके हृदय में एक अतृप्त हलचल भर उठे यह उसके इतने पास होकर भी मानों बहुत दूर बोले गये थे और वह यह तय नहीं कर पाया था कि इंद्रजाल-सा यह क्या है? उसकी आँखों में संकोच अपनी भुजाएँ फैलाकर पुकार उठा। समर और वीरेश्वर अवश्य एक विद्वेष से भर उठे होंगे और प्रोफ़ेसर मिसरा? मक्खी का छत्ता छू देने के बाद लीला देख रही थी कि मक्खियाँ अब आईं, अब आईं। वह यह बताना चाहती थी कि वह निष्पाप है, निष्कलुष है और इस सतीत्व के भारी बोझ ने, हिंदू स्त्री के भारी अंगारे की दहक ने उसे उन्मत्त कर दिया था। किंतु अनजाने में लगे एक दाग को मिटाने को उसने कितनी विकट परिस्थिति को अपने सर पर ले लिया था। उसने एक-एक

कर सबको देखा। वैसे मामूली तौर पर कोई बहुत बड़ी बात न थी। किंतु परिस्थिति का यह मोड़ कितना भयानक था। हाँ, एक धूमिल घृणित सा अंधकार अपना नग्न वक्षस्थल दिखा रहा था। वह यह भी समझती थी कि कामेश्वर के प्रति उसने जो पक्षपात दिखाया है वह उसी की निंदा में समाप्त नहीं होगा, वरन कामेश्वर नाम का बकरा प्रोफ़ेसर जैसे चीते के सामने फँस जायेगा, जो सिनेटर है, जो कम नंबर दिलाकर फेल करा सकता है, जो उस पार्टी में है जिसके लोगों ने यूनिवर्सिटी को खाने-कमाने की एक बाज़ारू व्यापारी चीज़ समझ रखा है, जो...

प्रोफ़ेसर चुप था। उसने तबसे अब तक कुछ नहीं कहा था और अब भी उसने कुछ नहीं कहा, मानों यह मौन उसको उस घोर अस्वीकृति और घृणा का एक क्षीण परिचायक था।

'बात यह है'—लीला ने कहा—'मैं प्रोफ़ेसर साहब को उनके घर छोड़ दूँगी और आप दोनों का होस्टल पास ही है। लवंग मेरे साथ मेरे घर जायेगी और उधर ही से मैं आपको छोड़ दूँगी।'

कामेश्वर मोटर की ओर बढ़ा—'आप इतना तकल्लुफ़ क्यों कर रही हैं। मैं तो यहीं से घर चला जाऊँगा, पैदल ही।'

किंतु वह मोटर में बैठ चुका था। वीरेश्वर और समर ने कहा—'नमस्ते!'

लीला और लवंग ने हाथ जोड़ दिये। उनके जाते ही लवंग कह उठी—'अच्छा लीला, प्रोफ़ेसर साहब को छोड़कर मुझे भी मेरे बँगले पर छोड़ती चलो। मुझे अचानक ही याद आ गया है, आज मेरे घर कुछ लोग आये होंगे।'

कामेश्वर के प्रति जो उसके मन में एक भाव उदय हुआ था उसका इस प्रकार अपहरण देखकर उसकी असंतुष्ट नारी वही आदिम स्वरूप धर उठी जो युगांतर से नर को एक गंभीर रहस्य बनकर उलझा रही है। यह एक ऐसा हल्का सा धक्का था जिसने प्रोफ़ेसर के सामने ही लीला को कामेश्वर की गोदी में ढकेल दिया था। लीला समझ गई। वह लवंग को पहचानती थी। लवंग ने उसे 'क्यों' तक कहने का अवसर नहीं दिया था, किंतु जहाज़ टूट चुका था, लहरों से लड़ने की अपेक्षा लहरों में चुपचाप बहते रहना अच्छा था। उसने केवल कहा—'अच्छा।'

यह एक ऐसा उत्तर था जिसने तीनों को चौंका दिया, मानों यही तो लीला चाहती थी!

अंधकार प्रगाढ़ हो चला था। गंधित नारियों की भुक्ता वायु कामेश्वर में एक अपूर्व विलास भर रही थी। वह एक अधिकारमत के पास बैठा था, किंतु वह युवक था, और जैसे यह एक बहुत बड़ी दलील थी जो नीचे दबे प्रोफ़ेसर में अधिकाधिक क्रोध भर रही थी। मानों ब्रिटिश साम्राज्यवाद सेंट हेलना के बदी नेपोलियन के गर्जन को सुनकर केवल मुस्करा उठा था।

लवंग फिर मुड़कर बैठ गई और प्रोफ़ेसर से बोली—'आपको कुछ तकलीफ़ तो नहीं हुई?'

प्रोफ़ेसर तैयार नहीं था। वह चौंककर बोल उठा—'कोई बात नहीं। वैसे चहल-पहल, नई उम्र का शोर है, सब ऐसे ही होता है।'

किंतु कामेश्वर सुन सका कि सब ऐसे ही हुआ था। वह चौंक उठा कि यह उससे किसने कहा, किंतु वह भूल गया था कि लीला के प्रति उसके हृदय में जो सदेह भरा आल्हाद उमड़ रहा था, यह उसकी गूँज थी।

जो प्रोफ़ेसर नहीं चाहता था वही हो गया। उसका घर आ गया और उतरना उसके लिए आवश्यक हो गया।

तीनों ने कहा—'नमस्ते!'

'नमस्ते'—कहकर जब प्रोफ़ेसर मुड़ा, उसने सुना, लीला कह रही थी—'क्षमा कीजिएगा यदि कोई कष्ट हुआ हो।'

'जी नहीं, कष्ट कैसा?'

प्रोफ़ेसर अपने बगीचे के पास पहुँच चुका था। लीला ने गाड़ी फिर चला दी। लवंग अब मानों स्वतंत्र थी। वह अच्छी तरह मुड़कर बैठ गई। उसने कामेश्वर की ओर देखा और एक कुटिल हास्य उसके अधरों पर नाच उठा, मानों लहरों पर प्रभात की किरण थिरक उठी हो। उसके गालों के गड्ढे मानों वैभव के भौंरों का रूप के फूल पर अनंत गुंजार था। कामेश्वर बेसुध-सा देखता रहा। और देखती रही इन सबको लीला भी अपने सामने लगे शीशे को टेढ़ा करके जिसे इन दोनों में से कोई भी न जान सका।

लवंग ने कहा—'मिस्टर कामेश्वर, क्या कालेज में अब आपका कोई दोस्त नहीं रहा?'

'नहीं'—कामेश्वर ने कहा—'हैं कुछ, मगर जाने क्यों अब मन नहीं लगता किसी

बात में। चाहता हूँ कि अब इन सब बातों को भूल जाऊँ, फिर भी कुछ ही दिन तो हैं। होता है, हो रहा है, और होता ही रहेगा।'

उसने एक आह भरी। लवंग फिर मुस्कराई। उसने एक दम पूछा—'तो आप शादी क्यों नहीं कर लेते?'

कामेश्वर बिल्कुल नहीं चौंका। वह साफ़ बात थी, उसका जवाब भी उतना ही साफ़ हो सकता था, किंतु रहस्य भरी बातों से वह काँप उठता था।

'आप अगर मैं ठीक बता दूँगा तो बुरा मान जायेंगी।'

'जो नहीं बताइए आप'—लवंग ने हठ-सा किया।

कामेश्वर ने धीर शब्दों में कहा—'मैं बँधना नहीं चाहता; चाहता हूँ, आज़ाद रहूँ। नारी एक विलास है, किंतु उसकी परवशता उसका सबसे बड़ा अधिकार है। मैं किसी के अधिकार में नहीं रहना चाहता।'—वीरेश्वर था नहीं, यही अच्छा था; अन्यथा कामेश्वर जानता था कि वह यही उत्तर देता कि जिसे तुम आज़ादी समझते हो वही सबसे बड़ी ग़ुलामी है।

लवंग ने उसे विस्मित नयनों से देखा कि मानों यही तो वह सुनने की आशा नहीं करती थी। किंतु हृदय की बात आँखों तक नहीं पहुँची थी। मन कहता था, यह कोई नया उत्तर नहीं है। अपनी निर्बलता को छिपाकर धोखा दे लेना क्या ऐसा सहज है। यह एक प्रकार से नारी के अनजाने सोये अभिमान को ठोकर मारकर जगा देने का प्रयत्न था कि जाग और मुझे ऐसा डस कि तेरे ज़हर की लहरों में आजन्म-आमरण तड़पा करूँ। उसने कामेश्वर की ओर ऐसे देखा, मानों तुम महान हो, किंतु भीतर से वह जानती थी कि इसे हराना बहुत ही सहज है, यह एक जली हुई रस्सी की दयनीय ऐंठ है।

किंतु उसने कहा—'नारी को यदि बंधन ही मानते हैं, तो आपका स्वातंत्र्य उसके बिना टिक भी तो नहीं सकता।'

'क्यों नहीं', कामेश्वर सतर्क हो गया, 'युगांतर से पुरुष ने नारी की पूजा की है, मैं इसे ही उसकी सबसे बड़ी भूल मानता हूँ। स्त्री में कोई विशेषता नहीं होती······'

कहने के साथ ही कामेश्वर झेंप गया। लवंग उसकी ओर अपने मांसल कंधे पर अपने चिबुक को धरे ऐसी मादक नशीली आँखों से धूमिल अगरुधूम-सी झूलती

अलकों के बीच से देख रही थी कि यह बात तुम क्या सचमुच दिल से कह रहे हो ? और कामेश्वर चकपका गया कि झूठ पकड़ी गई थी।

उसने फिर कहा—'लोग कहते हैं, नारी रहस्य है। रहस्य है, मैं इसे नहीं मानता। हाँ, इतना मानता हूँ कि अपनी क्षुद्र बुद्धि के कारण वह उलझन से भरी होती है, जिसे पुरुष यदि सुलझाने की मेहनत न करके कैंची से, कठोर होकर काट दिया करे तो वह बहुत अधिक निश्चिंत हो जाय।'

लवंग हर्ष से पुलकित हो गई। अब वह करारा जवाब देगी, किंतु तभी लीला ने एकदम गाड़ी रोक दी और लवंग का घर आ गया था। मन ही मन में वह लीला पर कुढ़ गई। जब शिकार अपनी सीमा में था तभी किसी ने खुटका करके उसे दौड़ा दिया था और शिकारी कंधे पर भरी बंदूक धरे तड़प उठा। वह उतर पड़ी, किंतु उसका क्रोध शांत नहीं हुआ।

'अच्छा लीला, अच्छा मिस्टर कामेश्वर, गुड नाइट !'

दोनों ने उसे जवाब दिया। लवंग दो पग चली और फिर मुड़कर बलात् कह उठी—'मैं चाहती हूँ, कि रात अच्छी कटे।'

और वह चली गई। लीला और कामेश्वर, अँधेरा और नीरवता, अपमान और व्यंग्य सब क्षण भर के लिए विक्षुब्ध हो उठे। लीला ने कहा—

'आइए, आप आगे आ जाइए।'

जब मोटर तेज़ी पर आ गई, कामेश्वर लीला की बगल में बैठा एक अजीब उलझन में पड़ गया था। यौवन था, इसको काट देना—कहना सरल था, वैसे कितना कठिन था !

'प्रोफ़ेसर ने बुरा तो न माना होगा ?' कामेश्वर ने कहा—'हम लोग बिना बुलाये मेहमान आ गये थे।'

लीला ने एक ठंडी साँस ली। आखिरकार ! एक बात तो सीधी-साधी है। वह हँसी।

'क्यों बुरा क्यों माना होगा ? मेरे ख़याल से ऐसी तो कोई बात नहीं हुई।'

'नहीं, हम लोग आ गये और आप लोगों के एकांत में बाधा पड़ गई।'

लीला ने कामेश्वर की ओर कठोर होकर देखा। कामेश्वर के नयन मानों कह रहे थे—'मुझे माफ़ करो।' लीला ने कठोर उत्तर दिया—'मेरा एकांत ऐसा घृणित

नहीं होता। आप लोगों ने आकर न मेरी बुराई की, न उपकार। आप यह न समझिए कि मैं आप लोगों को मसीहा समझकर संग में लाई हूँ।'

कामेश्वर इतना किंकिर्त्तव्यविमूढ़ हो गया कि वह कुछ भी न कह सका। वह सर झुकाये सुनता रहा। दुमई नहीं कहती तब तक कुछ नहीं कहती, किंतु जब चिपट जाती है तो छुड़ा लेना एक कठिन काम होता है। लीला फिर अपनी साधारण अवस्था में आ गई थी। वह क्रोध आकर हुंकार उठा था और अब चेहरे पर से अपने अंतिम पदचिह्नों तक को पोंछ गया था।

'आप तो नाराज़ हो गईं।'

'जी नहीं'—वह लजा उठी।—'ऐसा न सोचिए आप।'

दोनों फिर एक दूसरे के पास आ गये। कुछ देर तक बात बंद रही। दोनों दो बड़े पेड़ थे। हवा से झुक-झुक जाते थे, मगर मिल नहीं पाते थे, लहरें रोर भर क्षितिज छूने का प्रयत्न करती थीं, किंतु आपस में टकराकर छितरा जाती थीं। लीला ने ही बात शुरू की।

'आप ऊषा को जानते हैं?'

'ऊषा?'—कामेश्वर ने पूछा जैसे बात क्या है?

'हाँ, हाँ, वही, मिस्टर भगवती को तो जानते होंगे आप। उन्हीं की क्लास-फेलो हैं।'

'जी हाँ, भगवती को तो जानता हूँ।'

'जानते हैं आप उन्हें! बहुत पढ़ते हैं वे, आपको मालूम है? आखिर क्यों?'

कामेश्वर ने उसे पुरानी आँखों से पढ़ा। 'मैंने सुना है'—उसने कहा—'वह बहुत गंभीर है, जीवन की विषमताओं ने उसे सुखों से उदासीन कर दिया है। मैंने एक बार स्वयं उससे पूछा था। किंतु उसकी आँखों में मुझे दो भीषण अंगारों के सिवाय कुछ भी नहीं दिखा। शायद उसे कुछ दुःख है, जो धीरे-धीरे उसे खाये जा रहा है।'

लीला ने क्षणभर को स्टीयरिंग व्हील पर से हाथ हटाकर कहा—'क्या दुःख है ऐसा उन्हें।' कामेश्वर ने मुड़कर देखा। लीला ने संभलकर मोटर चलाना शुरू किया। किंतु उसकी आतुरता उगते हुए सूर्य की तरह मचल उठी थी और नींद खुलते ही मानों वह प्रकाश आँखों में भरकर नई चमक पैदा कर रहा था। वह इस

ममता को जानता था। नारी का यह रूप वह देख चुका था। और लीला इन बातों में बिलकुल बालिका थी उसके सामने। (पुरुष चाहे कितनी ही नारियों के संसर्ग में आ जाये, किंतु प्रत्येक नारी के साथ मानों उसे फिर से प्रारंभ से चलना पड़ता है और नारी एक दो बार के बाद उसे खिलौना समझने लगती है। दोनों ही अपने अभ्यासों पर मिथ्याभिमान रखते हैं और दोनों ही अपने को भूले हुए रहते हैं। यह रील है, खुलती चली जाती है, मानों साथ-साथ लपेटने के लिए कोई नहीं होता और परिणाम में केवल कुछ गाँठें रह जाती हैं। अथाह सागर की लहरों को झेली हुई मछली जाल में फँस ही जाती है और अनेकों मछलियों को उलझानेवाला जाल तनिक-सी लापरवाही से लहरों में खो जाता है। यह तृष्णा है जिसके कारण मनुष्य अंधा हो जाता है और उसे कुछ दिखाई नहीं देता।)

कामेश्वर ने कुछ उत्तर नहीं दिया। लीला क्षण भर चुप रही और उसके मुख से कोई बोल उठा—'बड़े सीधे हैं वह।'

गाड़ी रुक गई। कामेश्वर का घर आ गया था। लीला के शब्दों का झटका मोटर के रुकने की त्वरा में विलीन हो गया। दोनों ने एक दूसरे को देखा।

'गुड नाइट!'

'गुड नाइट! इस तक़लीफ़ के लिए आपको बहुत-बहुत धन्यवाद!'

'ओह, कोई बात नहीं।'

राजकुमारी ने मानों महासामंत को राजप्रासाद में बुलाया था और जब महासामंत ने देखा, राजकुमारी वातायन से भिखारी को देख रही थी। वह मुस्करा उठा। उसे अपने ऊपर इतना अभिमान था, फिर भी वह हार गया था। यूरोप की नारी की तरह वह आसानी से खरीदी नहीं जा सकती, भारतीय नारी सदा से एक रहस्य है, वह एक भरा घड़ा है, छलकता है, चाल में मादकता भर देता है और सचमुच के प्यासे को तब तक पिलाता है जब तक उसमें एक बूंद भी हो, चाहे उसे फिर कोई भरे भी या नहीं।

भगवती के प्रति इस स्नेह का पता पाकर वह मुग्ध हो गया था। लीला तभी चली गई थी। ईर्ष्या कौतूहल करने लगी। एक बारगी वह ज़ोर से हँस उठा। उसका हृदय ज़ोर से धड़क रहा था और लीला!

वह अट्टहास कर उठा। इंदिरा पुकार उठी—'भैया क्यों हँस रहे हो अकेले ?'

कामेश्वर लॉन पर बैठ गया, मगर उसके हृदय की हलचल उसे व्याकुल कर-कर देती थी। अंधकार में एक जुगनू टिमटिमाकर जल उठता था, बुझ जाता था, जल उठता था, बुझ जाता था······

---

[९]

प्रेम की गति

तृष्णा जीवन का पहला हाहाकार है। केंद्रों में विभाजित महत्त्व वास्तव में कभी सत्य नहीं होता। एक पल का उन्माद जीवन की क्षणिक चमक नहीं, उसकी स्मृति ही अंधकार का पोषण है, जिसका कोई अंत नहीं, कोई आदि नहीं।

रानी, एक लड़की, जिसको देखकर सुंदर नहीं कहा जा सकता, किंतु वह भरी हुई है, उसमें उबाल है, ठीक जैसे सोडा की बोतल। उसमें उफान आता है, झाग निकलते हैं, किंतु उसकी मादकता को समाप्ति नहीं होती। वह ईसाई जाति की बालिका जीवन को कभी-कभी मुश्किल से सोच पाती है। कपड़े पहनने और खाने-पीने का लोभसंवरण जीवन की बड़ी से बड़ी स्वतंत्रता होकर भी शक्तिहीन के लिए अधिक से अधिक दासता का रूप भी धारण कर सकता है। उसके माथे पर बालों के छल्ले खेलते रहते हैं, उसका लचीला शरीर कभी-कभी खिलाड़ी लड़के की चंचलता धारण कर लेता है। उसकी आँखें बड़ी-बड़ी हैं। उनमें एक रहस्य नहीं, प्यास है। वह किसी भी सिनेमा में द्वितीय श्रेणी की पात्री होने के योग्य है। क्योंकि वह बोलने में थरथराती है, मुस्कराने में काँटा मारने का प्रयत्न करती है।

प्रेम करना, यदि यौवन को सफल बनाने के लिए आवश्यक है, तो रानी ने वास्तव में कोई गलती नहीं की। इस बात से सबसे अधिक समय कटता है, कॉलेज में प्रसिद्धि मिलती है, और सबसे बड़ी बात है, कि प्रेम करनेवाले की प्रत्येक मूर्खता जो प्यार बन जाती है, वही प्रेमी को प्रेम के चलते रहने पर सबसे अधिक सुख देती है। शीशे में बार-बार सूरत देखने पर भी सुंदर दिखाई देती है, दुनिया बुरा कहे, वह जलती है। आँखों में एक सौंदर्य का नशा छाया रहता है, हृदय में कुछ सहलाहट-सी होने से आँखों में चंचलता छा जाती है और प्याले भरकर पिला देने के लिए आतुर जवानी के नये इतिहास खुल जाते हैं। जूतों से चप्पलें अच्छी होती

हैं या नहीं, बालों में आगे छल्ला होना चाहिए या पीछे, बाहर निकाला जाये, तो गर्दन को किस अवस्था में रखा जाये, आदि अनेक मनबहलाव को बातें हैं, जो और किसी क्षेत्र में सोचने को भी नहीं मिलतीं (संसार में अनगिनत युवक हैं, युवती हैं। दोनों का संसर्ग भी आवश्यक है या लाचारी है, किंतु जब नर और मादा का प्रेम होता है तब वह वस्तु स्वर्गीय हो जाती है। प्रेम होने के लिए तपस्या करनी पड़ती है। हँसी नहीं आने पर भी मुस्कराना पड़ता है। प्रेमी की अथवा प्रिय की मूर्खता कभी मूर्खता नहीं लगती, क्योंकि असली प्रेम अंधा होता है। और प्रेम की सफलता का सबसे बड़ा निर्देश उसका विरोध है, आंतरिक नहीं, बाह्य। जब समाज उसमें बाधा डालता है, तो उसका निखार बढ़ता है, उस समय जो टक्कर लेने की शक्ति उत्पन्न होती है उससे आदर्शों का वास्तविकता से परिणय होता है, और दोनों बुद्‌बुद थोड़ी देर में फट जाते हैं, वह महानिर्वाण होता है।

साल भर का प्रेम अनेक घड़ियों का व्यर्थ बीत जाना ही है, यह तो नहीं कहा जा सकता, किंतु अवकाश का प्रतीक ही निराशा का अंधकार है।)

हरी की आँखों में एक सूनापन है जो प्रेम के कारण लहलहा उठा है। सूनेपन का यह आधिक्य उसकी दृष्टि में रस का प्रथम उद्रेक है। वह अच्छे से अच्छे कपड़े पहनता है। उसका मुख अच्छे बुरे के दायरे से बाहर है, उसे सिर्फ ठीक कहा जा सकता है। उसके बालों का जो गुच्छा बार बार उसके माथे पर खिसक आता है, वह उसकी अपनी निर्माणशक्ति का चिह्न है। प्रारंभ में मुख के सामने हाथ उठाकर वह आड़ करके लड़कियों को निस्संकोच होकर देख लिया करता था। उन दिनों हरी एक आवारा था, अब उसमें एक गंभीरता थी, क्योंकि रानी से उसका प्रेम हो गया था।

पिछले साल एक दिन जब वह कॉलेज आया, उसकी दृष्टि अचानक इस लड़की पर पड़ी। विचार आया कि इस लड़की से प्रेम करना चाहिए। स्त्री के किस गुण से मन सहसा आकर्षित हो जाता है, इस विषय में कोई कुछ नहीं कह सकता।

कल ही जिस लड़की ने कॉलेज में पैर रखा, आज उसने देखा कि वह कितनी शक्तिशाली थी। हरी ने वीरेश्वर से जाकर कहा। वीरेश्वर ने सुना, मुस्कराया, किंतु हरी को वास्तव में शाम होते-होते प्रेम हो गया। वीरेश्वर ने स्वीकार कर लिया

और कुछ दिन बाद हरी को सलाह देने लगा। उधर रानो जैसे तैयार बैठी थी। यह अन्य लड़कियों पर एक जीत थी। सबसे पहले जो अपना प्रेमी चुन सको वही सबसे अधिक भाग्यशालिनी है। अतः मानव समाज के क्रमिक विकास के अनुसार ही उनके प्रेम का व्यापार चल पड़ा। पहले मूक और आँखों-आँखों का प्रेम, फिर साक्षरता समारोह, उसके बाद गीत, नाटक आदि आदि। गत वर्ष जीवन स्वर्ग था। दोनों के हृदय में अपराजित गर्व था। रात के अंधकार में जब रानी अपने घर लौट-कर जा रही थी, गर्मी की छुट्टियों का लंबा समय हरी के हृदय पर अनत दुःख बनकर छा गया। उसने रानी का हाथ पकड़कर उच्छ्वसित स्वर से कहा—'रानो! तुम जा रही हो?'

रेल में सामान रखा जा चुका था, स्वयं हरी टिकट खरीदकर लाया था। उस समय ऐसा प्रश्न अनुपयुक्त था। किंतु उस समय वे अंधे थे। यह प्रश्न बहुत अच्छा लगा था। रानी की आँखों में आँसू आ गये। उसने देखा, और उस दृष्टि ने हरी का समस्त साहस शीशे की तरह चकनाचूर कर दिया।

किंतु प्रत्येक सुख को देखकर न देवताओं को संतोष होता है, न समाज को तृप्ति। अतः शैतान बीच में अड़गा डालने का प्रयत्न करता है। वही मैक्सुअल था। एक हिंदुस्तानी रंग का ईसाई, जो अँगरेज़ों से भी अधिक अँगरेज़ी कपड़े पहनता था और जिसके कुरूप मुख पर सदा क्रीम की तह चढ़ी रहती थी। इससे उसकी त्वचा की चमक दूर हो गई थी। उसके पिता किसी ईसाई स्कूल में मास्टर थे, वह मिशन से रुपया पाता था। बड़े गिरजे के अँगरेज़ पादरी उसपर बड़े मेहरबान थे और उन्हीं का प्रभाव था कि मैक्सुअल के घर में अब भी लड़कियाँ साया पहनती थीं और गले में ओढ़नी डाल लेती थीं। मैक्सुअल के दुश्मन उसे पहले का अछूत बताते थे, किंतु अब वह सब कुछ नहीं था। अब वह साहब था और अँगरेज़ों का विनम्र भक्त। उसकी एक राय अँगरेज़ों से मिलती थी कि भारतीय अपने आप अपना राजकाज नहीं चला सकते, क्योंकि बड़े पादरी साहब ने अपनी मेज़ पर बिठा-कर उससे ऐसा कहा था।

मैक्सुअल की दृष्टि रानी पर केवल इसलिए पड़ी कि उसने अपनी एक बहिन को दूसरी जातिवाले के साथ में पढ़ते देखा। अतः उसने अपने पोल खोल दिये और लहरों की ठोकरों की परवाह न करते हुए चल पड़ा। साम, दाम, दंड, भेद चारों का

प्रयोग करके भी वह रानी को अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सका, क्योंकि हरी उसकी तुलना में सुंदर था और बातें अच्छी करता था।

जो बादल गरजता है, लोग कहते हैं, बरसता नहीं; कभी-कभी बरस भी जाता है, तब संसार आकाश की ओर देखता है; वह रानी है।

अंधड़ उठता है, और जब पानी की जगह धूल बरसती है तब संसार क्रोध करता है; वह मैक्सुअल है।

पानी बहता है, बहता जाता है, तप्त बालू में सूख जाता है, पहाड़ों में झाग देता है; वह हरी है।

एक कछुआ है; वह जीवन है, समाज है।

एक खरगोश है; वह यौवन है, व्यक्ति है।

एक दौड़ है; वह स्पर्धा है, मंजिल का अंत नहीं है।

मैक्सुअल को मैदान मिल गया। उसने धर्म के नाम पर जिहाद बोल दी।

हरी का प्रश्न सुनकर रानी को अत्यंत वेदना हुई थी। उसने कहा था—'हरी! भूलोगे तो नहीं?'

हरी ने प्रतीज्ञा की थी—'इस जन्म तो क्या, उस जन्म में भी मैं तुम्हें नहीं भूल सकता।'

ईसाइयों में जन्मांतर का राग-द्वेष नहीं होता। किंतु मनुष्य की अमरता की साध उसके अंतःकरण की एक महान् तृप्ति होती है। जब कुछ भी अमर कह सकने योग्य नहीं रहा, उसने प्रेम को अमर कह दिया। इससे चारों ओर एक झिलमिल फैल गई। प्रकाश और अंधकार का भेद दूर हो गया। जहाँ समन्वय में विभाजन का लोप हो गया वहाँ छलना का अभिजात जन्म हुआ। उसने साँपिन की तरह उसकी आत्मा को डस लिया। स्त्री ने उसे भाग्य कहा, पुरुष ने उसे स्त्री का दुरूह चरित्र। दोनों नृत्य करने लगे, वह नृत्य जिसमें आनंद न था, क्योंकि आनंद से उच्चावस्था सुख को मिली। बंधन ही स्वातंत्र्य हो गया।

रानी को यह बात अच्छी लगी। उसने अनुभव किया, वह सृष्टि का रूप बदलनेवाली आदिम नारी थी, जिसने वही पुरुष प्राप्त किया था जो सदा से उसका था, वही था जिसके साथ उसने जीवन की लाचार यंत्रणा को अनेक बार झेला है और पार कर लिया है।

स्टेशन के धुँधले प्रकाश में उन्होंने पहली बार एक दूसरे का चुंबन किया था। मैक्सुअल की धमकियाँ धूलि में बिखर गईं। धर्म का बंधन तोड़ दिया गया, जैसे जूते में से गाँठ पड़े फीते को तोड़कर फेंक दिया जाता है। स्टेशन की वह धुँधली ज्योति प्राणों पर अनंत वासना बनकर फैल गई। वह उन्मुक्त चुंबन भीतर उतर गया। उसकी उतरती धार को दोनों ने अनुभव किया, उसमें एक झटके का-सा वेग था, छल-छल-छल करनेवाला उत्साह, गर्म और ऐसा लज़्ज़ीज़ जैसा ताज़ा कबाब होता है। दो मांसल शरीरों में एक दूसरे की बिजली समा गई। दो तरह के ठंडे और गर्म तारों के मिलते ही एक फक् करता उजाला हो गया। दो बूँदें तो गिरीं, किंतु उनसे दाह कम न हुआ। प्यास बढ़ गई। यही तो था वह अंत जिसके लिए इतना उन्माद था। यदि यही प्राकृतिक स्वच्छंदता नहीं मिल सकती, तो जीने से क्या लाभ ?

रानी ने कहा—'हरी डियर! मैक्सुअल कितना विरोध कर रहा है! वह इतना कमीना हो सकता है, यह मैं स्वप्न में भी नहीं सोच सकती।'

हरी ने उत्तर दिया—'डार्लिंग! यदि तुम्हारा मन साफ़ है, तो तुम्हें भय करने का कोई कारण नहीं। मैं तो किसी से नहीं डरता। तुम्हारे लिए मैं सब कुछ कर सकता हूँ।'

रात का अंधकार मानों हँस पड़ा। उसने जैसे इस चिनगी को देखकर उपहास से सिर हिलाया। उसे निश्चय था कि कोई भी उसके विशाल रूप को ध्वस्त नहीं कर सकता। उसकी गरिमा उसका प्रसार है, प्रसार की सघनता है, वह सघनता जो स्तर पर स्तर नहीं, बीज में कोंपल की भाँति समाई हुई है।

हरी ने रानी का हाथ पकड़कर कहा—'मैं समाज से नहीं डरता, संसार से नहीं डरता। चलो रानी! हम तुम कहीं दूर चलकर खो जायें। वहाँ जहाँ अपना कोई न हो, कोई न मित्र हो, न शत्रु; जहाँ हमीं अपने मित्र हों, हमीं अपने आदि और अंत हों। तुम हो, मैं हूँ। फिर हमें और क्या चाहिए। युगों तक हम एक दूसरे की आँखों में झाँकते रहें, देखते रहें, तुम्हारे नयन की झील में मेरे मछली-से नयन सदा के लिए डूब जायें कि यह शिकारी संसार उन्हें कभी भी बाहर न निकाल सके। तुम्हारे हृदय का वह उज्ज्वल मोती मेरा हो जाय रानी! चलो! मैं सबको छोड़ चलूँगा। कौन है मेरा ? मा-बाप ? सबका प्रेम झूठा है। यदि वे हमारे सुख

में अपना सुख नहीं बना सकते, तो हमारे शुभचिंतक बने रहने का दंभ नहीं कर सकते। यदि वे हमें अपना खिलौना समझते हैं, तो क्या हम भी अपने आप को उनका दास समझें? हम प्रेम करते हैं, पाप नहीं करते······'

और हरी ने फिर रानी का मुख चूम लिया। इस बार रानी की आँखें बंद नहीं हुई थीं और न वह सिहरन से काँपी ही थी। एक लाज की रेखा दायें बायें गालों पर तड़पी और उसका शरीर पुलकित हो गया। (स्त्री वही है जिसको देखकर उसका प्रेमी विवश हो जाये, पुरुष वही है जिसके स्पर्श से स्त्री सिहर उठे। बातों से मस्तिष्क का संबंध है, प्रेम का हृदय से।)

\('वह पत्थर है, मनुष्य नहीं है' जो प्रेम नहीं करता, वह कीचड़ की तरह गंदा है जो प्रेम को अपवित्र कहता है। प्रेम शरीर से प्रारंभ नहीं होता। वह हृदय से प्रारंभ होता है। जिसके हृदय में प्रेम है वह किसी से नहीं डरता।)

अज्ञानी गार्ड ने सीटी दी। वह रुपयों के लिए काम करनेवाला नौकर, वह क्या जाने, प्रेम की गंभीरता में कितना वेग है। उसका जीवन एक मशीन है। उसकी आत्मा आर्थिक परवशता में कुचली जा चुकी है। वह नहीं जानता, चाँदनी रात में किस अवसाद का लय है, बर्फीले पहाड़ों में कौन-सी उन्नत गरिमा है। दिन हो, रात हो, वह जीवन की अरमानों से भरी गाड़ी को चला रहा है, केवल पैसे के लिए, टुकड़ों के लिए।

रेल सरक उठी। रानी शीघ्रता से बैठ गई। ज़नाना डिब्बा था, सेकेंड क्लास। उस समय उसमें रानी के अतिरिक्त और कोई न था। हरी के हाथ में रानी का हाथ था। और ऊष्मा का यह संबंध वैसा ही खिंच आया जैसे गाढ़े गोंद का चिपकना तार खिंच आता है, जो झूलता है, किंतु टूटता नहीं। हरी भी अनजाने ही गाड़ी में चढ़ गया। बाहर उस दिन चाँदनी फैली हुई थी। हरी ने भीतर जाकर बत्ती बंद कर दी।

घरघराहट की ध्वनि, तेज़ हवा के झोंके, चाँदनी की काँपती सुधा; सुनसान राह से रेल भाग चली। हरी ने रानी को अपनी भुजाओं में भर लिया। वह कहने लगा—'रानी! घर जाकर क्या करोगी? चलो, हम तुम कहीं भाग चलें।'

रानी उस समय गर्म आलिंगन में थी, इसलिए उसे भी संसार में अन्य किसी वस्तु से प्रेम न था।

मेक्सुअल आकाश और पृथ्वो के बीच में क्षितिज है; वह एक ढल है, जिसके कारण ऊपर चढ़ता पानी बार बार पीछे ढुलक जाता है। रानी का जीवन भो सुखो हो जायेगा।

रेल भी जीवन का स्वर्ग है। ऐसे ही तो आदमी आता है संसार में। किंतु संसार की यात्रा एक टिकट के बल पर नहीं चलती। यह कहीं अधिक कठिन है। इस यात्रा में कोई किसी का साथ नहीं देता। रानो को गुदगुदेपन का दबाव सुख देता है, वह इस समय कुछ सोचना नहीं चाहती। किंतु रेल की गति में उसका अपना महानाद है, जिसमें भीतर की समस्त विषमता छिपी हुई है। उसका वेग आकाश को चुनौती देता है, वायु का वक्षस्थल फाड़ देता है, वह चली जा रही है, चली जा रही है ...।

हठात् एक झटका लगा था। दोनों अलग हो गये थे। गाड़ी स्टेशन पर खड़ी थी। चारों ओर प्रकाश फैल रहा था। हरी ने झाँककर बाहर देखा और यही बात आफ़त हो गई। टी० टी० आई० ने ज़नाने डिब्बे में पुरुष को देखकर धड़धड़ाते हुए प्रवेश किया और बत्ती जला दी। वह क़ानून के खिलाफ़ ज़नाने डिब्बे में घुसा था, किंतु कानून उस समय ताक में धरा था। भीतर का दृश्य देखकर वह समझ गया। भला कौन नहीं समझ लेता। फूस और फूस के पास आग! यह तो वह संसर्ग है जो समस्त संसार को भस्म कर दे। बेचारी रेल तो एक निर्जीव पदार्थ है।

किंतु संसारी व्यक्ति कल्पनाओं के आदर्श को नहीं समझ सकता। वह अपनी कलुषित सीमाओं के पार नहीं जा सकता। उसकी चिंतनशक्ति इतनी दूषित है कि वह प्रेम की पवित्रता को स्वप्न में भी नहीं सोच सकता।

उसने अदब से टिकट माँगा। रानो ने तुरंत टिकट दिखा दिया। टी० टी० आई० संतुष्ट नहीं हुआ। उसने संदिग्ध दृष्टि से हरी की ओर देखा। हरी अचानक ही कुछ भी नहीं कह सका। टी० टी० आई० ने कठोरता से कहा— बाबू साहब! आपका टिकट?'

हरी के पास टिकट नहीं था। वह यात्रा करने आया था, किंतु उसकी यात्रा प्रेम की यात्रा थी। प्रेमी किसी के आधीन नहीं है। टी० टी० आई० मूर्ख। वह इस बात को स्वीकार करने को तैयार न था। प्रेमी के पास यात्रा करने को स्वयं अपना साधन है। वह यात्रा करे कल्पना के घोड़े पर। उसे सरकारी रेल में अपना

राज्य स्थापित करने का कोई अधिकार नहीं। जो एक स्त्री से प्रेम करने के लिए सारे संसार से घृणा करके अलग दुनिया बसाने चला हो, उसे यह साधारण व्यक्ति कैसे सहन करता!

उसने दोनों को संदेह से देखा। रानी ने उसकी दृष्टि में अपमान की जलती चिनगारी देखी। उसने अनुभव किया कि वह उसे दुश्चरित्र समझ रहा था। उसने कहा था—'यह मेरे भाई हैं, स्टेशन पहुँचाने आये थे, इतने में गाड़ी चल दी। इसी से बैठे रह गये। अब लौट जायेंगे।' मुड़कर हरी से कहा—'अब उतर जाओ। ममी से कह देना..... '

टी० टी० आई० ने बात काटकर कहा —'तो गोया ज़नाने डिब्बे में बैठने का ही जुर्म हो, यह काफी नहीं। बाबू साहब के पास टिकट भी नहीं है? चार्ज देना होगा। जंक्शन से जंक्शन तक का।'

हरी के पास प्रेम था, पैसा नहीं था, रानी के पास प्रेम का प्रत्युत्तर था, टी०टी० आई० के प्रस्ताव का नहीं। दोनों ने एक दूसरे की ओर देखा। विपत्ति के जिस धर्म के कारण हरी को रानी ने पति से भाई बना दिया वह बात हरी के मस्तिष्क में बालू पर तड़पती वायु की भाँति सनसना उठी।

वह उतर गया। रेल चल दी। टी० टी० आई० ने दया करके उसे छोड़ दिया और वह दो रुपये की अपनी सारी पूंजी समाप्त करके घर लौट आया था।

वर्ष भर जो नाटक चला था उसका अंतिम अंक इस प्रकार समाप्त हुआ। मैक्सुअल को यद्यपि यह बात ज्ञात नहीं हुई, किंतु इस वर्ष के प्रारंभ में उसने दोनों के बीच का दुराव समझा और जो कपड़े में सीवन टूटी थी, उसमें उँगली डालकर उसे और फाड़ देने का प्रयत्न करने लगा।

हरी ने रानी को कायर समझा, रानी ने हरी को मूर्ख।

इस वर्ष जब दोनों मिले तब पहले एक दूसरे को दोष देते रहे और अंत में सुलह हो गई, क्योंकि लहरें अलग रहकर भी साथ रहती हैं, अंजलि में दोनों का पानी एक-सा होता है। दोनों अब भी एक दूसरे से प्रेम करते हैं जैसे अब इस बंधन में उतना आकर्षण नहीं रहा, उतना उद्वेग नहीं रहा, जितना पहले था, क्योंकि उफान का दूध फैल चुका था, आग में जल चुका था और उससे एक बार वायु में दुर्गंधि फैल चुकी थी जैसे चर्बी जलने पर······मेदा जलने पर······

[१०]

मात्र प्रतिध्वनि

कामेश्वर ने वीरेश्वर का हाथ झटककर कहा—'तुम नियम को जीवन का क्या मानते हो? पराजय? पराजय ही यदि नियम है, तो उच्छृंखलता विजय नहीं है। मैं स्वयं अभिमानी हूं, उच्छृंखल हूँ, किंतु मुझे सुख? सुख मेरे लिए छलना है, मैं सदा भूला रहना चाहता हूँ।'

वीरेश्वर कालेज के कामनरूम में बैठा था। कामेश्वर आ गया, बात छिड़ गई। कला आ गई, बात में ज़ोर आ गया। भूमिका, लंबा और विस्तृत विवरण, शब्दों का सुगठित चुनाव, किंतु कथावस्तु में कोई चुनाव नहीं।

हवा खेल रही है लड़कियाँ कैरम खेल रही हैं, उनके शरीर से गंध फूट रही है। युवक भूले हुए हैं, युवतियाँ भूली हुई हैं, कहीं कोई गुलझन नहीं, गति, गति, लड़खड़, ठोकर, मुँह के दाँत टूटना, किंतु फिर भी, फिर भी······

कला उठकर चली गई।

कामेश्वर ने वीरेश्वर का हाथ दबाकर कहा—'यह सारा जोश अब क्यों रफ़ू-चक्कर हो रहा है? क्या उबाल थम गया?'

वीरेश्वर ने क्रुद्ध दृष्टि से देखकर कहा—'मैं तुम्हारी तरह लोलुप नहीं, कि औरत देखते ही आंखें पसार दूँ। मेरा भी अपनापन है जिसे मैं खोने के लिए तैयार नहीं हूँ। कला के विषय में तुम वैसा सोचकर भूल कर रहे हो। मैं न तुम्हारी तरह धनी हूँ, न कला ही। हम लोगों के जीवन का दृष्टिकोण वह नहीं हो सकता जिसमें तुम लोग अपने पाप छिपाते हो।'

'जी हाँ'—कामेश्वर ने हँसकर कहा—'वह भी यही कहा करते थे।'

वीरेश्वर इस उपहास से चिढ़ गया। उसने अपनी मुट्ठी को मेज़ पर मारते हुए कहा—'तुमने बिल्कुल ग़लत समझा है। तुमने मुझे समझने में ही भूल नहीं की, हमारे संबंध का अपमान किया है।'

कामेश्वर ठठाकर हँस पड़ा। इसी समय कला लौट आई। उसको देखकर वह फिर गंभीर हो गया। वीरेश्वर क्षण भर को चुप हो गया। कला ने हँसकर कहा—'अरे, आप लोग चुप क्यों हो गये? मैंने तो समझा था, कुछ राजनीति पर बहस छिड़ी होगी, तभी इतनी गर्मा-गर्मी हो रही है। बताइए न, आप लोग क्या बातें कर रहे थे?'

'हम लोग'- वीरेश्वर ने गंभीरता से कहा—'समाज में स्त्री और पुरुष के बंधनों पर बात कर रहे थे। हमारी भावनाएँ हमारे संस्कारों पर निर्भर हैं। हमारे संस्कार हमारी सदियों की रूढ़ियों में पले हैं। अतएव, हम उन्हें बिल्कुल निर्दोष नहीं कह सकते। हमारे प्रयत्न में उनकी छाप पड़ती है, उससे युद्ध करने की जो प्रेरणा है, वही हमारी शिक्षा है। किंतु यदि संस्कारों की कलई चढ़ाकर यह शिक्षा केवल जेब-घड़ी की तरह जेब में रख ली जाये, तो सर्वथा व्यर्थ है। आपका क्या विचार है?'

कला ने होठों को भीतर की तरफ एक बार ज़ोर से भींचा और फिर पलकें कँपाकर कहा—'संस्कारों और शिक्षा को बिल्कुल अलग-अलग नहीं रखा जा सकता। यदि संस्कारों की कोई प्रेरणा नहीं है, तो शिक्षा का अर्थ ही क्या है? शिक्षा का तात्पर्य अज्ञान को हटाना है, अज्ञान का बोध आज या कुछ क्षण से नहीं, परिवर्तन-शील समय के निरंतर बहते रहने से हुआ है। सैकड़ों पीढ़ियाँ बीत गईं। उनके विश्वास ही संस्कार बन गये। अनुभव और संस्कार की चोट हम सत्य की कसौटी पर परखते हैं। तभी शिक्षा के आधार में हमारे संस्कारों का बीज है।'

कामेश्वर ऊबकर सिगरेट पीने लगा। वीरेश्वर ने बात काटकर कहा—'आपने जो कहा वह ठीक हो सकता है, किंतु सत्य शब्द कहकर ही आपने बात को सुलझा दिया हो, ऐसा तो नहीं? सत्य एक सापेक्ष्य स्वरूप है, मनुष्य का सामाजिक जीवन जो एक सामंजस्य ढूँढता है उसका प्रसार है। और सब है, केवल व्यक्ति के एकमात्र सुख के लिए, आनंद के लिए। फिर जिसका रूप स्वयं सापेक्ष्य है, वह किसी बात की कसौटी नहीं हो सकता, क्योंकि उसके प्रत्येक क्षेत्र में भिन्न-भिन्न रूप हैं।'

कला ने सिर हिलाकर अस्वीकार किया। उसने कहा—'सत्य सापेक्ष्य होकर भी मनुष्य की प्राकृतिक सद्भावना का द्योतक है। मनुष्य की प्राकृतिक अनुभूतियों का सृजन जिस रूप में होकर समाज पर प्रभाव डालता है, उसकी इसके अतिरिक्त कोई माप नहीं है।'

वीरेश्वर को मौका मिला। उसने मुस्कराकर उत्तर दिया—'प्रभाव संबंधों की उपज है, उसका कार्यरूप में और कारणरूप में कोई एकत्व नहीं है, दोनों में मूल भेद है। इसे स्वीकार करने में तो आपको विशेष बाधा नहीं ?'

कला ने उसकी स्मिति के प्रकाश में उसकी विजय का द्योतक दीप देखकर इस बात को अस्वीकार कर दिया। उसने दृढ़ता से कहा—'यदि संबंध का अपना महत्त्व नहीं, तो जीवन भी असंबद्ध है, उसका अपने आपमें कोई महत्त्व नहीं'—

'वह तो है ही।' वीरेश्वर चिल्लाया—'वह तो है ही। अब आपने मतलब की बात कही है। वास्तव में वह अपने आपमें पूर्ण नहीं है। इसी जगह दो विभाजन होते हैं। वीर कहता है कि यह कुछ नही है, वास्तव में कुछ नहीं है, किंतु कायर कहता है कि समाज है, मनुष्य समाज का प्राणी है, 'नहीं है' का अभाव परोक्ष और प्रत्यक्ष रूप से अपने विरोध में 'है' को साबित करता है। मेरे विचार में तो कुछ नहीं है।'

कला हँसी। वायु का झोंका आया। वीरेश्वर ने सिगरेट निकालकर मुँह से लगा ली। कला ने कहा—'मेरा आपका विचार भी तो कुछ नहीं है। फिर उसका क्या कहना, क्या सुनना ?'

वीरेश्वर कुंठित हो गया। उसने कहा—'जी हाँ, यह भी कुछ नहीं।'

कला ने फिर कहा—'यह कुछ नहीं भी तो कुछ नहीं।'

'जी हाँ', वीरेश्वर ने धूआँ छोड़कर भुनभुनाते हुए कहा—'यह भी कुछ नही।'

'तो आपका यह 'कुछ' किस सभावना की ओर प्रतारणा भरा संकेत कर रहा है, काँपते हुए हाथ से ? 'नहीं' एक वह रेखा है जो 'है' को काटती है, मेरी राय में 'है' को नहीं झुठाया जा सकता, यह 'है' ही वास्तव में सत्य है, क्योंकि 'नहीं' की अपने आपमें कोई सत्ता नहीं है। मेरे विचार में जो 'है' को झुठाता है, वह कायर है, क्योंकि 'है' ही कर्म और चिंतन को प्रेरणा देता है, सारी सुस्ती और उदासी को ठोकर मारकर जगा देता है। आप उसे असत्य कहते है, क्योंकि 'नहीं' की छलना में आपके अहं को जो छिछला संतोष मिलता है, वह 'है' के पहाड़ के सामने निर्जीव हो जाता है उस चूहे-सा जो सब तरफ़ से प्रयत्न करके भी, पहाड़ के नीचे खड़ा

होकर भी, कभी हिमाच्छादित शृंगों को नहीं देख सकता। इसी से आप 'कर्म' की भावना को नष्ट करने के लिए इतनी बड़ी झूँठ को जन्म देते हैं जो शिक्षा से बहुत दूर, केवल बौद्धों की अकर्मण्यता, शकर के प्रहसनमायावाद अथवा हेगेल के विचार-मात्र का बोध कराती है, केवल अपने संस्कारों के बल पर, मनुष्य के युग-युग के अज्ञान और अंधकार के बल पर।'

वीरेश्वर की आँखों में एक शीतलता छा गई। बात पकड़ी गई थी, किंतु स्त्री से हार जाने का अर्थ है उसे कभी भी सत्य की ओर प्रेरित न करना। उसने बड़ी गंभीरता से कहा—'मालूम देता है कि आप मेरी बात समझी नहीं। तभी आपने बहुत-सी रटी-रटी-सी बातें बेमतलब दुहरा दीं। बात यह है, दर्शन पुरुषों का विषय है, स्त्रियाँ इसपर व्यर्थ का विवाद कर सकती हैं, उसमें कोई सार नहीं निकल सकता।'

आशा के विपरीत कला बड़े ज़ोर से हँसी। उसने कहा—'अच्छा! यह नया मार्ग ढूँढा। अब बताइए। यह शिक्षा है या संस्कार? क्या आपकी शिक्षा यहाँ संस्कारों के दंभ के नीचे कुचली हुई नहीं पड़ी है? जो बात आपके पिता के पिता के पिता कहते थे, क्या वही आपने इस बीसवीं सदी में फिर नहीं दुहराई? क्या इस समय भी आपमें पुरुष की वही अधिकारलोलुप भावना नहीं? क्या आप स्त्री को पुरुष से किसी भी प्रकार हीन समझते हैं?'

वीरेश्वर ने हाथ हिलाकर कहा—'नहीं। मैं स्त्री को हीन नहीं समझता। मैं स्त्री की चतुरता को मान सकता हूँ, उसकी चालाकी को स्वीकार कर सकता हूँ, किंतु उसकी बुद्धि का यह नीचे को चलनेवाला झुकाव जो मैं श्रेयस्कर नहीं समझता, उसे पुरुष की गुरुता और गंभीरता के समुख नहीं रख सकता। स्त्री मूर्ख नहीं है, छिछली है। अधिकारों की साधारण बलि देकर ही, जिसने चैन से रहने के लिए पुरुष के सिर पर जिम्मेदारियों के काँटों का ताज़ रख दिया, उसे मैं मूर्ख नहीं कह सकता। लेकिन एक बात है। पुरुष यदि पहाड़ है, तो नारी केवल उसके चरणों पर बहनेवाली नदी। पाषाण को इससे सींचने का छिछलापन नारी के अतिरिक्त कौन कर सकता है?'

'पाषाण का तो बहुत गर्व किया मिस्टर वीरेश्वर', कला ने कहा—'यह पाषाण की जड़ता यदि पुरुष में से किसी ने मिटाई है, तो केवल स्त्री ने। जब पुरुष भय

से जंगल भागता है तब वह भगवान की तृष्णा में जाता है, लेकिन होता क्या है जानते हैं ? निर्जन में पशु रहते हैं। बेकन ने भी यही कहा है, निर्जन में या तो देवता रहते हैं या पशु; सो देवत्व तो वही साहस है जो वह छोड़ जाता है, अपने आप ही उसमें पशुत्व रह जाता है, पशुत्व।'

वह उत्साह से कुर्सी पर सीधी बैठ गई और अबकी उसने गर्व से देखा। उसकी आँखों में रस नहीं था। शायद ज़्यादा पढ़ने से सूख गया हो। वह कभी फ़ैशन, कपड़े, विवाह, सखी-संवाद आदि में दिलचस्पी नहीं लेती। काम हो, उसका एक आदर्श हो, तभी वह ग्राह्य है। लड़के कहते, वह अपने ज्ञान पर गर्व करती थी, अपने आपको न जाने क्या समझती थी। किंतु बहुधा लड़के उसकी बात का कोई उत्तर नहीं दे पाते। वह कभी हार स्वीकार नहीं करती, क्योंकि प्रत्येक बात का उत्तर दे जाती है। कभी-कभी वह असाधारण रूप से मौन ग्रहण कर लेती है और कहनेवाला अपनी बातों की असगति को अपने आप अनुभव करने लगता है।

वीरेश्वर ने यह सब देखा और कहा—'आप फिर भूल कर गईं, मिस कला ! पशु को आपने साहसहीन कहकर मनुष्य के ज्ञान की अभिवृद्धि नहीं की। जिस शांति का आत्मानुभव निर्जन में है, उसे सहने के लिए कितनी बड़ी शक्ति की आवश्यकता है, वह क्या इस शोर-गुल में समझी जा सकती है ? नहीं। आप निर्जन का वह रूप नहीं जानतीं जिसमें यह हलचल, यह कोलाहल, नितांत मूर्खतापूर्ण उपेक्षा है, घृणा का सर्वांगीण समुदाय है। वह आत्मा का प्रकृति की सृजनशक्ति से एक तादात्म्य है। निर्जन जीवन की सर्वश्रेष्ठ कविता का स्रोत है।'

कला ने उसी स्वर से कहा—'निर्जन जिस कविता का द्योतक है वह जीवन से पराङ्मुख है। आदि कवि भी वेदना के कारण ही कुछ बोल सके। कालीदास का यक्ष निर्जन में रोकर भी अपने आपमें पूर्ण नहीं है, क्योंकि रोता वह कोलाहल के ही लिए है, अन्यथा निर्जन में कुछ नहीं है। आपको निर्जन इसी लिए पसंद है, क्योंकि आप कुछ नहीं के समर्थक हैं। यह कुछ नहीं और कुछ नहीं, मनुष्य की सबसे बड़ी निर्बलता है, क्योंकि यह मोह से भी घृणित है, घृणा से भी अधिक लाचार है। किंतु मनुष्य का सामाजिक चिंतन एकांत में नहीं हो सकता। वह ईंट-ईंट करके बननेवाला मकान है। उसकी अपूर्णता उसकी शक्ति है...'

वीरेश्वर ने कहा—'अपूर्णता ही जिसकी शक्ति है उसे शक्ति का दुरभिमान किस लिए ? वह तो कुछ भी नहीं जानता। धूल पर खड़े होने से ही क्या कोई यह बता सकता है कि पथ का अंत कहाँ है ? निष्क्रियता यदि मरण है, तो यह गति भी व्यर्थ है, क्योंकि दोनों रूप से कहीं कोई लाभ नहीं है। यह जंगल में खड़े होकर चिल्लाने की प्रवृत्ति भले ही धार्मिक रूप से महामानवी हो, किंतु मेरा इन दोनों विचारों से कोई भी सामंजस्य नहीं है। मैं स्वीकार नहीं कर सकता।'

कला ने उत्तेजित होकर कहा—'आपका 'मैं' बिना आधार का अभिमान ही नहीं, एक अंधकारपूर्ण अहंमन्य दुरभिमान है, क्योंकि सब कुछ झुठा कर भी आप उसी पर हर बात का सत्य असत्य देखते हैं, किंतु जो 'मैं' किसी भी 'तुम' के सामने हीन अथवा अधकचरा हो सकता है वह कोई परिमाण नहीं है, उससे मेधा का संतुलन नहीं हो सकता यह केवल झूठा दर्प है, अंधापन है · '

कला अधिक न कह सकी। अपने आवेश में अपने आप हकला गई। एकाएक पीछे से हाथ रखकर लीला ने कहा—'ॐ शांतिः ! शांतिः ! शांतिः ! इतनी जल्दी बोलने से सारी मशीन खराब हो जायेगी। क्या गज़ब कर रही हो ?'

कला ने मुड़कर देखा और झेंपकर चुप हो रही। लवंग उसकी ओर अजीब दृष्टि से देख रही थी। कला उसका कोई भी अर्थ नहीं लगा सकी।

घंटा बजने लगा। कला ने अपनी किताबें उठा लीं। ऊपर ही ऊपर की किताब पर कामेश्वर की दृष्टि पड़ी। वह प्लेटो की रिपब्लिक थी। उसने सोचा, इसके नीचे शायद शोपनहॉर होगा। किंतु उसने कोई बात कहनी उचित नहीं समझी। यह नहीं। ऐसी लड़की को वह ततैया समझता है। इनके पास सिवाय दिमाग़ चाटने के और कोई बात नहीं है। वीरेश्वर को ही मुबारक हो। न सुंदरता, न वह हलचल, जैसे एक तोता बोल रहा हो, या घड़ा औंधा करने पर गड़-गड़ करके पानी निकल रहा हो···

जब कला चली गई, कामेश्वर धीरे से हँसा। उसकी हँसी में व्यंग्य भी था, ऊधम भी। वीरेश्वर ने उसकी ओर देखा। कामेश्वर ने कहा—'मानते हैं तुम्हें। यह प्रेम पहाड़ की चोटी पर खड़े होकर शुरू हुआ है।'

'क्या आदमी हो तुम लोग ? जहाँ देखो, प्रेम, प्रेम। जैसे इस जीवन में प्रेम

के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं ? इतने आदमी भूखों मरते हैं, संसार में इतना दुःख है···लेकिन तुमको बस प्रेम···'

कामेश्वर हँस पड़ा, जैसे वीरेश्वर की बात व्यर्थ है। उसका कहना बेकार है। वीरेश्वर ने चेतकर कहा—तुम मूर्ख हो···समझे ? यह संदेह तुम्हारे संस्कारों का दोष है ···'

कामेश्वर ने कहा – 'यही तो कला कहती थी।'

वीरेश्वर अप्रतिभ हो गया।

——

[११]

पत्थर

ऊषा लाइब्रेरी में बैठी किसी किताब में से कुछ नकल कर रही थी। अपनी अपनी किताबों में उलझे हुए, वे परिष्कृत मस्तिष्क जिनके ज्ञान का अंतिम ध्येय आई सी० एस० या पी० सी० एस० हो जाना था, निस्तब्ध वायुमंडल में एक प्रकार का भयद सूनापन उपजा रहे थे। मेज़ों की पॉलिश पर प्रकाश हरा हरा-सा था। लाइ-ब्रेरियन अपने पास खड़े लड़कों से एक बार बात करता था, लड़कियों से दो बार, और वह उनमें था जो ऐसी लड़कियों से दिल में केवल घृणा करना जानते थे। जैसे कोई काँटों की झाड़ी की फूलों से ढँके हुए था।

घड़ी ने हिलते हुए पेंडुलम के चरण पर अपना एक का साज़ छेड़ा। कई किताबें शीघ्रता से एकदम बंद हो गई और लड़के लड़कियाँ बाहर चल पड़े। बाहर घंटा निनाद करता हुआ बज उठा, फुसफुसाते हुए लड़के घुसने लगे और·······

ऊषा चुपचाप लिखती रही, मानों आज उसे केवल लिखना ही था। प्रकाश और धूमिल अंधकार के मिलन में वह एक मूर्त्ति के समान प्रतीत हो रही थी। उसकी तेज़ी से चलती क़लम कागज़ों पर मानों एक तुमुल सग्राम-सा कर रही थी।

वह सुंदर नहीं थी। उसके गालों पर लालिमा आज क्या, शायद कभी भी नहीं रही थी और आँखों में नशा उसके लिए वैसा ही था जैसे अफ़गानिस्तान की स्त्री में कोमलता। किंतु यौवन राह के कंकड़ पत्थरों की कब चिंता करता है। खिली हुई गुलाब की पंखुड़ियों में जो एक ओस की बूँद गिर जाती है वह दूर से हीरा ही तो प्रतीत होती है।

ऊषा ने क्षण भर को अपनी कलम मेज़ पर रखकर हाथों को कड़ा करके कमर को सीधा किया और वह हाथ पर सिर धरकर विचारशून्य-सी ऊपर की ओर देखने

लगी। किंतु शीघ्र ही उसकी विचारधारा जो केवल उसकी श्रांति और मौन थी, टूट गई।

सामने एक लड़का खड़ा होकर कुछ कहने की प्रतीक्षा में उत्सुक-सा उसकी ओर देख रहा था।

'मिस ऊषा मुझे, इजाज़त हो, तो मैं आपसे कुछ अर्ज करूँ।'

ऊषा न उठी, न घबराई। उसने निर्मम आँखों के कोनों को संकुचित कर कहा—'कहिए।'

'जी, मुझे कहना यह था कि कालेज के चुनाव हो रहे हैं, यह तो आपको मालूम ही होगा।'

'जी हाँ, सुना है कि कुछ हो रहे है।'

'मुझे सज्जाद कहते हैं। मैं एम० ए० फाइनल इंगलिश में हूँ। प्रेसीडेंटशिप के लिए कोशिश कर रहा हूँ। अगर आप किसी और व्यक्ति से वायदा न कर चुकी हों, तो मेहरबानी करके मेरा ख़याल रखिएगा।'

लड़का मौन हो गया। ऊषा को उसकी बात करने में ऐसी सफलता को प्राप्त कर लेना अच्छा मालूम हुआ।

'तो क्या चाहते हैं', उसने कहा—'कि मैं आप ही को वोट दूँ?'

लड़का मुस्कराया।

'ख़ैर', वह बोला—'ऐसा कौन होगा कि इस ख़याल को बुरा समझे। ऐसा हो, तो इसमें अच्छी बात तो शायद ही कोई हो। लेकिन मैं आपको बेकार के लिए कुछ नहीं कहना चाहता, क्योंकि मैं यह तो कह ही नहीं सकता कि प्रेसीडेंटशिप के लिए मेरे सिवाय औरों ने खड़े होकर महज़ बेवकूफी की है। हर एक के विचार भिन्न-भिन्न होते हैं। वैसे मैं यह चाहता हूँ कि आप बजाय इसके कि दोस्ती से वोट देने में आगे बढ़ें, बेहतर हो, आपका दिमाग़ ही इसका फैसला करे। मैं नहीं, जो आपको ठीक मालूम दे उसी को चुनिए।'

ऊषा उसकी ओर देखती रही। लड़के ने कहा—'इजाज़त है? आप मेरी बात का खयाल रखेंगी?'

'ज़रूर', ऊषा ने कहा।

'शुक्रिया' और लड़का चला गया।

ऊषा कुछ क्षणों तक वैसी ही बैठी रही और फिर मुस्कराकर काम करने लगी। लाइब्रेरी में वैसा ही शोर होता रहा, वैसा ही सन्नाटा छाया रहा, ऊषा लिखती रही।

भगवती बेल के पास आकर रुक गया। वह अपनी किताबें एक किनारे रखकर सीढ़ी पर एक पैर रखे क्षण भर बेल में से आती गंध को सूँघने लगा। थक गया था वह। लगातार चार घंटे काम करने के बाद वह इधर कला विभाग के पुस्तकालय में आया था। अभी उसे देर भी नहीं हुई थी, कि कोई उधर आकर उसके सामने ठिठककर रुक गया।

दोनों के मुँह से अकस्मात ही निकला—'आप ?'

भगवती ने ही पहले कहा—'जी हाँ, आज जरा इधर चला आया, कुछ किताबें लेनी थीं।'

'ओह', लीला की आवाज़ कूक उठी—'आये तो आप। हमें कब आशा थी कि वैज्ञानिक के नीरस हृदय को एक दिन कला से भी अनुरक्ति होगी। आपको है ही क्या ? किस चीज़ के मिला देने से क्या बन जायेगा। ऊषा कहती तो है कि स्नेह प्रेम सब गलत है। आदमी के शरीर में हर बात के लिए कोई न कोई हिस्सा होता है। खून के लिए नसें, वजन के लिए हड्डियाँ, खाना पचाने के लिए पेट, फिर प्रेम के लिए कौन-सी जगह है, बताइए। फिर मैंने क्या आपसे गलत कहा। आप लोगों को तो यह देखना आता है कि किससे क्या, क्यों होता है। मगर आप यह देखने के लायक ही नहीं रहते कि आखिर हो क्या रहा है ? ज़हर लेने जाइए, बता देंगे, इसको खाने से आदमी मर जाता है, मगर यह कभी न कहेंगे कि इसे खा मत लेना......'

भगवती अभी तक चुप खड़ा था। अब वह बोल उठा—आपने ध्यान नहीं दिया मिस लीला ! सबसे अच्छी कला में उपदेश नहीं दिये जाते, मगर सब समझा भी दिया जाता है।

दोनों हँस पड़े। लीला की चमकती आँखों में जैसे कोनों पर एक संकोच की लहर आती थी, मगर लौट जाती थी। वह आज कत्थई रंग की साड़ी पहने थी जिस-पर एक भी बेकार की सजावट न थी और कीमती कपड़े में से सफ़ेद ब्लाउज़ चमक रहा था। पैरों में सफ़ेद चप्पल, होठों पर हल्की ललाई, खड़े होने में भी लचक, बातों में जवानी का लबालब रस। भगवती देखता रहा। लीला ने चुप होकर कहा—

आप बातों से माननेवाले हैं नहीं। लोग तो कहते हैं कि आपको अपना नाम बताने में भी शर्म मालूम होता है।

'आप ही बताइए, आपसे कभी मैंने शर्म की है? लोगों को जाने दीजिए।'

'मुझसे? आप शर्म क्यों करने लगे? मैंने क्या आपसे कभी कुछ कहा है?'

'आपसे मैंने कहने को मना ही कब किया था।'

भगवती एकदम रुक गया। वह क्या का क्या कह जाता। लीला को जैसे संतोष नहीं हुआ। वह नीचे देखकर नाखून को चप्पल में घुमाने लगी। वह अभी कुछ और सुनना चाहती थी। किंतु भगवती यह पहचान नहीं पाया। वह समझा शायद लीला को उसकी बात अच्छी नहीं लगी। वह सामने फ़ील्ड के पार गुजरती लड़कियों को देखने लगा। पल भर में ही उसे ध्यान आया और लीला पर उसकी दृष्टि अटक गई। उसने देखा। लीला शायद गिरनेवाली थी, शायद वह चाहती थी, कोई उसे सँभाल ले। किंतु न वह गिरी, न भगवती ने उसे सँभाला। लीला के गालों पर एक हल्की-सी लाली एक क्षण लहराकर कांप उठी। उसने आँखों की कोर से भगवती की ओर देखकर कहा--आइए भीतर चलें।

भगवती ने किताबें उठा लीं और अनायास ही उसके मुख से निकला—चलिए। दोनों लाइब्रेरी में पहुँचकर गभीर हो गये। लीला ऊषा की मेज़ पर जाकर रुकी। लीला ने हँसकर कहा—सलाम मिससाब!

ऊषा चौंक उठी। 'ओह! आप हैं मैडम! तशरीफ रखिए!'

लीला कुर्सी खींचकर बैठ गई। ऊषा ने देखा, भगवती किताबें ढूँढ रहा था। दीर्घाकार अलमारियों के शीशों पर बाहर की रोशनी झलमला रही थी। भगवती उनके सामने ऐसा लगता था जैसे प्राचीन इमारतों के भीतरी भागों पर खुदे लेखों को पढ़ता हुआ कोई पुरातत्त्ववेत्ता हो। ऊषा लीला की ओर देखने लगी।

'कहाँ से आ रही हो?'

'अस्पताल से।'

'क्यों कोई खुशी होनेवाली है या घायल हो गई हो?'

'चल हट, फिर बदतमीजी। हमारी मासी बीमार हैं न? उनको देखने गई थी।'

'ओह, माफ़ करना। मैं समझी थी, खैर जाने दो, मगर अब फिर शायद अस्पताल जाना पड़े।'

लीला ने अनजान बनकर पूछा—'अब क्यों ? तीन दिन में एक बार जाती हूँ ।'

'लेकिन अब तो शायद तुम्हें वहीं रहना पड़े ।'

'कोई बात भी हो । या बके जाओगी ।'

'झूठ तो मैंने कहा नहीं । तुम दिल पर हाथ रखकर कहो—मैंने झूठ कहा है ?'

'क्यों', लीला अपराधिनी-सी पूछ बैठी—'क्या किया है मैंने ऐसा !'

'तुम्हारी सूरत से मालूम पड़ रहा है ।'

लीला ने अपने मुख को न देख पाने के कारण अपने भावों को क्रोध में बदलने की कोशिश करते हुए कहा—तुम्हें अगर ढंग से बात करनी हो तो करो, वर्ना मैं जाती हूँ ।

ऊषा हँसी । हँसी कि उसकी आँखों में एक रहस्य खोल देने की चतुरता लहरा उठी । लीला जैसे समझ गई थी, मगर फिर भी नहीं समझी । वह चुप बैठी रही । ऊषा उसके उठते क्रोध को, अवरुद्ध हो जाने के अमर्ष को देखकर चुप नहीं हुई । वह जैसे इन सबसे परे थी । उसने रुककर कहा—तुम्हें पीड़ा नहीं हुई है । किंतु उसका नहीं होना असंभव है । तुम्हें काँटा चुभ गया है । सोचती होगी, काँटा मुझे चाहता है तभी तो मुझमें चुभा है, काँटा तो निकल जायेगा, मगर ज़ख्म आसानी से नहीं ।

लीला निर्बोध बैठी रही । ऊषा भी अब गंभीर हो गई थी । लीला को उसकी बात अच्छी लगकर भी कुछ बिल्कुल ठीक नहीं लगी थी । उसने केवल इतना ही कहा—मैं समझी नहीं; तुम यह सब क्या कह रही हो ।

ऊषा ने अजीब जवाब दिया—'तुम्हारी मर्ज़ी ।'

'काम कर रही हो ? करो । मैं अभी किताबें लेकर आती हूँ ।'

'आओगी ज़रूर, गुस्सा तो नहीं हुई ।'

'नहीं, गुस्सा क्यों होने लगी ?'

लीला चली गई । ऊषा फिर काम करने लगी । थोड़ी देर बाद उसने जब सिर उठाया, तो देखा, भगवती लीला को कोई किताब बता रहा था । लीला उसकी बात न सुनकर उसका मुख देख रही थी······

ऊषा के होठों पर मुस्कराहट खेल उठी । वह उठी और भगवती के पास जाकर बोली—'हमें तो आप भूल ही गये ।'

भगवती एकदम सकपका गया। पहले वह समझा कि लीला ने उससे यह कहा है। किंतु ऊषा को देखते ही वह मुस्करा उठा।

'वाह, आप तो बड़ी जल्दी भूल जाती हैं। आपसे कहा तो था कल कि मैंने आपके नाम को छपवाकर फ्रेम करवा लिया है।' तीनों ठठाकर हँस पड़े। लाइब्रेरियन की बूढ़ी आँखें चश्मे के भीतर से झाँकने लगीं। इससे पहले कि कोई कुछ कहे, भगवती 'जरा माफ़ कीजिए' कहकर लाइब्रेरी की ऊपरी मंज़िल में पहुँच गया।

ऊषा ने लीला को देखा, मुस्कुराई और धीरे से कहा—पत्थर है। पानी में फेंक दो। खुद जाकर तह में बैठ जाये, ढूँढ़े न मिले और ऊपर सैकड़ों भँवर पड़ जायें·····

लीला तृप्त-सी सुनती रही।

———

३

संज्ञा
और
क्रिया ?

[१२]

तृष्णा

ज्वार आया, सब पानी से ढँक गया। भाटा आया, पानी उतरने लगा। हर एक चीज़ भीगी-भीगी-सी गदी नज़र आने लगी। जिस हलचल ने रहस्यों को गंदगी को एक कर दिया था वह धीरे धीरे समाप्त होने लगी। और नाविक, जिसे तब केवल अपने प्राणों की पड़ी थी, अपने लुटे घर की याद करके रोने लगा। कालेज का सर्दार होस्टल खास इमारत से दूर न था। हरी और वीरेश्वर सीढ़ियों पर बैठे थे। खिड़की से वे सड़क देख सकते थे, किंतु लटकती बेलों के कारण बाहर से उन्हें देख सकना आसान न था। दोनों कुछ देर बिल्कुल चुप बैठे रहे। वीरेश्वर चुपचाप अपनी सिगरेट पी रहा था। वह उस समय एक प्रश्न था जो कुछ सुनना चाहता था वह जानता था, उससे भूल हो गई थी। किंतु हरी सिगरेट के धुएँ में धूमिल एक चिंता में दबा जा रहा था। दोनों चुप थे।

वीरेश्वर ने मौन तोड़कर कहा—'हरी तुमने अपनी हार को बहुत अपना लिया है।'

'नहीं', वह एक सूखी हँसी हँसा। 'मैंने अपनी हार को अपने से बहुत दूर हटा दिया है। सज्जाद की पूरी पार्टी जीत गई है। मैंने, बताओ तुम लोगों के लिए क्या क्या न किया? शुरू से आखीर तक तुम्हारे साथ रहा, मगर तुम माने ही नहीं। हार गये न?' वह हँसा, उसकी हँसी से वीरेश्वर छिप गया। हरी फिर कहने लगा—मुझे अपने हारने का बिल्कुल अफ़सोस नहीं है। अफ़सोस है तुम्हारी हार का।

वीरेश्वर ने आँखें नीची कर ली। वह यह नहीं देख सका कि हरी के होठों पर विद्रूप की कुटिल हँसी निःशब्द संतरण कर रही थी।

हरी ने कहा—तुम साफ़ साफ़ क्यों नहीं कहते?

'कहने को अब रहा ही क्या है? लेकिन फिर भी मुझे यह नहीं मालूम था कि

तुम भी मुझे दगा दोगे। तुमने मुझसे वायदा किया था कि तुम सदा मेरे साथ रहोगे। तुमने अपने आपको धोखा दिया। जिधर कला ने तुम्हारी नकेल पकड़-कर तुम्हें मोड़ दिया तुम उधर ही चले गये।'

'बिल्कुल नहीं। मैं यह सब सुनना नहीं चाहता। मैं सदा से ही विचारों की आज़ादी का हामी रहा हूँ। और तुम मुझे जानकर भी इस तरह मेरे ऊपर ज़ोर डालते रहे। तब बताओ मैं क्या करता ?'

'तो क्या तुम मुझसे साफ़ साफ़ नहीं कह सकते थे कि तुम मुझे वोट नहीं दोगे ?'

वीरेश्वर चुप हो गया। हरी कहता गया—'कालेज में आकर हम मिलते है एका करने के लिए, आज़ाद होने से लिए। मगर होता क्या है ? हम बँटते चले जाते हैं और हमारी रग रग में गुलामी भर जाती है। रानी से मैंने पूछा था कि यह सब उसे कैसा लगा ? उसने कहा कि वह सब सपने का-सा था। आता था और चला जाता था। उसने कहा था कि जीवन में इन सबका कोई महत्त्व नहीं। तुम कहो न ? अपने विजय में तुम इतना सोचते हो, कला के बारे में भी कुछ कहो न ?'

वीरेश्वर चौंककर कह उठा—तुम मुझे जानते हो, फिर भी ऐसी बातें कर रहे हो ? कालेज की लड़कियाँ कालेज में ही सुंदर लगती हैं, बाहर नहीं। इस-लिए मैं स्वतंत्रता का हामी हुआ। स्त्री पुरुष के बंधन तोड़ने के लिए मैंने कला से सिर्फ दोस्ती की है। मैं एक बार दिखा देना चाहता हूँ कि सेक्स लड़के लड़की की दोस्ती में नहीं भी आ सकता है। मैं तुम्हारा दोस्त हूं, मगर तुम्हारी बहुत-सी बातें मुझमें नहीं हैं। मैं एक खास दिमागी सतह तैयार कर लेना चाहता हूं। और तुम ? तुमने सचमुच कालेज की सारी नियामतों की नुमाइश की है। पढ़ने आये और फ़ैशन सीखा और समझे सिर्फ़ इश्क करना। क्या मैं कुछ गलत कह रहा हूँ ?

दोनों फिर चुप हो रहे। सीढ़ी के बगल के ही कमरे से आवाज़ आ रही थी—वीरसिंह, तुम्हें यह नहीं भूलना चाहिए कि आज सारा हिंदुस्तान गुलाम है। फ़ैशन महुब्बत वगैरह हमारी जड़ों को काटते चले जा रहे हैं। सोचो एक बार, मा को खाने को नहीं है, बच्चे दूध के लिए तरस रहे हैं। रईसों के तो सब कुछ है, केवल एक गुलामी उन्हें कभी कभी कुरेद उठती है। तब मध्य वर्ग में विद्रोह लाकर क्या होगा ? हमें जगाना होगा ग़रीबों को; उन अंधों की आँखें खोलनी है,

जिन्हें यह भी नहीं मालूम कि उनमें भी पुतली है, जिसकी ताराओं में सारे संसार का प्रकाश भरा पड़ा है। बोलो वीरसिंह, कालेज के चुनाव बंद करवाने का प्रयत्न करके क्या फ़ायदा होगा। हम तुम पकड़े जायेंगे और आज की हालत में कोई चूँ भी नहीं करेगा।

'और करने को हमी क्या कर लेंगे ?'—एक और आवाज़ ने कहा।

'ठीक कहा है सुंदरम ने। बिल्कुल यही होगा।'—पहली आवाज़ ने निश्चय से कहा।

'कामरेड रहमान! एक बार ठंडे होकर सोचो। तुम दो बार जेल हो आये हो। जेल से तुम्हें डरना नहीं चाहिए। एक देशी रियासत में तुम बग़ावत करके विद्यार्थियों को कितना जगा चुके हो! यह तुम स्वयं नहीं जान सकते!'

'लेकिन दो साल बिगाड़ दिये मैंने। आज मैं भूखों मर रहा हूं। सारे कामरेड ज़बानी बात करते हैं और बाल संवारकर लड़कियों के पीछे घूमा करते हैं।'

'वे गद्दार हैं। तुम्हारी कुर्बानी पर मार्क्स आंसू बहाएगा। काकेशस के पार का वह कामरेड, वह पामीर के उस तरफ़ का मसीहा, वह आदमियत का एकमात्र बचानेवाला स्तालीन तुम्हारे गोशे गोशे के लिए······'

'नानसेंस वीरसिंह! तुम अभी भी इस बोरजुआ दक़ियानूसी को नहीं छोड़ सके। मैं आस्मान की हवाई सल्तनत के लिए रोज़े नहीं रखना चाहता। जन्नत के दरवाज़े खुलें या बंद रहें, मुझे इससे कोई मतलब नहीं। और तुम्हारा प्रस्ताव, कि तीन तीन महीने के लिए हिंदू, मुसलमान और ईसाई प्रेसीडेंट हों, उसमें भी काफ़ी अड़चनें हैं। ऐसी हालत में सब वही समय मांगेंगे जब सबसे ज़्यादा काम और नाम हो।'

'मगर वह तो हल हो सकता है।'

'बिल्कुल ठीक है।'—सुंदरम बोला।

'वीरसिंह!! फिर भी यह इतना सहज नहीं है।'

'कामरेड रहमान तुमको यह नहीं भूलना चाहिए कि विद्यार्थी संघ कम्यूनिज़्म को लेकर नहीं बनाया गया है। भेड़ें मुश्किल से कब्ज़े में आई हैं। निकल न जाये हाथ से! अब कामेश्वर आये तो मुमकिन है कुछ काम चले।'

'उससे क्या काम चलेगा ? डिप्टीकलक्टरी करेगा या जेल जायेगा ?'

'मगर वह हमसे हमदर्दी रखता है।'

'तो क्या हम भीख माँगते हैं?'

'आर्डर, ऑर्डर,' सुंदरम चीख उठा। 'वह गद्दार है। हमें उससे कुछ नहीं करना है। वह आ जायेगा कम्पटीशन में तो जानते हो क्या कहेगा? कि बैठते बहुत हैं, आते हैं मगर कम। और वह हमें मैटरनिख की तरह नफ़रत से बेकार करार देगा। हमें उससे कोई मतलब नहीं है। बोलो रहमान, यह अपना भय है। हमें उससे कोई संबंध रखना है या नहीं?'

'नहीं'—हथौड़ा हँसिए के पीछे बज उठा।

इसके बाद एक गंभीर आवाज़ सुनाई दी—'बराबरी, आज़ादी और अमन के लिये मरनेवाले सदा शहीद हैं। हमें लाल खून देखना है, लाल शीशे का चश्मा नहीं लगाना है।'

फिर दरवाज़ा खुलकर बंद होने की आवाज़ आई। फिर एक भयानक उबा देनेवाला सन्नाटा छा गया। बेल हवा में हिल पड़ी। हरी दूसरी सिगरेट जला रहा था। कुछ लड़के लड़कियाँ काम से या बेकाम सड़क पर चल रहे थे। वे दोनों चुपचाप बैठे रहे। हरी ने मुस्कराकर कहा—वीरेश्वर, क्या कामेश्वर सचमुच गद्दार है? क्या वाक़ई ऐसे आदमी को गद्दार कहा जा सकता है?

वीरेश्वर ने सुना नहीं। वह देर से चिंतामग्न था। आज वह विह्वल-सा समुद्र तीर पर पड़ी मछली की तरह छटपटा रहा था। आज वह फँस गया था। जैसे सारा सागर, समस्त लहरों का उन्माद उस एक मत्स्य के निकल जाने पर अगाध हाहाकार बन गया हो। मनुष्य अपने को केंद्र बनाकर अपने चारों ओर समाज का जाल बिछाने का दंभ करता है। किंतु स्वयं है भी, नहीं भी है, जैसी फिसलती गाँठ से कभी सुलझन का तार सीधा होकर झनझना नहीं सका। हरी के प्रश्न से उसे कोई उत्सुकता नहीं हुई। हरी ने अपने आपसे कहा था, सूनेपन से कहा था।

चुनावों के कारण कितने लोगों में आपस में झगड़ा नहीं हो गया होगा? हरी एक व्यक्ति हार गया। किंतु चुनाव के समय उस्तादी की ज़रूरत होती है, दोस्ती का क्या लेना देना। सज्जाद को सारे मुसलमानों ने वोट दी। कुछ हिंदू और ईसाई भी उसके साथ हो गये। वह जीत गया। हार गया कमल। चाल नहीं चली। समर ने हमेशा बेवकूफ़ियाँ दिखाईं। किंतु कटनेवाला खेत काट

दिया गया, बोनेवाला बो दिया गया। यह अकेला एक कौओं को उड़ानेवाला बीच का बीच में कौन रह गया? हरी!

वीरेश्वर को मन में ग्लानि हुई। रानी रेनौल्ड के पीछे ही हुआ है यह सब। मैक्सुअल की सांप्रदायिकता के कारण सब ईसाई इसके विरुद्ध हो गये। स्त्रियों के पीछे झगड़ा होना आवश्यक हो था। कोई कर भी क्या सकता था। मगर भीतर से उसी समय जाने कौन वीरेश्वर से बोल उठा—तुम धोखा दे रहे हो। तुमने कमल के लिए जो चाल खेली थी उसमें हरी का दोगला क़रार दिया जाना जरूरी था और चूंकि साम्राज्य की पनाह नहीं थी, वह मारा गया।

कोई भी व्यक्ति सहज ही अपनी ग़लती मानकर आत्मसमर्पण करने के लिए तैयार नहीं होता। कोई न कोई बात ऐसी होनी चाहिए जिसके सहारे वह पूरी तरह नहीं, तो कुछ हद तक ठीक रह सके। वीरेश्वर का कीड़ा कुरेदकर पजे गड़ा उठा। उफ! उसने मन ही मन दुहराया—आखिर मैक्सुअल भी तो था। रानी रेनौल्ड—काम चलाऊ ठीक। मगर यह हरी का प्रेम अभी तक तो कुछ समझ में नहीं आया।

हवा चल रही थी। मनमाने झकोरे चल रहे थे। मैदान की बरसात में बढ़ी घास लहरों-सी हवा में हिलोरें भर रही थी। मेंहदियों में एक सनसनाहट कांप उठती थी। बेल झूमर ले रही थी। बालों का एक गुच्छा हरी के माथे पर खेल रहा था। वह उसे बार-बार हाथ से ऊपर करता था, किंतु हवा आती थी सीरी, सुखद सीरी और वह गिरकर फिर चंचल-सा आंदोलित हो उठता था। हरी के मुरझाये चेहरे पर अभी भी जीवन के स्वप्न की अधमुंदी झलक थी। वह भी विद्रोही था—किंतु मध्यवर्गीय, और मध्यवर्गीय स्वप्न सदा निराशा की ओर खींचते चले जाते हैं।

आस्मान पर बादल छा रहे थे, पांच हजार फीट से ऊँचे होंगे। काले-काले जलभर, भारिल कंपित मेघ। मजनूँ को अलकों से—लैला के ख़ुमार-से। क्षितिज पर नीलिमा एक ठंडक लिये बढ़ती चली आती थी, जिसमें पीपल के खड़खड़ाते चमकते पत्ते वेग से कांप रहे थे।

वीरेश्वर देखता रहा। कालेज में से एक हमिंग आवाज़ आ रही थी जैसे लंका-

शायर की मिलें फ़ेल हो गई हों और बाहर निकलते ही बेकारी के अतिरिक्त और कोई स्वागत नहीं करेगा। वे दोनों सिगरेट पीते हुए चुपचाप बैठे रहे।

'वीरेश्वर!'—हरी ने कहा—तुमने दो साल से मेरे साथ एक नाव को खेया है, इसी लिए तुमसे दूर होने की हिम्मत मुझमें नहीं रही है। रानी के प्रेम के वह प्रारंभिक दिन! जब हमें कट्टर ईसाइयों ने बदनाम किया था, उस वक्त तुम विचारों की स्वतंत्रता के बल पर मुझे कितनी शक्ति देते रहे थे। रानी तुमपर विश्वास रखती थी, मगर आज वह तुमसे नफ़रत करती है।

वीरेश्वर हँसा। हँसा कि नफ़रत की उसे कुछ परवाह नहीं है। वह स्वयं कब चाहता है कि कोई उससे प्रेम करे या घृणा ही। वह सर उठाकर बोला—मैं जानता हूँ कि मुझसे ग़लती हुई है। मगर कुसूरवार मैं सिर्फ़ तुम्हारे सामने हूँ। और किसी से मुझे कोई मतलब नहीं। कोई मेरे बारे में कुछ भी सोचे!

'कला की भी नहीं?'

विद्रूप! उपहास की उच्छृंखल तृष्णा!!

'नहीं, कला की भी नहीं, अपनी भी नहीं, तुम्हारी भी नहीं······किंतु तुम मेरे दोस्त हो······'

हरी हँस पड़ा। उसने काँपती हुई आवाज़ में कहा—वीरेश्वर!

वीरेश्वर चौंक उठा। उसने उद्विग्न होकर कहा—यह क्या कह गये तुम? मुझे अपना दोस्त भी नहीं समझते? क्या तुम्हें नफ़रत हो गई है?

'नहीं!'—हरी का सर झुका हुआ था। वीरेश्वर ने देखा, उसकी आँखों में आँसू छा रहे थे, डबडबा आये थे। वीरेश्वर काँप उठा। यह क्या हुआ? अविश्वास की परंपरा एक व्यक्ति से जाति में भर सकती है। वह अंधकार की प्रथम हुंकार है।

पानी की रिमझिम बूँदें टपक रही थीं। सुदूर हिंद महासागर का सँदेसा लाने-वाली घटाएँ बूँद-बूँद करके झर रही थीं, जीवन बरसा रही थीं।

दोनों बड़ी देर तक बैठ रहे, विकारों की प्रतिच्छाया से, अनमनेपन में तल्लीन बैठे रहे।

\+ \+ \+

शाम को जब वीरेश्वर घूमने निकला, तो उसने देखा, रेस्त्राँ के बाहर फुटबाल टीम कालेज-कलर पहने बोतलें पी रही थी।

खिलाड़ियों के सारे कपड़े पसीने से तर थे। टीम हार गई थी, जैसे किसान खेती करके खड़ा था, मगर जमींदार के कारिंदे उसकी मेहनत को छीन ले गये थे, अपने लिए नहीं, दूसरों की सल्तनत का एक नया खंभा बनाने के लिये।

और रेस्त्रां के भीतर सज्जाद की पार्टी बिजली के पंखों में पार्टी उड़ा रही थी। आदमी के लिए जानवर काटकर बनाया गया था। वीरेश्वर ने उदासी से उन्हें देखकर नफ़रत से मुँह फेर लिया। उन्होंने वीरेश्वर को देखा, जैसे देखा नहीं। मगर कोफ़्त दरवाज़े के बाहर तक तार बनकर खिंच आई। उसकी उदासी में ही उनका हर्ष था, क्योंकि पराजित का भग्न हृदय विजेता का सबसे बड़ा वैभव है।

सामने से साइकिल पर हरी आ रहा था। वह आकर उसके पास रुक गया। वीरेश्वर ने उसे एक सिगरेट दी और दीयासलाई बढ़ाकर सुलगा दिया।

'चलते हो घूमने'—वीरेश्वर ने पूछा।

'तुम तो जानते हो मेरा घूमना'—हरी ने मुस्कराकर कहा।

'आओ चलो,' उसने 'अपनी साइकिल पकड़कर घुमा दी और दोनों चल पड़े। पैरों के नीचे काली सड़क अपनी स्वच्छता के गौरव में बेसुध पड़ी थी। सुबह का कालेज का शोर एक तमीज और गांभीर्य्य लिये होता है और शाम के शोर में यौवन की चंचलता होती है, एक टीस होती है--यादों की, अरमानों की, ख्वाहिशों की और निराशा की तड़प लिये।

धीरे धीरे बादल बढ़ते आ रहे थे और एक ओर से पीला अँधेरा बरस उठा। दोनों चुपचाप चले जा रहे थे। सड़क के दोनों तरफ मैदानों में खेल हो रहे थे। पास के मुहल्लों के बच्चे वहीं हरी घास में खेलने आ जाते थे और उनके संग का एक-आध नौकर रात्रिपाठशाला के लिए आनेवाले गरीब अछूतों के साथ खेल रहा था। वालीबाल और बास्केटबाल के खेल पर लोग अभी भी जमे हुए थे। कितना सुंदर और सुहावना था यह जीवन; एक निश्चिंतता, एक उन्माद और जवानी की थोड़ी देर रहनेवाली थकावट, जिसपर वृद्धों का सरल हुलास, लड़कियों की प्यार भरी निगाहें, बच्चों का कल्लोल और सांझ का नारंगी बैंजनी खुमार!

हरी ने कहा--वीरेश्वर, मैं अपने आपको इस आनंद में भूल जाना चाहता हूँ; मैं चाहता हूँ, मुझे वे अपने पुराने दिन वापिस मिल जायें, जब मुझमें यह आग न थी।

'यह नहीं हो सकता। अब तुम कठोर, केवल कठोर बन सकते हो, और कुछ नहीं। तुम्हें बचपन सिर्फ़ इसलिए अच्छा लगता है कि तुम अपनी मा का दुलार याद करके विह्वल हो जाते हो, क्योंकि वैसा प्यार तुम्हें कभी नहीं मिलेगा। औरों का प्यार केवल वक्त काटने का एक समझौता है। पागल होकर एक दूसरे को नहीं, अपने आपको धोखा देना है। अब जीवन में वह सुख नहीं है।'

'तो क्या सारा जीवन दुःख में ही बीत जायेगा ?'

'नहीं। हमारे तुम्हारे जीवन में सुख नया-नया बनकर हर क्षण हर पग पर हमें लालच देता आता है। तब हम तुम उसमें कितना प्राप्त करते हैं ? हम उसकी अपने अतीत से तुलना करते हैं। मैं इन बोरजुआ इमोशन्स (emotions) से ऊब गया हूँ। अब मैं सोचता हूँ कि बचपन से हम आराम से पलते हैं। स्कूल में आते हैं। हमारे ऊपर हमेशा किसी न किसी का दबाव रहता ही है। क्योंकि हम गुलाम हैं और साम्राज्यवाद में कोई किसी का दोस्त नहीं होता। हर शख्स किसी न किसी का नौकर ही हो सकता है। फिर हम तुम किताबी धोखे से जीवन बनाने की कोशिश करते हैं। इस राज में तो अपनी हीनता का अनुभव करा के ही प्रोफ़ेसरों की भी इज्ज़त हो सकती है। उन्हीं रटी लकीरों पर चलना पड़ता है। कालेज पश्चिम की कहता है, घर पूर्व की ; वहाँ हम देखते हैं, सूरज डूब रहा है और यहाँ तब जब कि सूरज बहुत दूर चला गया है। हम दुगने अंधेरे में रह जाते हैं। समाज की मुखालफ़त न कर सकने के कारण हम एक मानसिक कायरता में डूबते चले जा रहे हैं। यह जीवन नहीं है। जीवन है आक्सफ़ोर्ड में, कंम्ब्रिज में, कैलीफ़ोर्निया में। इन मुल्कों के लोग आज़ाद हैं। दुनियाँ की क़ौमों में उनकी इज्ज़त है। वे अपने आप जो कुछ हैं, वही हैं; हमारी तरह काट-छीलकर किसी दूसरी चीज के लिए ज़बर्दस्ती फिट नहीं किये जाते। कहाँ है वह आज़ादी का गर्म ख़ून ! देखो, सड़क ही कितनी ग़रीब हैं !! कितनी एड़ी मौत की-सी बेहोशी है !! आज दुनिया में इतना कष्ट, इतनी पीड़ा है कि दुनिया की हर समझदार चीज़ गौतम बुद्ध हो सकती है। हम तुम तो बंजर के फूल हैं। प्रोफ़ेसरों को ही देख लो। अपने ज़माने के दक़ियानूसी विचार लिये खड़े हैं। वह उस ज़माने की बची खुरचन हैं जब हिंदुस्तान की गुलामी को पूँजीवाद का सहारा मिला था और अपने कमीने कायरपन को ईश्वर का अन्याय कहा गया था।'

वह हाँफ रहा था।

हरी चीख उठा— यह सब तुम क्या बक रहे हो ? इस दमन के ज़माने में ?

'दमन ?'—वह ठठाकर हँस पड़ा। 'इस अमन को बचाने के लिए दमन सोचा गया है। लेकिन अगर तुम यह सोच सकते कि वर्षा में कमरे में बैठने से बेहतर हवाई जहाज में उड़ना है, तो तुम यह भी सोचते कि दलदल से तूफ़ान कहीं अच्छा हो सकता है।'

इस वक्त गहरा पीलापन आस्मान से उतर आया था।

'आँधी आनेवाली है, बीरू, जल्दी लौटो।'

आँधी भयंकरता से चल रही थी। लोगों में एक फुर्ती आ गई थी। सब अपनी अपनी क्षणिक मंजिले-मकसूद को जल्दी से जल्दी पहुँच जाना चाहते थे। खेल बन्द हो गये। डेविड होस्टल की छत को पैरों की दो-चार धमधम के बाद लड़कियाँ खाली कर गईं। राह किनारे का भूखा भिखारी शून्य दृष्टि से चुपचाप उस आँधी में बैठा था। उसे जाने को कहीं जगह न थी। वह महादेव था, वह नहीं जिसपर हिंदू पानी चढ़ाते हैं, बल्कि वह जिसपर प्रकृति रोती है।

पेड़ कोलाहल करके झूम रहे थे, मानों टूट ही पड़ेंगे। सब जगह धूल छा गई थी। आँखें खोलना असम्भव हो गया था। और उसके बाद ही भयंकर पानी पड़ने लगा।

मगर लीला को इन सबसे कोई गरज न थी। ड्राइवर ज़रा गौर से चलाता हुआ तेजी से मोटर को बढ़ा ले गया। वीरेश्वर उस गरजते तूफ़ान के शोर से होड़ बदकर हाँफते-हाँफते कह रहा था—'इन मोटर के पहियों से······'

तूफ़ान की विजय हुई। हरी कुछ भी नहीं सुन सका। मुँह पर पानी की धारा बजती रही ·····

जब वह लोग भींगकर रेस्त्राँ पहुँचे तो पीटर बराम्दे की कुर्सी पर बैठा अपने गीले पैरों को रूमाल से पोंछता हुआ एबर्टसन से कह रहा था अँगरेजी में—कितना अजीब मुल्क है ! कुछ देर पहले कितना सुहावना था और अभी-अभी धूल भरा तूफ़ान···ओह, भयानक···

राबर्टसन ने संक्षिप्त उत्तर दिया—'ट्रापिक्स !' उसके होंठ व्यंग्य हास्य से कुछ काँपकर मुड़ गये।

वीरेश्वर का कौमी घमंड एकबार मन मसोसकर रह गया। वह कुछ बोला नहीं। सांवल बर्फ़ कूट रहा था। मास्टर बराम्दे में एक कोने में बैठा हिसाब लिख रहा था। मनोहर 'सावन रिझावन' में मस्त हो रहा था। कालेज अपनी हरियाली से, बरसते पानी की सफ़ेदी में, किसी पहाड़ की ऊँची घाटी-सा लग रहा था, सुंदर, मनोहर, निस्तब्ध, सुनसान, एकाकी, गंभीर······

उस समय भगवती क्लोरीन पर कलम घिस रहा था। आज उसका हृदय कुछ भारी भारी-सा था।

---

[१३]

दान की क्षमता

भगवती ने सोफ़ा पर बैठते हुए कहा—आपने मुझे याद फ़र्माया था ?

इंदिरा सकपका गई। उसने पूछा—आप कैसी बातें कर रहे हैं ? मैंने तो भैया से कहा था। उन्होंने कुछ नहीं कहा ?

'जी नहीं'—भगवती ने संक्षिप्त उत्तर दिया।

'आप बीच में कहीं चले गये थे ?'—इंदिरा ने फिर पूछा।

'जी हाँ, गाँव गया था, मा से मिलने।'

'आपका गाँव कैसा है ? एक बार हम भी गाँव देखना चाहती हैं। आज तक गाँव ही नहीं देखा।' इंदिरा ने उत्तर दिया। 'कहते हैं गाँव में प्रकृति का ही राज चल रहा है अभी तक।'

'अबकी छुट्टियों में चलिएगा ? लेकिन आप ठहरेंगी कहाँ ?'—भगवती ने चिंतित होते हुए कहा।

'क्यों, आपके घर ? खाना भी नहीं देंगे आप ? यह भी कोई आपको मर्ज़ी है ?'—इंदिरा ने अधिकार जताते हुए कहा।

'लेकिन आप मेरे घर में नहीं रह सकेंगी ? मेरा घर आपके नौकरों के घर से भी ख़राब है, छत पर फूँस है, दीवालें मिट्टी की हैं कच्ची। ज़मीन पर गोबर लिपा होगा। न आपको फ़र्नीचर मिलेगा, न खाने-पीने को टोस्ट और चाय। वही सूखी रोटियाँ खानी पड़ेंगी ? तैयार हैं ?'—भगवती ने हँसते हुए कहा।

'बिल्कुल।' इंदिरा ने कहा—'यह तो एक नया अनुभव होगा। इन परिस्थितियों से आप यदि जीवन भर संघर्ष कर सकते हैं, तो क्या हम दो-चार दिन भी नहीं रह सकते ? आपका मेरे बारे में विचार बिल्कुल ग़लत है। मैं धन पर कोई अधिक ध्यान नहीं देती। आप ?'

'मैं ? मैं तो धन को ही एकमात्र शक्ति समझता हूँ। जो पढ़ा है वह धन के कारण, जो पहनता हूँ वह धन के कारण। फिर धन के लिए ही तो यह सारा संघर्ष है, मिस इंदिरा! इसे मैं कैसे झुठा सकता हूँ ?'

इंदिरा ने देखा, वह निस्संकोच अपनी दरिद्रता को उसके सामने खोल गया। यह कहने में भी उसे कोई हिचक नहीं हुई कि वह उसके नौकरों से भी गया बीता था। इंदिरा उसके साहस पर प्रसन्न हुई। यदि यह मनुष्य धन को ठीक समझता है, तब वह स्वार्थी कहाँ रहा ? ठीक ही तो है ?

'तो आप गाँव क्यों गये थे ?'—इंदिरा ने उत्सुकता से पूछा।

'सच कह सकता हूँ यदि आप उसे अपने आप तक सीमित रखने का वचन दे सकें।'

'आप कहिए। मैं प्रतिज्ञा करती हूँ।'

भगवती ने कहा—'आप जानती हैं, मेरे गाँव के ज़मींदार नाम के न सही, वैसे एक छोटे-मोटे राजा हैं। उनके यहाँ गर्वनर और कभी-कभी वायसराय भी शिकार करने जाते हैं। उनका एक लड़का है। उसका नाम है राजेंद्रसिंह। हाल में ही इंगलैंड से लौटा है। अबकी गर्मियों में मसूरी गया था। वहाँ मिस लवग से उसकी मुलाकात हुई। और फिर वह उससे प्रभावित हो गया।

'सच ?'—इंदिरा ने चौंककर पूछा—'आपसे कहा उसने ?'

'जी, मैं तो उनकी प्रजा हूँ' भगवती ने हँसकर कहा—मुझे बाप मानते हैं, बेटा भी बाप की तरह ही स्नेह से रखता है। वह भी कभी मुझे गरीब कहकर दुतकारता नहीं। मैं पढ़ा लिखा हूँ इसपर गर्व करना शायद मेरी मा को इतना नहीं आता, जितना उन दोनों को आता है। राजेंद्रसिंह ने ही बताया। मंसूरी में लवंग के साथ उन्होंने कई दिन, कई रातें काटीं ?

'अच्छा ?'—इंदिरा ने विस्मित होकर कहा। उसे इस कथा में आनंद आया।

भगवती ने फिर कहा— राजेंद्रसिंह ने अपने पिता से यह बात मेरे द्वारा कहलवाई। पिता ने सुना और मुझसे लवंग के बारे में पूछा—मैंने कह दिया...

इंदिरा झुककर बैठ गई। वह गौर से सुनना चाहती थी। भगवती कहता गया—लड़की सुंदर है। कुँवर साहब को पसंद है। तब ज़मींदार साहब ने पूछा—चाल-चलन कैसा है लड़की का ? मैंने कह दिया—अच्छा है। उन्होंने पूछा—

घमंड तो नहीं करती ? देशी ढंग से रह सकेगी ? मैंने उत्तर दिया—इतना तो मैं नहीं जानता। हाँ, कुँवर साहब चाहेंगे, तो सब ठीक ही होगा।

दोनों ठठाकर हँस पड़े। इंदिरा ने कहा—कमाल कर दिया आपने। तब तो हम आपके गाँव में किसी तरह भी जायेंगे ही। क्यों, शादी तो यहीं होगी ?

'नहीं, जाना तो पड़ेगा ही। ज़मींदार साहब बूढ़े हैं। गठिया का ज़ोर है। चल-फिर नहीं सकते। वह गाँव में ही विवाह करने देंगे। अगर विवाह करना हो तो लड़कीवालों को वहीं जाना होगा, क्योंकि वे कभी और कोई बात स्वीकार नहीं करेंगे। उनका यह विचार है कि वे एक पत्थर हैं, जिसके नीचे रियासत एक कागज़ों की गड्डी की तरह दबी पड़ी है और उनके हटते ही सब कागज़ इधर-उधर उड़ जायेंगे।'

इंदिरा सुनकर हँस पड़ी। उसने कहा—देखिए न ? आप बहुत अच्छी बातें करते हैं। आप बहुत अच्छी बातें करते हैं।

भगवती झेंप गया। उसने सिर झुकाकर कहा—यह तो आपकी महानता है। मैं किस योग्य हूँ ?

भगवती जानता है कि अपने मुँह से अपनी हीनता प्रकट करने में अपना कोई अपमान नहीं होता। इन बड़े आदमियों से अधिक नहीं मिलना चाहिए।

वह अपने कमरे से बहुत कम निकलता। कामेश्वर और इंदिरा से जो वह अपने स्वाभाविक रूप से मिल गया था, उसको देखकर इंदिरा स्वयं अकेले में विस्मय करती। इस लड़के के बारे में विभिन्न मत थे। सब उसे किताबी कीड़ा कहते थे। सब उसे अभिमानी समझते थे। भगवती अपने अभाव से अपने आप संत्रस्त था। इंदिरा से उसका संसर्ग एक नवीन भावना नहीं। कामेश्वर मित्र है, वह मित्र की बहिन है, जो कामेश्वर है, वही इंदिरा है। इन्होंने धन होते हुए स्नेह दिया है, भगवती ने दरिद्रता का पर्दा फाड़कर उनसे संबंध स्थापित किया है। किंतु यह एकांत का स्नेह है। वह कामेश्वर के घर कभी-कभी बुलाने पर चला जाता, अन्यथा कामेश्वर ही उसके कमरे में अधिकतर आता और अपने जीवन के उतार चढ़ावों को उसके सामने सुख और दुःख की अटूट भावना के साथ सुनाया करता।

भगवती सोचता। कामेश्वर का जीवन हलचल थी। वह एक अद्भुत व्यक्ति था। उसकी भावनाओं के क्षेत्र में सम और असम का कोई भेद न था। जो था वह केवल उद्वेग की अधीरता थी।

इंदिरा ने कुछ देर चुप रहकर कहा—नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। लवंग के भाई कभी भी लड़केवालों के घर जाना पसंद नहीं करेंगे। पैसे की इन्हें भी तो कोई कमी नहीं। ज़मींदार साहब को लड़के के विवाह में आना ही पड़ेगा। ऐसे मौके बार-बार तो आते नहीं। ज़मींदार साहब का क्या ? दो डाक्टर साथ में आ जायेंगे। क्यों मैंने ठीक कहा ?

'हो सकता है'—भगवती ने सोचते हुए कहा—मैं लड़केवालों को जानता हूँ, आप लड़कीवालों को ज़्यादा जानती हैं। फिर मैं लवंग के बारे में कुछ कैसे कह सकता हूँ ?

'तब तो लवंग का विवाह यहीं होगा ?' इंदिरा ने हँसते हुए कहा—'यह भी इस साल की एक ही रौनक रहेगी। तुम चलोगे न ? राजेंद्र के साथ आना। ठीक है ?'

भगवती ने कहा—मैं आप लोगों में कहाँ……

इंदिरा ने कहने नहीं दिया। वह बोली—बस, यही तो मुझे अच्छा नहीं लगता। बात-बात में आप अड़चन डालते हैं। आप इतनी inferiority complex (हीनत्व की भावना) से क्यों suffer (दुःख प्राप्त) करते हैं ?

भगवती कुछ उत्तर नहीं दे सका। उसने अपने हृदय के स्वच्छ पानी में एक कंकड़ के गिरने की आवाज़ को सुना और फिर किनारों को छूने के लिए लहरों के छल्ले गोल-गोल चक्कर काटकर फैलने लगे। इंदिरा कुछ देर उसकी ओर निस्संकोच दृष्टि से अपलक देखती रही। भगवती ने भी देखा और उसमें कोई सिहरन नहीं हुई, क्योंकि उस दृष्टि में लाज नहीं, तृष्णा नहीं, केवल स्नेह था, ममता थी। एक निर्दोष उज्ज्वलता जो प्रतिबिंबित होकर शुभ्र प्रकाश के समान भगवती के अंतःस्थल में उतर गई।

इंदिरा ने कहा—आपको याद है, मैंने आपको आज बुलाया था ?

भगवती गंभीर हो गया। उसने अपनी ढाल फिर उठा ली। यह जो एक मणि दिखा था वह कथाओं के सर्प का था। उसे ढँकने के कारण ही सर्प ने अपना फन पटका था, अपना विष उगल देने को। उसने स्वीकार करते हुए सिर हिलाया।

इंदिरा ने फिर कहा—यदि मैं आपके यहाँ आ सकती, तो स्वयं होस्टल के

कमरे में आ धमकती, लेकिन उस ओर अपनी असमर्थता के कारण ही मैंने आपको बुलवाने की धृष्टता को अपना नारीत्व का अधिकार समझ लिया है।

भगवती ने मन ही मन कहा—अच्छा हुआ न आई। वर्ना दस आदमी दस नाम धरते। फिर उसने इंदिरा के बे-पर्दा जीवन को देखा। कितना विरोध था। फिर भी वह स्त्री थी। पुरुष स्त्रियों की फौज में निर्भय खड़ा हो सकता है, स्त्री पाँच फौजियों में सुरक्षित नहीं होती।

इंदिरा ने कहा—अब मैं अपनी बात कहूँगी। आपको कुछ अवकाश मिलता है ?

'जी हाँ, कहिए'—भगवती ने कहा। वह समझ नहीं सका।

'कहना यही है कि अवकाश में आप मुझे अँगरेजी पढ़ा दिया करिए।'—इंदिरा ने कहा और लजा गई, जैसे वह कोई विवाह का प्रस्ताव था।

'पढ़ा दूँगा।'- भगवती ने उपेक्षा से कहा—लेकिन पढ़ा सकूँगा या नहीं यह तो···खैर किताब खुलने पर इसकी भी जाँच हो जायेगी। वैसे तो जो मेरी पढ़ी हुई पुस्तकें होंगी पढ़ा दूँगा। इसके लिए इतना सकोच !! कामेश्वर से कह दिया होता। वही कह देता।

'मैं भैया से कह चुकी हूँ। उन्होंने कहा—तुम भी तो बोलती हो उनसे। तुम्हीं जो कह देना। इसीसे मैंने कहा ·····'

कहकर फिर जीभ को खींच लिया। दाँतों को भी होंठों के भीतर। समझ में नहीं आया, रुपयों की बात कैसे करे ? भगवती ने सहूलियत के लिए बात स्वीकार की है या मित्रता के लिए, यह वह निर्णय नहीं कर सकी। कहीं भगवती बुरा न मान जाये, लेकिन अगर नहीं कहा जाये तो कहीं वह पशोपेश में न पड़ जाये।

'आपका समय नष्ट तो न होगा ?' इंदिरा ने जाँच की।

'जी नहीं, शाम को ही आ सकूँगा। लगभग छः बजे से सात तक। जब तक कोई खास काम नहीं पड़ेगा, निस्संदेह आऊँगा। शाम को कोई विशेष कार्य नहीं रहता। अकेला ही घूमने जाने का दोष है। कितने दिन पढ़ेंगी ?'

'यही साल भर तक',—इंदिरा ने उत्तर दिया।

'साल भर ? भगवती ने प्रश्नवाचक चिह्न की मुद्रा से देखा।

'आपने कभी शायद अभी तक कोई ट्यूशन नहीं की ?'—इंदिरा पूछ बैठी।

ट्यूशन ! शब्द ऐसे चुभा जैसे घोड़े की नाल में कील ठुकती है कि लोहा सदा के लिए चुभा रह जाये। वह सिहर उठा। इंदिरा ने फिर पूछा—आप क्या ठीक समझेंगे ? मैं वही देने का प्रयत्न करूँगी।

भगवती का मुख एकदम काला हो गया। जैसे उसका अपमान सीमा पार कर गया था। उसने कठोरता से कहा—मैं आपसे कुछ भी नहीं लूँगा। यदि स्वीकार हो तो पढ़िए।

इंदिरा भौंचक रह गई। उसने आँखें फाड़कर देखा। पूछा – क्यों ?

भगवती ने कहा—मिस इंदिरा ! आप लोगों में धन ही सबकी माप है। मित्रता कुछ नहीं ?

इंदिरा सँभल गई। उसने कहा —आप तो बुरा मान गये। लेकिन आपने ही तो कहा था कि धन को आप बहुत महत्त्व देते हैं।

भगवती को दूसरा चाँटा लगा। तब यह लड़की उसकी गरीबी को दूर करना चाहती है। उसे लोलुप समझती है ? भगवती का मुख घृणा से विकृत हो गया। उसने संयम त्यागकर कहा—यदि आपको अपने धन का इतना अभिमान है, तो राह पर आपको अनेक भिखारी मिलेंगे। क्या आपको अपमान करने के लिए और कोई नहीं मिला ? मैं नहीं जानता था कि धन का संसर्ग मनुष्य से उसकी वास्तविकता को सदा के लिए छीन लेता है। यदि आप समझती हों कि मुझसे मिलकर आप मुझपर कोई कृपा कर रही हैं तो आप इस बोलचाल को तोड़कर ही मुझपर अधिक कृपा कर सकेंगीं। मुझे क्या मालूम था कि कामेश्वर भी आपके इस कार्य में सहायक था। अन्यथा मैं यहाँ कभी भी न आता। आप मुझे रुपया देकर साबित करना चाहती हैं कि आप न होतीं तो मैं कभी भी नहीं पढ़ पाता। यह आपकी भूल है मिस इंदिरा, एक दम भूल है।

इंदिरा सुनती रही। भगवती क्रोध में अधिक अच्छा लगता है। इसी से मन ने कहा—तनिक और देख। जब वह फूत्कार करके चुप हो गया, इंदिरा ने अप्रभावित रूप से कहा—तो आप मुफ़्त पढ़ाते हैं, पढ़ाइए। मुझे इसमें भी कोई बाधा नहीं। लेकिन इस कृपा का क्या परिणाम होगा, जानते हैं ? लोग मुझे बदनाम करेंगे। ममी को तो मैं समझा लूँगी, लेकिन आप लोगों का मुँह रोक सकेंगे ? कहा तो

आपने बहुत कुछ। मैं आपका अपमान कर रही हूँ, मैंने भैया को मिलाकर षड्यंत्र रचा है और भी न जाने क्या? एक बात और कहूँ?

भगवती ने सिर झुका लिया, जैसे वह लज्जित था। इंदिरा ने कहा—समर के साथ कोई भी लड़की रहे, कोई संदेह नहीं कर सकता, लेकिन आप तो वैसे नहीं! आपमें कुछ है, जो स्त्रियों को सहज ही अच्छा लग सकता है।

भगवती घबराकर खड़ा हो गया। उसका कंठ अवरुद्ध हो गया। वह कमरे में घूमने लगा। हवा घुटने लगी। भगवती का मन पत्थर के नीचे दबने लगा। यह क्या हुआ? तीर चला, लेकिन लगा अपने ही को। वाह रे तीरंदाज़! जिन्होंने उसे स्नेह दिया उन्हीं पर उसने इतना बड़ा आक्षेप लगाने में तनिक भी हिचकिचाहट नहीं की? भगवती विक्षुब्ध हो गया। लोहे के दाँतों ने उसके अभिमान के हाथों पर अपने आपको गचक दिया। इंदिरा का प्रश्न अत्यंत कठोर था। उसने विश्वास के साथ भगवती के सामर्थ्य और शक्ति को उसी के सामने, अपनी निर्बलता के बल पर खोल दिया था। यह कैसी पराजय है? अपनी विजय की पत्तियाँ देखकर मुस्कराये कि पेड़ की जड़ में लगे पराजय के घुन को देख सिर धुने? कुछ भी समझ में नहीं आया। इंदिरा ने मुड़कर स्नेह से कहा—भगवती!

भगवती ने देखा। उसके चेहरे पर कोई तन्मयता नहीं, विश्वास नहीं। निष्प्रभ मलिन भावना का अव्यक्त हाहाकार। यह संबोधन प्यार का एक बंधन बन गया, एक स्नेह की थपथपाहट बन गया। जैसे तुम्हारा कोई दोष नहीं। किंतु इस प्रकार उतावले क्यों हो गये? तुम समझते हो, तुम्हारा अपमान करने के लिए ही हमने तुम्हें बुलाया है? और यह निरभिमान संबोधन! जिसमें मान का झूठा आवरण फाड़ दिया गया। मिस्टर-विस्टर सब पीछे छूट गया। मनुष्यता का यह संबंध तूफ़ानमेल की तरह धड़धड़ाता हुआ आगे बढ़ गया। भगवती लाचार हो गया, किंतु मिट्टी खुद चुकी थी, गड्ढे को भरने पर भी उसमें वह समतल नहीं आ सकता था। इंदिरा मुस्करा रही थी। उसने फिर कहा—नाराज़ हो गये?

भगवती उसके पास आ गया। उसने कहा—मुझे क्षमा करो। मुझसे भूल हो गई।

'कैसी भूल?' इंदिरा ने हठात् पूछा। 'गुबार तो भूल नहीं होता। कहो कि तुमने अपने ही विचारों में पड़े रहने के कारण मुझे ग़लत समझा। अब तो कोई

द्वेष नहीं ? क्या तुम ऐसा सोच सकते हो कि भैया और मैं कभी भी तुम्हारा अपमान कर सकते हैं ?

भगवती ने बालक की भाँति कहा--नहीं। मैंने गलत सोचा।

इंदिरा ने उसका हाथ पकड़कर कहा--भैया तुमसे स्नेह करते हैं। मैं जानती हूँ, वह अपना जीवन Candle (मोमबत्ती) की तरह जला रहे हैं। मोम को पिघलने के बाद फिर ढालते हैं, फिर जलाते हैं। किंतु सबमें केवल आग ही नहीं, एक पिघलनेवाली वस्तु भी होती है। क्या तुम उसी का इतना तिरस्कार कर सकोगे ? माना कि तुम धनी नहीं हो, भैया के पास काफ़ी धन है, किंतु क्या इसीसे मनुष्यता का जो क्षेत्र है उसमें वह किसी और को घुसने नहीं देंगे ? क्या तुम उनके धनी होने के अपराध के कारण उन्हें कभी भी मनुष्य के, अपने जैसे मनुष्य के रूप में स्वीकार नहीं कर सकोगे ?

इंदिरा 'तुम' पर आ गई थी। दूसरा बंधन टूट गया था। भगवती ने सोचा। फिर भी दिमाग़ में एक बात आई कि वह और कामेश्वर कभी एक धरातल पर नहीं चल सकते। संसार की दृष्टि में कामेश्वर का स्नेह दया है, भगवती का स्नेह खुशामद। उसने फिर भी इंदिरा से उस समय यह कहना उचित न समझा। वह उसी के सोफ़ा पर बैठ गया। इंदिरा खिसकी नहीं। दोनों निर्विकार से बैठे रहे। भगवती ने कहा—लेकिन एक बात कहूँगा। बुरा तो न मानोगी ?

'नहीं।' इंदिरा का स्पष्ट स्वर गूँज उठा—'बुरा मानूँगी तो क्या वह मेरा अधिकार नहीं होगा ?'

भगवती ने उत्तर दिया—मैं तुम्हें पढ़ाने नहीं आऊँगा।

इंदिरा चौंक उठी। उसने उत्तेजित स्वर से कहा—क्यों ? क्यों नहीं आओगे ?

भगवती के निरपेक्ष शब्द उसके कानों में उतर गये--यदि मैं तुमसे रुपया लूँगा, तो मैं तुमसे समानता का व्यवहार करने की परिस्थिति में नहीं रहूँगा। तुम कहोगी, यह मेरी मूर्खता है। किंतु मैं जानता हूँ, फिर संसार मुझे तुम्हारा नौकर कहेगा और कुछ दिन बाद तुम भी अपने आपको उस प्रलोभन में गिरफ़्तार पाओगी।

'तुम ऐसा अनुभव करते हो ?'—इंदिरा ने अनियमित उत्कंठा से पूछा।

'मैं गलत हो सकता हूँ, किंतु ऐसी मेरी भावना है। मैं नहीं चाहता, तुम मुझे ऐसी बात करने पर बाध्य करो जिससे मुझे हीनता का आभास हो, चाहे स्नेह के ही नाते सही।'

भगवती चुप हो गया। इंदिरा का हृदय क्रोध से भीतर ही भीतर जल उठा। ऊषा क्या कहेगी ? उसने भगवती का हाथ पकड़ कर कहा—तुम मेरा अपमान कर रहे हो।

भगवती ने शून्य दृष्टि से छत की ओर देखते हुए कहा—भगवती स्नेह का प्रतिदान न दे सके, भले ही ऐसा हो, क्योंकि वह असमर्थ है, किंतु स्नेह का अपमान करने की स्पर्धा करेगा, ऐसा वह पशु नहीं है। यदि तुम्हारे मन की बात न मानने में मेरा आनंद है, तो क्या तुम वह भीख मुझे नहीं दे सकतीं ? दो, यदि तुम अपने भैया की भाँति मुझसे स्नेह करती हो, तो दो। यह मेरी तुम्हारी बात है। इसमें क्या मुझे कुछ माँगने का कोई अधिकार नहीं है ?

इंदिरा लाचार हो गई। उसने भगवती का हाथ छोड़ दिया। भगवती ने फिर पूछा—नाराज़ हो ?

इंदिरा ने कहा—नहीं। एकबार नीचे का होंठ फड़का जैसे वह रो देगी और फिर वह हँस दी। भगवती ने निरवधि उपेक्षा से देखा।

तलवार दुधारी थी। यह भी काटा, वह भी, और फिर जोड़ दिया। भगवती देखता रहा। इंदिरा निस्तब्ध-सी कुछ सोचती रही।

कमरे में एक क्लांत नीरवता घूमने लगी, जैसे आकाश में एक बादल का भूला हुआ टुकड़ा घूमता है, भटकता है, सरकता है……

---

[१४]

खाली जाल

यद्यपि कामेश्वर ने कहा कि रहमान सनकी है, उसके यहाँ जाकर भी क्या होगा। वीरेश्वर ने उसकी बात को सुना अनसुना कर दिया। जिस समय वे रहमान के यहाँ पहुँचे, उन्होंने देखा, रहमान मेज पर बैठा, कुर्सी पर पैर रखे, सर झुकाये कुछ पढ़ रहा था। एक खाट एक कोने में बिछी थी, जिसपर एक सत्याग्रहियों का सा बिस्तर बिछा था। एक मेज़ थी, जिसपर कोई मेजपोश नहीं था। कुछ किताबें मेज पर ही बिखरी हुईं थीं। एक सुराही बेंच के नोचे कोने में रखो थी और ऊपर पुराना जूता और एक रंग-उड़ा ट्रंक रखा था। दीवाल के ताकों में धरी थीं — पैटस्लोन की 'रशा विदआउट इल्यूजंस', माइखेल शोलोखोव को 'एंड क्वायट फ़्लोज़ दी डान', मारिस हिंडस की 'ब्रोकन स्वायल', 'अडर मास्को स्काइज', नेहरू की 'व्हिदर इंडिया' और लेनिन के 'सेलेक्टेड वर्क्स', लायन फ्यूकवेंगर की······

इतनी देर बाद रहमान ने कहा—बैठो भाई, तुम लोगों के लिए जगह तो नहीं है ..

वीरेश्वर को यह आदत नापसंद है। क्योंकि अगर रहमान को अपनी कमी महसूस हुई, तो उसने अपनी कमी छिपाने में हमारे भरे-पूरेपन को नोंच लिया है। वे बैठ गये।

'ये हैं हमारे दोस्त कामेश्वर···कामरेड रहमान, आपसे मिलकर बड़ी खुशी हुई...'

वीरेश्वर कहने लगा—कामरेड रहमान दो बार जेल हो आये हैं और आये दिन इन्हें अपनी ज़िंदगी का खतरा है। मगर कामरेड, तुम्हें अपनी ज़िंदगी में कुछ मज़ा आता है या नहीं?

'ज़िंदगी' कामरेड की आँखें चमक उठीं। वह झुका और उसकी पीठ की हड्डियों में एक चटक-सी मच उठी। उसने निराशा से इधर-उधर देखा और वह

मुस्कराया, 'मज़ा ज़िंदगी में कहाँ से आया? और वैसे तो क़ातिल के हर वार में मज़ा है।' वह एक सूखी हँसी हँसा। जिस हँसी की तरावट में अंडमन की हजारों आहें तड़प न उठें, वह समझता है, वह उससे कम हँसता नहीं। कामेश्वर के मन में आया, वह हँस दे। क्या फ़ायदा इन बातों से। इनके बेवकूफ़ बनने से किसान मजदूरों को क्या फ़ायदा? फिर उसने अपने को संतोष दिया और वह मन-ही-मन कहने लगा कि यह लोग गरीब हैं, इनके पास कुछ है नहीं। पढ़-लिखकर कुछ संभल गये हैं। और क्योंकि अपने आपको व्यक्तिरूप में बढ़ा नहीं सकते, समाज की हाय-हाय करते हैं। अमीरों से जलते हैं और हुकूमत को जुल्म कहते हैं। सब बराबर हो कैसे सकते हैं?

कामेश्वर सोच सकता है कि ये समाज के सामने एक भिखमंगे कोढ़ी को ला बैठाते हैं और ईश्वर के नाम पर वह कोढ़ दिखा-दिखाकर भीख माँगते हैं।

कामरेड रहमान सोच सकता है कि यही हैं वे लोग जिन्होंने अपनी ऊपर की सफ़ाई के लिए समाज के एक बहुत बड़े हिस्से को कोढ़ी बना रखा है। वह कोढ़ जो इनके मन की असलियत है, ये उसे देखना नहीं चाहते। न ये उसे दवाई देते हैं, न देखना ही चाहते हैं। न उसके लिए कोढ़ीखाना बना सके हैं। मगर उसे जानते हुए भी सोचना नहीं चाहते। आज की दुनिया नफ़रत पर खड़ी है और प्रेम के हल्के झकोरे महलों में आग-सी भर देते हैं। लैला-मँजनू के अफ़सानों से इनकी ज़िंदगी एक झूँठा सुलगन में खाक हो रही है।

वीरेश्वर कुछ देर तक चुप रहा। फिर सिगरेट बढ़ाकर रहमान से बोला—कामरेड सिगरेट पीते हो?

'हाँ, हाँ,' उसने एक ले ली।

'लेकिन कभी पीते नहीं देखा।'

'हाँ, कोई पिला दे तो। वर्ना इतने पैसे कहाँ हैं?'

कामेश्वर कोफ़्त से भर गया। गरीबी का महत्त्व ताने कसना तो नहीं है?

रहमान ने हाथ की किताब मेज पर रख दी। वीरेश्वर ने देखा, रेमौन सैंडर की 'सात खूनी इतवार' थी। कामेश्वर ने सिगरेट जलाई। उसी से वीरेश्वर की ओर फिर बुझाकर दीयासलाई रहमान को तरफ बढ़ा दी।

'ओह हो' रहमान ठठाकर एकदम हँसा, 'एक सींक से तीन नहीं जलानी चाहिए। बोरज़ुआ मोरैलिटी !'

'माफ़ कीजिए, ये उसे मानते हैं', वीरेश्वर ने बीच में रोककर कहा। तीनों सिगरेट पीने लगे।

'तो आप'—रहमान ने कामेश्वर से कहा—'पी० सी० एस० में बैठ आये? वीरसिंह ने कहा था मुझसे। उसी ने कहा था कि विद्यार्थी-संघ में भी आपसे बड़ी मदद मिलेगी।'

वीरेश्वर को अचानक सब याद आ गया।

'मदद करने को मैं तैयार हूँ', कामेश्वर कह रहा था—'लेकिन पुलिस रिपोर्ट भेजती है बाद में।'

रहमान फिर हँसा। कामेश्वर जो बंजर का फूल बनता था उसे जैसे अचानक और अपने आप एक लू का झोंका लगा। वह झगर थी, जिससे केले के हरे-भरे पेड़ों में पानी देनेवाला माली साँझ को देखता है कि गर्मी से सब मुरझा गये हैं। यह झगर आज कोने-कोने में फैली हुई है।

होस्टल-मेस के बरतनों के मँजने की आवाज़ खिड़की से आ रही थी। एक छाया दरवाज़े पर दीख पड़ी।

'हलो'—रहमान ने चौंककर कहा—'वीरसिंह, अरे भाई आओ। तुमसे तो मुझे बहुत ज़रूरी काम था। तुम तो लड़कियों से फ़ुर्सत ही नहीं पाते। तुम्हारे दिल की चोटों से तो मैं परेशान आ गया।'

'बस-बस'—वीरसिंह काटकर बोला—'बहुत मत उछलो। अच्छा आप दोनों भी? तब तो सब-के-सब बदमाश यहीं हैं।'

चारों ठठाकर हँस पड़े।

घंटा बजने लगा। खुले किवाड़ों की राह उन्होंने देखा, कालेज के एक कमरे में प्रोफ़ेसर मिसरा ने एक लड़की को रोक लिया और बराम्दे में लाकर बातें करने लगा। ऊपर गेलरी में खिड़की के पास लड़कियाँ चुहल कर रहीं थीं। रहमान को यह अच्छा लग रहा था, मगर वह उनसे नफ़रत करता था और कामेश्वर को इन सबसे न नफ़रत थी, मगर उसे वह बुरा लगता था। एक मध्यवर्ग का मांस था, दूसरा

ढांचा। इसी समय एक गीत साफ़-साफ़ सुनाई दिया। गानेवाला उसे मार्चिंग गीत बनाकर गा रहा था—

मेरे गीतों को सुन
ज़र्रे ज़र्रे में हो
इन्क़लाब इन्क़लाब !
ख़ूनी शोलों से
आंचल पै
लिख दूँ तेरे
इन्क़लाब इन्क़लाब !

'कामरेड सुंदरम'—रहमान चीख उठा—'आओ भाई आओ।'

'ठहरो, इस वक्त फुर्सत नहीं है।'

'अच्छा !'

कामेश्वर ने सोचा, यही कामरेड लोगों की तमीज़ थी। लेकिन फिरंगी ऐसी बात कहता, तो कामेश्वर शायद उसे वक्त की कद्र मानता।

'घड़ी है, आप लोगों के पास ?'—रहमान ने पूछा।

'मेरे पास नहीं है।'

कामेश्वर के पास थी, मगर उसने जेब तक हाथ ले जाना फ़िज़ूल समझा। वीरेश्वर ने कहा—दूसरा घटा ! ओह सारी। एक बजे के क़रीब, क्या दो बजनेवाले हैं ?

'तुम पौने तीन तक बैठे रहना वीरसिंह। कामरेड ऊषा और कामरेड मुमताज ने आने को कहा है।'

'यहां ?'—वीरेश्वर चौंक पड़ा।

'नहीं'—वीरसिंह ने कहा—'हम लोग लाइब्रेरी के ऐंटीरूम में मिलते हैं।'

'हां, फिर ?'—वीरेश्वर ने जोड़ा।

'आज तमाम कांस्टिट्यूशन पर नजर डालनी है, कालेज के। तब लड़कियों के बारे में रिपोर्ट कामरेड मुमताज देंगी। इसके बाद सुंदरम से लड़कों के बारे में पूछना है। ढाई सौ मेंबर बने हैं। अबकी कांफ्रेंस में बाहर से किसी को बुलाने का इरादा है ? जाने आये या न आये कोई।'

कामेश्वर बाहर देख रहा था। भगवती दरवाज़े के सामने से गुजरा। उसके

हाथ में बड़ी-बड़ी किताबें थीं और कुछ परेशान-सा बड़बड़ाता हुआ जा रहा था, जैसे हाल की पढ़ी हुई चीज़ दुहरा रहा हो।

'इसने मारा फ़र्स्ट क्लास—'कामेश्वर कह उठा। मगर किसी ने जवाब नहीं दिया। फ्रांस की हार हो गई थी।

बैठे-बैठे काफ़ी देर हो गई। वीरेश्वर ही अधिकांश इधर-उधर की बातें करता रहा। तब सुंदरम चुपचाप घुस आया। उसे देखकर रहमान ने कहा—मुझे जरा काम है मिस्टर वीरेश्वर!

न वीरेश्वर समझा, न कामेश्वर।

'हाँ, मुझे ज़रा काम है। इनसे कुछ खास बातें करनी हैं।'

'तो हम चले जाते हैं।'

'हाँ, ज़रा तक़लीफ़ तो होगी ही। भाई लाचार हूँ। माफ़ करना।'

दोनों उठकर दरवाज़े के बाहर आ गये। भीतर से आवाज़ आ रही थी— भाई वीरेश्वर, बुरा न मानना, देखो, फिर कभी फुर्सत में आ जाना। अच्छा?

दोनों ने एक दूसरे की तरफ़ देखा, झेंपे, शरमाये और ठठाकर हँस पड़े। प्रो० मिसरा अब भी लूसी को लिये खड़ा था।

'क्या बातें करता है यह इतनी-इतनी देर से?'

'अरे, इसे तुम क्या जानो? यूरोप से इस फ़न में उस्ताद होकर लौटा है।'

'सुनते हैं, हिंदी बोलना भी भूल गया है।'

'हाँ हाँ, भगवती को शुरू में डाँट दिया था इसने। लेकिन फिर मैंने आड़े हाथों लिया।'

'देखो न हैरान कर रखा है लड़की को। अच्छा एक काम करो।'

उसने आँखों से पूछा—'क्या?'

'तुम उधर से जाओ, मैं इधर से। दो-तीन बार जो गुज़रे कि बस बन गया काम।'

'उसने लूसी को छोड़ा कि मैं घेर लूँगा फिर।'

स्कीम शुरू हुई।

इधर वीरसिंह कह रहा था—'आज कालेज के लड़कों में बेहद बुज़दिली है। कोई भी काम करना पहाड़ हटाना है और धक्कों से वह मीनारों को नहीं गिरा

सकता, वह चीतों की तरह गरजना भूल गया है। उसकी हुंकारों से सागर में तूफान नहीं उठ सकता। मगर वह सिर्फ़ एक काम जानता है—अँगरेज़ी पढ़ना। वह नहीं जानता कि साँझ की धूल में किसान कैसे थककर चूर हुए लौटते हैं। वह जवान है, उसके सिर पर भारत की ज़िम्मेदारी है। ग़दर की कराह अब भी हिमालय में गूँज रही है। उस एके की याद करके अब महासागर विक्षुब्ध हो जाता है और आज की फूट देखकर चट्टानों पर सिर पीटने लगता है। अकेले हिंदुस्तानी के मुँह में चिनगारी चाहिए, वह इन्कलाब की चिनगारी जिससे कातिल का घर धू-धू करके जल उठे। मेरी कौम मुर्दा नहीं है, मेरा मुल्क ज़िंदा है, हिंदुस्तान जिंदा है……'

दूर कहीं हँसिये हथौड़े से रोशनी निकलकर जैसे इस मौत के मुँह में पड़े कीड़े में जान फूँक रही थी। कमरा धुँधला-सा लग रहा था। जाड़े आ रहे थे, लेकिन अभी कमीज़ सिर्फ़ एक कोट झेल सकती थी और छाया में पसीना नहीं आता था। तीनों चुपचाप सर झुकाये कुछ सोच रहे थे।

भगवती और ऊषा विज्ञान-विभाग से लौट रहे थे। भगवती मुस्करा रहा था। ऊषा हँस रही थी। उसने कहा— आप हमारा विद्यार्थी-संघ पसंद नहीं करते?

'वह पैसेवालों की बातें हैं मिस ऊषा, हमारी उसमें क्या पूछ है?'

'वाह, यह आपने क्या कहा? आपके आने से तो हमें बड़ी मदद मिलेगी।' और उसने तिरछी नज़रों से भगवती को देखा। भगवती ने देखा भी और नहीं भी देखा। उसे अच्छा लगा। उसे न जाने क्यों यह लड़की अच्छी लगकर भी प्यार नहीं उपजा पाती। वह उससे ऐसे मिलता है जैसे किसी लड़के से। और उसमें इतना साहस नहीं होता कि वह उसे टाल जाया करे।

लीला ने क्लास में से देखा, कि भगवती के साथ ऊषा आ रही है, छि ऊषा भगवती को लिये आ रही है। एक लड़की एक लड़के के साथ आ रही है।

बगल के कौरिडोर से प्रो० मिसरा भुनभुनाता हुआ निकल गया। लेकिन वह जो दो सामने आ रहे हैं। वे दोनों ऐसे हैं जिन्हें प्यार नाम की गाँठ बाँध सकती है। लीला को एक जलन हुई। किंतु क्यों? उसे तो उस ग़रीब से कुछ भी संबंध रखना फ़ायदा नहीं पहुँचा सकता। फिर भी लीला की नारी एक प्यासी नारी थी। फैशन, दौलत और वासना में पली। भगवती उसे अच्छा लगता था। उसे वह थोड़ा-

थोड़ा चाहने लगी थी। चाहने का मतलब प्यार नहीं है, सिर्फ़ अच्छा लगता है, चुंबन नहीं, मुस्कान है।

उसने देखा, मुमताज के मिलने पर ऊषा भगवती को नमस्ते करके चली गई। फिर दो मिनट बाद भगवती नज़रों की ओट हो गया। लीला फिर प्रोफ़ेसर का लेक्चर सुनने लगी—'सौनेट दो तरह के होते हैं, एक एलिजाबेथन—यानी···'

प्रो० मिसरा उस समय किसी लड़के से कह रहा था—आप पढ़ा कीजिए। कालेज में आप पढ़ने आते हैं और यही खास बात आप अक्सर भूल जाते हैं। सोचिए, आपके मा-बाप कितनी मेहनत करते हैं···'

लड़का टोक उठा—हमारे पिता तो ज़मींदार हैं—

प्रो० बिगड़ उठा—तो फिर स्टूडेंट फेडरेशन में शामिल हो जाइए, क्योंकि उसकी पहली माँग यही है कि इम्तहान के परचे लड़कों को एक महीने पहले से बता दिये जायें, क्योंकि लड़कों को पढ़ने में बड़ी तकलीफ़ होती है······

हिटलर से चैंबरलेन कह रहा था—'हम आज़ादी के लिए लड़ते हैं, तुम गुलामी फैलाते हो······'

———

[१५]

रेखा चित्रों का टुटपुँजियापन

समर न व्याकुल है, न उन्मन। वह उदास भी नहीं है। केवल निर्बलता के आवरण में छिपा हड्डियों का एक ढेर है। उससे किसी भी आलोक का प्रतिबिंब नहीं झलकता।

जब रात हो गई, स्वभाववश ही समर अपनी डायरी लिखने लगा—

'जीवन में अनेक क्षण आते हैं। उनका प्रत्येक में अपना-अपना महत्त्व है। यह जीवन एक उपन्यास नहीं, वास्तव में छोटी-छोटी कहानियों का समुदाय है।

ठहरकर सोचनेवाला जीवन अपनी कायरता को भले ही अपने अज्ञान के अन्धकार में ढँकने का प्रयत्न कर ले, किंतु गति की स्वच्छंदता उसके लिए रुकी नहीं रह सकती और इसी लिये अतीत का समस्त तीव्र प्रकाश धुंधला होकर मिटता चला जा रहा है और आने वाला प्रत्येक पल अपने नवीन होने के बचपन मे, चट्टान की तरह सिर उठाते हुए, पुकार-पुकारकर कहता हैं—'मैं भी हूं,' 'मैं भी हूँ' इसे सुनकर मनुष्य के समन्वय की भावना बोल उठती है—

राह ही कितनी है जो मंज़िल से समझौता करूँ ?

आ ही जायेगी अगर पाँवों में मेरे ज़ोर है। तो क्या समन्वय वास्तव में 'संभवामि युगे युगे' का-सा विद्रोह है ?

समर ने फिर लिखा –

शराब के नशे में आदमी कहता है—मैं अपने काम को पाप नहीं समझता। जो हो गया सो हो गया। पाप और पुण्य के इस विश्लेषण को मैं बेकारी का साज़ कहता हूँ, जैसे प्राचीन काल में राजा अथवा सामत स्त्रियों के पैरों में पायल बाँधकर उनका नृत्य देखकर मस्त होने की प्रतारणा में सिवाय अपनी प्रजा को हानि के कठिनता ही से कुछ करते थे। यही कामेश्वर है।

वीरेश्वर भिन्न है। संबंध रखनेवाली समय की कड़ी को तोड़ कर मनुष्य अँधकार के अतिरिक्त कभी भी कुछ नहीं पा सका। उसका अज्ञान ही उसकी उत्सुकता का आधार है। किंतु क्या उत्सुकता ही जीवन का लोभ अथवा अतृप्ति की पूर्त्तिसाधना की अभिलाषा नहीं है?

कला को देखकर मुझे स्वयं कौतूहल होता है। परिचय की दृष्टि पहला प्रमाण है। जब 'मुझे तुझे' की आवृत्ति का दोष एक राह चलती जिज्ञासा मात्र रह जाता है। मनुष्य में एक स्वार्थ जो रहता है कि वह अपने व्यक्तित्व का किसी में पूर्ण समन्वय कर सके। किसमें? पूछता है मनुष्य का इतिहास। और बोलती है पराजय--अंधकार! अंधकार!! किंतु अंधकार में खोजनेवाले व्यक्ति! जीवन प्रकाश चाहता है, क्योंकि प्रकाश से कर्म की प्रेरणा मिलती है। अंधकार में उसका अहं भी डूब जाता है।

कामेश्वर और भगवती का यह मिलन सब में आश्चर्य पैदा करता है। किंतु ऐसा कुछ नहीं। पहला अपने सुखों को त्याग के दंभ में लपेट चुका है जैसे कह रहा हो—मैं सब जानता हूँ। और दूसरा जैसे—मैं जानना चाहता हूँ, मैं कुछ नहीं जानता। अज्ञान की सुबोध और सरल अभिव्यक्ति ही इस समाज में पाप की स्वीकृति है। किंतु भगवती अच्छा कहे जाने के मात्र लोभ से ही उस पथ को स्वीकार नहीं कर सकता, जहाँ छीन कर दान करने के महायज्ञ में नरमेध को देवताओं का प्रसाद कहकर रुक-कर सिर पीटने को मनुष्य 'स्वस्तिवाचन' कहता है।

दूर बारह के घंटे बज रहे हैं। उनके निनाद पर रात अलसा रही है। भगवती की यह आदर्शों की विवेचना उसकी परिस्थितियों का परिणाम है। यह तो मेरे सामने एक चित्र है, इसमें बुद्ध के तपस्तप्त शरीर के सामने सुजाता खड़ी है। प्रेम की खीर कहकर बुद्ध को उठानेवाले भूल गये थे कि बुद्ध की जीवित रहने की लालसा अथवा लोभ को वह एक करुण भीख मिली थी, जिसे संसार कभी भी नहीं भूल सकेगा।

रात का अँधेरा हवा में हिल रहा है। आकाश में अनंत तारे बिखरे पड़े हैं, जैसे रईस की लाश के पीछे कोई चमकते सिक्के बिखरा रहा हो, और जब भिखारी अंधकार उसे लूटकर जीवित रहने को संघर्ष करता है, वह रह-रहकर उस दयनीय तृष्णा पर हँस उठता है।

बनती बिगड़ती रेखाओं का यह उन्माद चित्र का गीत बनकर फैल रहा है। मैं

अभी भी जाग रहा हूँ, क्योंकि जो नींद मुझे जीवनशक्ति देने अभी तक नहीं आई,· दूसरे पक्ष में वह मृत्यु की छाया है, जो जागरण के वृक्ष के पैर पकड़कर सूर्य्यास्त के समय एक करवट से लंबी होकर सोने का विषादपूर्ण प्रयत्न करती है, किंतु सो नहीं पाती, क्योंकि वह मृत्यु की भाँति पूर्ण लय नहीं होती ; होती है पानी से धुँधले किये गये अक्षरों की पंक्तिमात्र, जिन्हें न पढ़ सकने के कारण प्रेमी अपने मन के संतोष के अनुसार अपना अर्थ लगा कर धोखा खा जाता है ।

विषमताओं से भरे समाज में हम न बुद्धि का दावा कर सकते हैं, न अपने अज्ञान के बल पर संतोष की साँस ही ले सकते हैं और हम चलते चले जा रहे हैं, चलते चले जा रहे है ..

गति के इस प्रवाह को देखकर मेरा हृदय रोता नहीं ; केवल इतना अवश्य होता है, कि मैं पीछे न रह जाऊँ । पीछे न रह जाऊँ । उतरते उन्माद का पिछला पहर जैसे दिन की रेखाओं में काँपता हुआ, कभी सिर पीछे नहीं पटकता ' बल्कि आगे बढ़कर सब कुछ पकड़ लेना चाहता है, मानों इस भूख का कहीं भी अंत न हो··· कहीं भी इसकी लघुता अथवा महत्ता की समाप्ति न हो···और पैर उठते रहें .. पीछे पदचिह्न बनते जायें, वह पीछे मुड़कर न देखे, चाहे पदचिह्न रह सकें या मिट जायें .....

मुझे यदि आ रहा है । एक बार गुरु ने कहा—'तुम्हारी आयु पर नेपोलियन जेनरल था । विद्यार्थी ने विनीत उत्तर दिया— किंतु गुरुदेव ! आपकी आयु पर वह सम्राट था ।

उपदेश ! उपदेश का खोखलापन ।

मुझे लगता है, जैसे कोई बहुत बड़ा काफ़िला गुज़र गया है और मैं रेगिस्तान में उसके पदचिह्न ढूँढकर अपने आपको बहला रहा हूँ । 'अंतिम ध्येय' की साधना का धोखा भी अपने ही मन को देकर बहुत से लोग न जाने विभ्रम को सुलझन क्यों कहते हैं ? अंतिम अवस्था मरण है, वह चल मरण नहीं, जिसमें तृप्ति की झलक दिखती है, वरन वह जड़ता, जिसमें एक सड़ाँध है, जो मनुष्य की घृणा का अज्ञान के अंधकार में पलता रूप है । व्यवहार और क्रिया का पूर्ण समन्वय ही पथ को सरल· बना देता है । पथ वह जो अपने आपमें पूर्ण है— हरी—रानी—जिसकी अपूर्णता·

ही जिसका बल है—यहाँ मैक्सुअल नहीं, विनोदसिह—वरदान है। हर मंजिल जैसे एक मील का पत्थर है।

मेरा जीवन ही क्या है? दिन भर की बुद्धिमत्ता यदि संध्या समय मूर्खता लगने लगे। तो मनुष्य को कितना विक्षोभ होता है। भरा हुआ प्याला उठाने की देर नहीं, कि वह रिक्त। निराशा की अति ही संतोष का प्रादुर्भाव है। अद्भुत है यह संसार। मन कहता है, 'हार मानो जीत पाओ।' और क्षण भर में ही नशा उतर जाता है फिर चलना ही एक मात्र सुख है, बूँद-बूँद करके सागर बनाने की स्पर्धा...

लीला का जीवन एक Illusioned discrepency है। इंदिरा का Distorted Vision। इतने बड़े जीवन के कितने ही पल व्यर्थ व्यतीत हो जाते हैं। उन्हें मनुष्य यों ही विस्मृत कर देता है। और इस विस्मृति का मूल कारण है। अविश्वास जिसका माध्यम है धन, जिसका परिणाम दरिद्रता है, दया है, स्नेह है, संघर्ष है, भगवती, इंदिरा, इंदिरा- लीला......

मनुष्य पृथ्वी पर रहकर अर्थ करता है या अनर्थ—यह स्वयं एक बचपन है। रहमान इसे नहीं समझ सकता। हो सकता है, वीरसिंह और सुंदरम इस बात को कुछ समझें। किंतु जहाँ ज्ञान कल्पना का सहारा लेता है, वहाँ वह आंशिक सत्य ही रह सकता है। अतः अज्ञान में भटकने का परिणाम है दुःख। यदि मनुष्य उसे अनुभव न करके दर्प करता है, तो वह प्रोफ़ेसर मिसरा है, ऊषा नहीं; क्योंकि ऊषा नीरस है, उसमें वह कालकूट की गरिमा नहीं जो महादेव के कंठ में अटककर न ऊपर चढ़े, न नीचे उतरे। कालेज के लड़के! अच्छे कपड़े! अच्छा फ़ैशन! और उन्हीं को नियामत समझनेवाले। उनकी ग़ुलामी उनकी ग़लत फहमियों और झूठे घमंड में छिप गई है। प्रोफ़ेसर मिसरा का क्या दोष? मैक्सुअल का भी कोई नहीं। निर्बल आत्मा तुरंत गालियों पर उतर आती है। स्वार्थी सदा अपने को परमार्थी कहने का दावा करता हुआ स्वार्थों को किसी अच्छे नाम के नीचे Camouflage. (ढांकने) करने का प्रयत्न करता है।

किंतु फिर भी हमारा समाज ऐसा है जिसने हमें मनुष्यता का पाठ सीखने को मजबूर किया है। हम परस्पर घृणा करते हैं, क्योंकि हम एक दूसरे से डरते हैं। डरें न तो क्या करें? हर कोई एक दूसरे पर प्रहार करना चाहता है, जैसे बरसते पानी में भूखे भेड़िये पहाड़ की खोह में बराबर बराबर बैठ जाते कहे जाते हैं।

किसी के ऊँघने की देर नहीं कि सब उस पर टूट पड़ते हैं। घृणा से जब आदमी ऊब जाता है तब वह प्रेम की ओर बढ़ता है। यह प्रेम यौवन की मूर्खताओं से भरा प्रेम नहीं होता, जिसको सुनकर मनुष्य बाद मे लज्जा करता है।

सब संबंध सांसारिक हैं। और जो सांसारिक नहीं वह प्रायः हैं ही नहीं। इस समाज में जो जितना बड़ा झूठ जितनी, कम हिचक के साथ बोल जाता है, उसी की चलती है।.........। उपर्युक्त स्थान पर चाहे कोई भी अपने हस्ताक्षर कर सकता है।

दूसरी बात। Mediocrity (मध्यवित्तता) का जीवन में अपना एक स्थान है। उसके बिना न महानता है, न नीचता। मनुष्य की यह जघन्य प्रवृत्ति सरलता से दूर नहीं की जा सकती, क्योंकि यह ईर्ष्या के जल से सींचा हुआ विष है। अधिकांश इसी जाल में तड़प रहे हैं। कितनों के नाम लिखता रहूँ?

दूर रेल सीटी दे रही है। इस समय भी जब चारों तरफ प्रायः सब सो रहे हैं, स्टेशन पर छोटी-मोटी भीड़ होगी, हाय तोबा उसका स्वरूप होगा। ऊँघती रोशनी, ऊँघते आदमी, बदनसीब ज़िंदगी की बोझल परेशानियाँ, घिचिर-पिचिर, घिचिर-पिचिर, कीचड़ और अवसाद का अँधेरा! भक!'

समर ने एक लंबी सांस ली और थककर क़लम रख दी। सिगरेट जलाई और अपनी पतली बाहों पर बड़े एहतियात से हाथ फेरा कि कहीं कुछ चोट न आ जाये। दो-चार कश खींचते ही उसके मस्तिष्क में एक तीव्र कशाघात हुआ। सामने एक लड़की थी, जो लीला से ईर्ष्या करती है, इंदिरा से भी। लड़कों को अपना खिलौना समझती है, भगवती की गरीबी जानकर उसकी ओर उपेक्षा दिखाती है और अपने रूप पर, धन पर, वंश पर जिसे एक पाशविक अभिमान है। किंतु समर उसके प्रति आकर्षित है, ऐसे ही जैसे जान-जानकर भी पतंगा जलना चाहता है। कितनी तीव्र है उसकी ज्योति जो आलोक नहीं देती, केवल भस्म कर देना चाहती है, जैसे चिता की भयानक अग्नि हो जिसके सामने कोई पक्षपात नहीं, Scruples (संशय) नहीं। किंतु भगवती उसकी कौन चिंता करता है? वह कभी उसकी चोट से नहीं तिलमिलाता। अपमान करने का गुरुत्व व्यर्थ है यदि उस चुनौती को चुनौती के ही रूप में स्वीकार न किया जाये। वह मद से भरी है...

और समर की हड्डियाँ तक उस हवाई आलिंगन की कल्पना मात्र से कड़कड़ा उठीं। वह उसे नहीं छू सकता, क्योंकि वह फूल काँटों की सघन झाड़ियों के बीच उगा है जो कभी याचना करनेवाले की ओर नहीं झुकता। अपनी मस्ती में घमंड से झूलता है, मानों सबको बुला रहा हो। भगवती उस झूलने पर मुग्ध नहीं है। किंतु उसका दिलचस्पी लेना, न लेना, कोई विशेष महत्त्व नहीं रखता। समर में झाड़ी में घुसने का साहस नहीं है। कामेश्वर के पास शक्ति है, किंतु लगाव नहीं। वह उसकी ओर नहीं खिंचेगा। उसे तो पैसे खर्च करके चुपचाप नवीन स्त्री से मिलने में आनंद आता है।

जितनी तलवारों में चमक है उसमें सबमें स्पर्धा है। वह सब समान गर्व से शून्य में चमचमाना चाहती हैं, रक्त से भींग जाना चाहती हैं। कभी वह शांति के लिए उठती हैं, कभी क्रांति के लिए! किंतु बिना लगाव के देखा जाये, तो उनका काम हत्या है। हत्या का सापेक्ष्य रूप सामाजिक नियमों का बदलना है, बनना है, बिगड़ना है।

लवंग का विवाह होगा। यह भी एक अच्छा मज़ाक है। किंतु यह मज़ाक ही प्रत्येक गंभीरता का परिणाम है, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं।

समर विवाह की स्मृति आते ही फिर चंचल हो गया। उसने फिर लिखा —

'न साँप था, न आदम, न हव्वा, न ख़ुदा। जबर्दस्ती का बचपन है, और कुछ नहीं। अमरफल ही मनुष्य का सबसे बड़ा विष है। अत्यधिक आनंद एक बहुत बड़ा धोखा है जिससे मनुष्य बहुत शीघ्र मर जाता है।

घुटनों चलकर मनुष्य ने जब सीधा चलना सीखा, तो पूछा—कहाँ जाऊँ? कोई उत्तर नहीं मिला। अतः उसने पद्मासन लगाकर अहं का पाषाण स्थापित कर दिया और लाचार होकर कहा —चलना व्यर्थ है, गति ही नास्तिकता है।

और वह अमरता की प्राप्ति के लिए जीने लगा। उसने मृत्यु से भय किया। यही उसकी सबसे बड़ी निर्बलता थी, किंतु यही प्रेरणा उसकी सबसे बड़ी शक्ति बन गई। क्यों? इसका भी अभी तक कोई उत्तर नहीं मिला है। सृष्टि एक रेल की दौड़ है। यह मनुष्य बिना टिकट का यात्री है। इसी से वह स्टेशन से डरता है, क्योंकि टी० टी० आई० का खतरा बना रहता है। वह चलता जाये, सब गति के ज्वर में ऊँघते रहें, एक दूसरे के सिर टकराते रहें.....'

अंत में समर ने लिखा—'ज्ञान-विज्ञान सब उपहास हैं, किंतु हैं आवश्यक ही, क्योंकि उनके बिना और कुछ है ही नहीं। नवीन ज्ञान प्राचीन ज्ञान को अज्ञान कहता है। न हो तो अरस्तू को, न्यूटन को, कि आइन्स्टाइन को देखो; किंतु मेरी असमर्थता कहती है—तू अपने आपको देख, क्योंकि कल दर्पण भी महँगा हो जायेगा।'

———

[१६]

रूपगर्विता

आज लीला का वक्त नहीं कटता। भूल-भूलकर वह सोचने लगती है। घर पर कोई है नहीं। मामा और डैडी दोनों ही डा० धीरेंद्र के यहाँ चले गये हैं। और वह अकेली ही रह गई है। गर्मी ऐसी है नहीं, कि वह कमरा बंद करके सो रहे। रह-रहकर उसे अपनी बेकारी पर झुँझलाहट आ रही है। क्या करे? क्या न करे? उसने पढ़ने की कोशिश की। किताबें खोलकर बैठी। सिविक्स पढ़ूँ? मगर पालंडे बड़ी ही खुश्क किताब है। इकनामिक्स भी आज कोई पढ़ने का वक्त है? इंगलिश नहीं। धीरे से उसने अपना तस्वीर बनाने का सामान निकाला। सामान उठाकर वह बागीचे में ले गई और मोरछली के पेड़ के नीचे सामान रखकर अबलेटी-सी तस्वीर बनाने लगी। दुष्यंत और शकुंतला बनाना कोई बड़ी बात न होगी। जीवन-संध्या खास्तगीर बना चुका है? लैंडस्केप पेंटिंग में वह चाइनीज़ चित्रकारों की कृतियाँ जब से देख चुकी है, तब से हाथ नहीं डालती। तब फ्यूचरिस्टिक चीज़ बनाई जाये। धीरे-धीरे उसकी पेंसिल चलने लगी। एक युवक बनाया उसने—एक वासना का रूप और उसके सामने विभोर-सी बनानी है नग्ना नारी। उसने स्केच बनाया। कुछ तबियत न भरी, रबर से सब मिटा दिया। फिर मिटे हुए पर बनाया, बनाकर फिर मिटा दिया। अचानक उसे माडेल रखने का ध्यान आया। वह उठी और भीतर चली गई।

ड्रेसिंगरूम को उसने भीतर से बंद कर दिया। और अपने कपड़े उतारने का विचार आते ही उसके गालों पर सुर्खी दौड़ गई। उसने देखा—शीशे में एक रूप-सी खड़ी थी। सुंदर नयन, सुंदर बाहु, सुंदर, गोल, उठी हुई, अछूती कोमलता। उसने अपनी बगलों में हाथ फिराया, वह सिहर उठी। वह सुंदरी थी। वह स्वयं नहीं। शीशे की नारी। किसी पुराकाल के तपोवन की कन्या-सी। उसके मन में

आनंद का प्रथम स्पंदन हिल उठा। काश सब उसी की ओर देखा करें। वह बादलों पर चले, हवा उसका आँचल बनकर फहरे। किंतु वह सहसा ठिठक गई। एकाएक उसे स्केच की याद आ गई, उसने एक अँगड़ाई ली। (दोनों हाथों को उसने ज़ोर से मींच लिया और उन्मद-सो अपने वक्षस्थल पर हाथ रखकर गोलाई, कोमलता और ऊष्मा अनुभव करने लगी।)

कालेज में लड़के इस रूप के कारण ही भुनगों की तरह जलने चले आते हैं और बूढ़े चाहते हैं कि वह इस विष को युवकों के कंठ के नीचे न उतरने दें। लीला को लगा जैसे वह एक जीवित जागृत पाप थी। इसलिए समाज ने उसे बाँध रखा था। नारी का विद्रोह यौवन के पहले पहरों में समष्टि के विरुद्ध जागता है और अंत में स्पर्द्धा करते-करते वह व्यक्तिमात्र में निबद्ध होकर दासत्व स्वीकार कर लेता है। यही वह ठौर है जहाँ नारी पुरुष की दासी बन जाती है।

उसके रूप पर सब मरते हैं। उसने शीशे में फिर झाँका। उसका आकर्षण तभी तक था जब तक ये दो गोल किसी के मन में टीस भर सकते हैं। दोनों आँखों के पीछे मन के सामने एक कल्पना होती है, दो आँखों के पीछे साड़ी की ओट में एक यौवन है, दो उन्नत उरोजों का जिसमे ज्वार है। वह मुस्कराई। झुककर उसने होठों पर लिपस्टिक लगा लिया। भीतरी चेतना में लहर दौड़ गई। जैसे फ्रांस के महायुद्ध में सन् चौदह में लड़कियों के शरीर में सिफलिस का इंजेक्शन लगाया गया था। वह काँप उठी। उसकी निगाह बाडिस में उन दो मतवाली चिड़ियों पर पड़ गई। यह मानव का बाढ़ को रोकने का प्रयत्न था। बाल उसके कानों पर खेल रहे थे।

दुनिया इस रूप पर मरती है, षोड़शी गाती है, इंदिरा नाचती है, रूपी बेहतरीन चित्रकार है, विमला पढ़ने में तेज़ है, सभी कुछ न कुछ हैं। मगर वह कुछ नहीं है। वह केवल एक लड़की है और उसकी नारी एक वास्तविक नारी। जीवन का जन्म उसके अंत से सफल नहीं होता, उस धारा के प्रवाह के लय और ताल से सिद्ध होता है। वह उन्माद जो टीस भर दे और पागलपन का लाल ख़ुमार आँखों में झलका दे, वह जीवन है। यह सब क्या? उसपर सब वैसे ही मरते हैं। कामेश्वर, प्रो॰ मिसरा तक! उसने पराजितों की भीड़ को दिमाग में याचना करते हुए देखा। उन-पर गर्व से मुस्कराई। इनकी वह नहीं हो सकती। किंतु वह किसी की भी क्यों हो?

जब वह पैदा हुई थी तब वह किसी की न थी, मरेगी तब भी किसी की न होगी। फिर इस छोटे से रास्ते के लिए उसे किसी की भी होकर क्यों रहना पड़े ?

तब अचानक उसके कानों में कोई कह गया—औरत ग़ुलाम होती है।

वह साँपिन की तरह चमक उठी।

'झूठ है, झूठ है'—वह अपने आप फुंकार उठी।

मध्यवर्ग की नारी वैसा ही विद्रोह करती है जैसे पानी की बहती धारा में पत्थर से लड़कर एक बबूला पैदा हो जाता है। जब वह बहुत फैल जाता है, तो एकदम फट जाता है। उसको देखकर बहुत-सी स्त्रियाँ फिर वैसा नहीं सोचतीं। बचपन से वह प्यार से पली है। तब वह पार्टियों में जाती थी, सब स्नेह करते थे, मगर अब वह पार्टियों में जाती है, तो रहस्य भरी आँखें उससे कुछ कहने का प्रयत्न करती हैं। और वह ऐसी बन जाती है जैसे अभी वह कुछ समझती ही नहीं। कैप्टेन सेन के भाई ने उससे कहा था—तुम मुझे अच्छी लगती हो। तब उसने कह दिया था—मुझे सब अच्छी ही कहते हैं, क्योंकि मैं अच्छी हूँ।

जीवन में सब उसके पैरों पर आ-आकर लोट गये। एकाएक वह चौंक उठी। वह रहमान ? लेकिन वह तो सिड़ी है—कम्यूनिस्ट जो है न ? उससे हमें क्या ? कितना अजीब रहता है ! कोट पहनेगा तो एक कालर बाहर, एक अंदर। कितना पागल सा है ! इन सबसे कुछ नहीं। यह कोई हार नहीं थी। ऐसे लोगों को वह अपने से नीच समझती रही है। राह का भिखारी ख़ुदा के नाम पर भीख मांगता है, और न मिलने पर महल को गालियाँ देता है। महल का तो कुछ नहीं बिगड़ता ! महल तो भिखारी के विचारों की परवाह नहीं करता !

फिर भी जिस कमल को अपनी कोमलता पर गर्व होता है उसे भ्रमर के गुंजन पर कुछ हर्ष नहीं होता। वह चाहता है, बादल, वह बादल जो बार-बार ऐंठन बनकर बीच-बीच में आये और झुक-झुककर हट जाये। ऐसा ही तो वह है। जीवन को रस-भरा मानकर भी इतना शुष्क रहता है। वह कौन है ?

लीला ने देखा एक लड़की—ऊषा—सागर की रोर-सी उमड़न लिये, सुंदर नहीं, मगर अच्छी। जिसकी नारी कालेज में बहुत ही उत्कट थी, बहुत ही अतृप्त, मगर जो उस अशांति को एक आत्मतेज से सँभाले हुई थी। तो क्या वह सचमुच भगवती को चाहती है ? क्यों नहीं चाह सकती ! एक पुरुष...सुंदर...जिसके ज्ञान की

सब ओर धाक है…लेकिन जो सागर तीर के पेड़-सा सुनसान जीवन बिताये जा रहा है।

अचानक उसका हृदय कचोट उठा। कहीं भगवती भी तो उसे नहीं चाहने लगा है? किंतु वह क्यों नहीं चाह सकता? नहीं—लीला की विद्रोह-भरी अंतरात्मा चीख उठी—वह उसे नहीं चाह सकता।

तो क्या मैं स्वय उसे चाहने लगी हूँ? नहीं, कभी नहीं हो सकता। वह प्रेम नहीं जानती, न जानेगी। वह खिलखिलाकर हँस पड़ी—प्रेम? पश्चिम का प्रेम… एक प्याला शराब, एक चुंबन; भारत का प्रेम…दिल की घुटन, तपस्या; फ़ारस का प्रेम ..अहे मजनूं; जापान का प्रेम...हाराकिरी; और पठान का प्रेम . पठान की पठानी।

वह यह सब क्या सोच रही है? आखिर इसका मतलब क्या है? वह फिर हँसी और हँसती रही।

ईंटों से मकान बनता है, तब उन्हें जमाने को चूने की ज़रूरत पड़ती है। कुछ नींव होती है, ऊपर को दीवारें होती हैं। तूफ़ान और वक्त उस घर को गिरा देते हैं। तब कुछ दिन कवि खंडहर पर रोने आता है और अत में मिट्टी में मिट्टी मिल जाती है। न वहाँ अमर आत्मा रहती है, न चेतना। संसर्ग से प्रेम बनता है। तब कल्पना उसे पक्का करने आती है, कुछ वासना होती है, कुछ सुपना। जंज़ीर कट जाती है और कुछ देर तक झनझनाहट होती है। हर एक व्यक्ति का कवि चीत्कार करता है।

लीला एक भूला हुआ गीत गुनगुनाने लगी। देरतक गुनगुनाती रही और अपने नाखूनों पर रग लगाकर चमकाती रही। लाल, खूनी, लंबे और नुकीले।

उसके बाद वह उठी और अपने सामान के पास चली गई। बैठकर उसने फिर चित्र बनाना शुरू किया। पूरे वक्त वह गाती रही—

आमार वासना आजि,
त्रिभुवन उठे बाजि,
कांपे नदी वन राजि वेदना भरे,
बाजिलो काहार बीना मधुर स्वरे।

लकीरें बनीं और शक्ल बन गई। रंग चढ़ा और 'शेड' पड़ा। एक रूप बना।

गीत की भावना मिली, चित्र ने एक झूमती हुई लय को आत्मसात् कर लिया। नारी को उसने बनाया जैसे अंधड़...जैसे—

त्रिभुवन उठे बाजि...

चित्र बन गया। लीला उसे देखने लगी, मनोहर बना था। रूप था, भाव था, रंग था, प्यास थी, आकर्षण था, और संक्षिप्त होकर भी अत्यंत अथाह था। क्रोमेग्नंस के पशुचित्र असाधारण हैं, लीला का चित्र साधारण होकर भी असाधारण है, क्योंकि वह हृदय का बिंब है जैसे दार्शनिक की चंचलता।

अचानक लीला चौंक उठी। यह तो वह स्वयं बन गई थी। वैसी ही ऐंठन जैसी अभी थोड़ी देर पहले शीशे में झांई मार रही थी। और पुरुष .

उसे लज्जा हुई, क्रोध आया, शंका उठी, भय और संकोच ने हाथ पसार दिये...

वह भगवती थी। कल्पना का एक वासना भरा चित्र, एक सत्य। लीला ने देखा और उसके नयन उसपर से न हटे। चित्र का पुरुष कितना सुंदर था। वह चाहती थी कि अंधड़-सी वह किसी ऐसे तड़प भरे उन्माद और वेग में खो जाये... उसने झुककर चित्र का पुरुष चूम लिया। अनुभूति का सुख मतवाला होता है। उसने उसे छाती से चिपका लिया और वहीं लेट गई।

पेड़ पर कोयल बोल उठी। लीला ने चौंककर देखा। वह यह क्या कर रही थी! वासना? पाप? उसका मन ग्लानि से भर गया। यह क्या वह भी ऐसी उत्तेजना से भरी थी? उसने शंकित नयनों से चारों तरफ़ देखा। किसीने उसे देखा तो न था? किसी ने नहीं। आदमी को पशु पक्षी के समाज से डर नहीं होता। आदमी को आदमी से डर लगता है। ईश्वर देखता है, देखा करे। वह कुमारी है, जिसपर वह गर्व कर सकती है। लीला ने तस्वीर देखी। वह उसे फाड़ देगी। ऐसी तस्वीर को अपने पास रखना सरासर खतरनाक है। लेकिन फिर भी चित्र कितना सुंदर है! आखिर कौन-से हाथ से फाड़ सकेगी उसे! नहीं, उस चित्र को फाड़ना होगा।

वह उठी। उसने चित्र मोड़कर मुट्ठी में छिपा लिया और 'डैडी' के स्मोकिंग रूम में चली गई। वहाँ उसने आल्मारी खोलकर एक दीयासलाई निकाली, वाशबेसिन के ऊपर तस्वीर खोली, जैसे प्रलय के बाद मनु ने फिर से पृथ्वी देखी हो

दीयासलाई जली और तस्वीर में से एक झल उठी जैसे चित्तौर का जौहर धकधका उठा हो।

रूप गीत बनकर आता है और सुपना बनकर चला जाता है। क्या यह जीवन एक विराट मस्तिष्क का भूला हुआ एक क्षणमात्र है? क्या आदमी उस दिमाग़ का एक भटका हुआ विचार है जो आता है, सराय की अधूरी नींद में पागल होकर चला जाता है?

आस्मान में सफेद बादल छा रहे थे, उनकी छाया में जीवन-संचारिणी शक्ति थी, जो ज्योति बनकर काँप रही थी। एक नीला प्यार-सा लगती थी। विश्रांत-सा आदमी का बनाया घर था और उसमें था एक मानव-हृदय। यह हृदय वैसा ही है जैसा आदिम पुरुष और आदिम नारी का था। यह चाहता है, दिमाग़ से हृदय जीत लिया जाये। मगर कितना कठिन है यह सब! मनुष्य अचम्भे में अब भी मिट्टी को देखता है, उसी तरह प्यार से हृदय से लगा लेता है और बेतकल्लुफी से उसमें घुल-मिल जाता है।

लीला सोचती रही। आदमी धोखेबाज़ है। वह आकर्षण को प्रेम, स्नेह और वात्सल्य कहता है। समाज का ढाँचा तीन चीज़ों पर खड़ा है—कमीनापन, ढोंग और झूठा घमंड! यह पतन का भय है। संसार का घमंडी आदमी 'अणीमांडव्य' हो गया है। युग-युग से आदमी यूलिसीज़ की प्रतीक्षा कर रहा है—

घड़ी ने टन-टन करके पाँच चोटें की। लीला ने चौंककर देखा। वह घड़ी मानों उसके भीतर ही बजी थी। मानों ये चोटें उसने अपने में ही सही थीं और उस शब्द के उतार चढ़ाव से वह अपूर्व तृप्ति से भर गई थी। घड़ी फिर टिकटिक करके चलने लगी। उसकी यात्रा अथक थी। वह एक दिन बना दी गई थी और तबसे चाभी लगने पर निरन्तर चलती रहती है, वह भी दृष्टि के लिए तीन Dimensions की है, कि साधना के ऐक्य से उसका चौथा Dimension ही प्रधान है—समय! किंतु प्रकृति के सदा दो रूप हैं—एक प्रकाश, दूसरा अंधकार! एक सौम्य शांति है दूसरा रात का अंधड़; एक रचना है, एक विध्वंस; इनके मिलन ही में पालन है। जीवन चलता है। इस संध्या की थकान में जब चिड़ियायें घर लौटती हैं, आते हुए अंधकार से डरकर मनुष्य मनुष्य को खोजता है, बर्फ़ के

कण एक हो जाते हैं, किंतु फिर भी वह पास नहीं लगता दूर दूर की दो बर्फ़ीली चोटियों-सा वह अस्तित्व मुस्कराता है। भावना मे श्रद्धा, कर्म में कुरूपता।

लीला खिड़की में से झांकने लगी। सुदूर वहां पेड़ों के अंचल में भैंसें धूल उड़ाती लौट रही थीं, विश्रांत थकी मांदी। छाया का धुंधलापन सीरी हवा को श्रमश्लथ बना रहा था। लीला ने देखा, कितनी सुंदर थी वह सत्ता। धन की ग्लानि उन्हें नहीं मालूम। वे स्वतंत्र नहीं हैं, तो भी उन्हें सुख है कि वह हैं, हैं कि न इतनी चेतना ही है कि जानें; फिर भी आत्मविश्वास है कि प्यास लगने पर पानी पीना है, भूख लगने पर खाना खाना है। उनका जीवन एक प्रकृति का नियम है, आधार पूरा है, किंतु !!! जिसकी सांस घुटती है वह विद्रोही है। ताक़तवर कमज़ोर को सांप कहकर स्वयं न्यौला बन जाता है। यह है असल में जीवन! आत्मा का वास्तविक हनन युगांतर का निर्वाण है।

सांझ आने लगी थी। हवा के झोंके बागीचे के फूलों को सहलाकर उनको गंध से भर लाते थे। लीला चुपचाप खड़ी रही।

यौवन चचल है, किंतु क्यों? क्योंकि जीवन एक गति है। मृत्यु मृत्यु नहीं है। एमीबा की सत्ता-सा परिवर्त्तन! वह केवल लय है। प्रकाश और अँधेरा, अँधेरा और प्रकाश। पक्षी कलरव कर रहे थे। थकान मिटाने को एक गीत हो रहा था। कोमल शब्द में मानिनी शकुंतला का अभागा सुहाग बिखरा पड़ता था।

लीला ने हटकर एक गिलास पानी पिया। सांझ का सुहावना समय था। वह फिर कोई गीत गुनगुनाने लगी। कुछ देर तक चुपचाप टहलती रही। मगर नूरजहां को वह हरम अब पसंद नहीं आया। वह जाकर कपड़े बदलने लगी। एक बार फिर उसने शीशे में देखा। कितना मांसल शरीर, सुगठित! एक अतृप्ति से उसका मन फिर उदास हो गया।

उसने 'गैरेज' से मोटर निकाली। सैल्फ़ लगाया और चल पड़ी। डैडी और मामा के आने पर निरंजन चाय पिलायेगा। वह डेविड होस्टल में ही कहीं पी लेगी। एक बार फिर क्लियोपैट्रा चल पड़ी थी दिग्विजय करने। सर्र-सर्र कार बढ़ने लगी, मोड़ पर मुड़ती गई, धीमी होती गई, मगर वह बढ़ती ही गई।

वह मोटर थी वैभव की जगमग निशानी; वह लीला थी रूप की जलती निशानी......

राह में कालेज के सामने कुछ लड़के बातें कर रहे थे। मोटर का हार्न सुनकर उन लड़कों ने मोटर की तरफ़ देखा। लीला उन नज़रों की मालकिन थी; वह धनी थी, रूप-गर्विता थी, अपराजिता, समझनेवाली, किंतु आज न जाने क्यों उसमें यह भावना भर गई थी कि कोई उसकी उपेक्षा कर रहा है, उसे कुछ नहीं समझता, वह कुछ नहीं है।

डेविड होस्टल आ गया। वह मोटर भीतर छोड़कर होस्टल के दुमंज़िले पर लूसी के कमरे का दरवाज़ा थपथपा उठी। भीतर से किसी ने कहा—ठहरो कौन है? और साथ ही एक लड़की ने द्वार खोल दिया। वह लूसी थी और लीला ने चाहा कि वह लूसी न होती, कोई और होता और वे दोनों अकेले होते ..

खिड़की में से सड़क दिखाई देती थी। यही वह जगह थी जहाँ भूखे दिल आकर प्यासी आँखों से होस्टल की छत पर खड़ी लड़कियों को देखते और जहाँ से न दिखने के लिए लड़कियाँ सामने आकर खड़ी होती थीं। एक कर्मक था, दूसरा अकर्मक; न कर्मक कर्मक था, न अकर्मक अकर्मक।

इसके बाद एक शोर से तमाम जगह भर गई।

लूसी चिल्ला उठी—'रेल आयेगी! रेल! चलो देखेंगे, जल्दी जल्दी...।'

दोनों खड़ी हो गईं। रेल आई। जिस डिब्बे पर सेकेंड क्लास लिखा था उसमें से दो सिर झाँक रहे थे। दोनों व्यक्तियों ने हाथ जोड़ दिये। इन दोनों ने भी मुस्कराकर नमस्ते की। रेल निकल गई।

लीला ने लूसी की तरफ़ देखकर कहा—कौन थे? एक तो कामेश्वर था, दूसरा?—

लूसी ने बात काटकर कहा—कामेश्वर तो था ही। साथ में था समर। शिमले जा रहें है सैर करने।

'इम्तहान के दिनों में?'

'ये एम० ए० में हैं न? इनके तिमाही नहीं होते। न इनपर जुर्माना होता है। इनकी मौज़ों का कोई ठिकाना है? सीनियर हैं, तबियत आये सो करते हैं।'

लीला चुपचाप सुनती रही।

लेकिन भगवती तो जूनियर था!!!

———

[१७]

विषम जीवन

पहले टर्म का अंतिम दिन था। साँझ खत्म हो गई थी। घंटा बजने लगा। वही काना चपरासी अपना काम किये जा रहा था। लड़के बातें कर रहे थे।

टन टन······लड़कियाँ और लड़कियाँ, लड़कियाँ और प्रोफ़ेसर···लड़कियाँ और लड़के · फिर लड़कियाँ और लड़कियाँ······

टन, टन, टन, टन······

आज दसहरा पार्टी थी। इम्तहान आज सुबह ही खत्म हुए थे और उस तवालत से छुटकारा मिलते ही सैनिकों ने आनंद मनाना शुरू कर दिया था। नतीजे को इस वक्त किसी को फ़िक्र नहीं है।

कालेज के हाल के विशाल दरवाज़े खुले हुए थे। दो लड़के द्वार पर सबका स्वागत कर रहे थे।

नौकरों में बातचीत हो रही थी। बूढ़ा हरप्रसाद जो पचास बरस से कालेज की नौकरी कर रहा है, बोला—भाई, यह सब भी क्या कोई मतलब की बातें थोड़े ही हैं, मगर हमारी सुनता कौन है ··

'अभी पूछो मत'—चंदा कह रहा था—'इन लड़कों को क्या है? लड़कियाँ देखनी हैं, प्रोफ़ेसर और लड़कियों को तो मिठाई ठीक तरह मिल भी जाती है, मगर लड़के तो चिल्लाते ही रह जाते हैं। आखिर वह मिठाई जाती कहाँ है?'

'वारडन सा'ब को भूल गये शायद।' बूढ़े हरप्रसाद के होठों पर पकी हुई हँसी खेल गई। 'पहले जो लड़के आते थे, एक-एक का सीना चक्की का पाट होता था, चंदा बेटा, चक्की का पाट, मगर अब देखो, तुम कै बरस के हो? तेरह के। पेट से निकले नहीं कि रटना शुरू कर दिया··· ए, बी, सी, डी,······'

मिठाईवाले पहलवान ने राय दी—'पहले लड़के खाना जानते थे, अब कहाँ?

पैसा कहाँ है ? कर्जा लिया, खाया पिया क्या, सिगरेट का धुआँ उड़ाया। पान खाकर मुँह रचाने में ही सारा ऐश रह गया है।'

'भैया, बखत-बखत की बात है, पहले अंगरेजी हमने इतनी नहीं सुनी, अब तो बात-बात में गिट-पिट....'

'अजी अब तो यों कहें कि भगवान क्या ? यह किस चिड़िया का नाम है ?'

'और लड़कियों ने तो बस रहा सहा सब पूरा कर दिया।'

हाल में भीड़ बढ़ती जा रही थी। यह गुप्त साम्राज्य के महानायक का सभा-मंडप नहीं था, न वाल्हला का विशाल हाल था, न था यह मुगलों का वैभव से पीड़ित विराट दर्बार, यह केवल मध्यवर्ग की खोखली सुंदरता के नंगे दिवालियेपन की एक नशे की जूठन में त्रस्त दिवाली की झिलमिल थी।

लड़के आते थे, बंट जाते थे। इसके बाद लड़कियाँ दो-दो करके कतार में आने लगीं और एक ओर बैठने लगीं। उनके बाद प्रोफ़ेसर और पीछे-पीछे उच्च कक्षाओं के विद्यार्थी। बाकी जगह खचाखच भर गई।

वीरेश्वर रेशम का सूट पहने बैठा था। रोशनी उसके माथे पर पड़ रही थी। वह कुछ उदास था। रूपित किंतु खरदरा।

उसकी बगल में था रहमान। सर के बाल मुश्किल से कढ़े हुए, रूखे। कोट का एक कालर हमेशा की तरह बाहर, दूसरा अंदर। काला, अच्छा नहीं।

कमल। अविश्वास से दबा, ऐंठ खोकर सर झुकाये बैठा है। उसकी उँगलियाँ कभी-कभी अपने आप हिल जाती हैं और तब वह साँस खींचता हुआ कोट के बटन लगाने लगता है। आज के-से दिन उसमें उदासी एक लाचारी है, क्योंकि वीरेश्वर की पूरी मदद के प्राप्त होते हुए भी वह प्रेज़ीडेंट न हो सका और आज जहाँ उसे होना चाहिए था, सज्जाद बैठनेवाला है। उस उदासी को छिपाने के लिए वह एक बनावटी हँसी हँसता है, जिसे देखकर सहानुभूति नहीं उपजती। पहले वह आदमी था, अब केवल हिंदू है।

हरी, जो रानी रेनोल्ड की तरफ़ छिपी नज़रों से देख लेता है, फिर कोई अज्ञात बंधन उसे झकझोरता हुआ जगा देता है। वह चौंककर इधर-उधर देखता है। वीरेश्वर पर निगाह पड़ते ही उसका विक्षोभ उमड़ आता है। आज वह पराजित बैठा है। कैसा धोखा दिया गया था उसे। दोगला वादा करके वीरेश्वर, वीरेश्वर

ने पासा फेंका था। पासा कैसा ही गिरे, मगर वह तो पहले ही ख़त्म हो गया। दूर जो मैक्सुअल बैठा है। किंतु उसको तो हरी ने ही हार दी है। रानी मुझसे ही प्रेम करती है। मैक्सुअल से नहीं। मैक्सुअल का भी अजीब दावा है कि ईसाई को ईसाई से ही प्रेम करना चाहिए। किंतु वह अपनी सूरत नहीं देखता। फिर कोई भूली-सी करुण मुस्कान उसके होठों को घेर लेती है।

वीरसिंह उद्विग्न। रहमान बनने का प्रयत्न करता है। भावुक क्रांति का उलझा हुआ स्वरूप। विद्रोह चाहिए, किंतु प्रेम भी आवश्यक है। शब्द बड़े होने लाज़मी हैं, मतलब जितना कम निकले उतना ही अच्छा। हर मीटिंग में मौजूद। कोई बात नहीं; सब बहुत कुछ है।

लीला की आँखें किसी को खोजने लगीं और वह कहीं नहीं है।

ऊषा ने कहा—'किसे खोज रही हो लीला?'

लीला सिहर उठी—किसी को भी तो नहीं।

'मालूम है तुम्हें, समर को संग लेकर कामेश्वर शिमले गया है। मुझसे वीरेश्वर ने कहा था।'

'नहीं।'—उसने अनजान-सा जवाब दिया, किंतु उसकी आँखों के सामने दो चित्र गुजर गये। कामेश्वर, सुंदर, स्वस्थ, धनी, विचारशील, किंतु स्वार्थी, जिसकी उच्छृंखलता छिपती नहीं, जो सदा प्रसन्न है, मगर जिसकी प्रसन्नता में एक उदासी टुकुर-टुकुर झाँका करती है। वह जीवन का अभिनेता है और उनमें है जो अपना रास्ता बाधाओं के बावजूद निकाल लेते हैं। उसका काम चलना है, लेकिन उसकी गति न पैरों की है, न दिमाग़ की। वह साहसिक है, किंतु फिर भी पराजित।

इसके बाद लीला ने देखा, एक दुर्बल क्षीण रूप। बैठे हुए गाल, नाक पर चश्मा, हड्डियों पर काँपता-सा। उठी हुई ठोड़ी, नाक, गले की बनावट सब हड्डियों में काटकर बनाई गईं। तूफानी लहरों पर जैसे टिमटिमाती चमकती नीली आँखों से देखता है, चारों ओर का वैभव, मानों उसमें स्वयं कुछ कमी है जो विशाल साम्राज्य को पैरों तले पाकर भी उसका राजा नहीं बन सकता। कुत्ता अपने मालिक के प्रीतिपात्र के सामने और कुछ न समझकर अकर्मक रूप में उस अतिथि के पैरों पर जा लोटता है, वैसे ही वैसे ही······

'लीला', ऊषा ने चौंका दिया, 'देखो न ? तुम्हें आज ही सब कुछ सोचना है क्या ? बात क्या है ? सुहागरात है तुम्हारी आज की रात ?'

लीला हँस पड़ी ।

'तुम भी ऊषा, तुम्हारे लिए तो सुहागरात मामूली बात हो चली है ।'

और लीला के सामने रेल के पहिये पटरियों पर से घूमते हुए निकल गये, सुख की ओट, वैभव की ओट···और वह अभागिनी-सी अकुला उठी ।

भीड़ में से कोलाहल उठ रहा था । प्रो० एल्फ्रेड गृहीन अपना एक आँख का चश्मा, जो बिजली की रोशनी में चमक रहा था, ठीक कर लेते थे । उनकी भूरी मूछें और नुकीली चिबुक पर ही समाप्त होनेवाली उनकी दाढ़ी, उसके दमक से उनके चौड़े मुख को व्याप्त कर रहीं थीं । अंगरेज बाप ने जर्मन स्त्री से कुश्ती लड़कर इसकी रचना की थी । वह अपने बापों की तरह अपने आपको ईसामसीह का खास बेटा साबित कर सकता था, क्योंकि हर अंगरेज की तरह वह अपनी बात बेहतरीन शब्दों के आडंबर में कह सकता था । अपनी माओं की तरह उसमें एक हूशपन था जिसकी तारीफ़ करना ऐंग्लोइंडियस की जातीय वीरता थी । हिंदुस्तान के लंबे चौड़े देश और उसके टूटे-फूटे आदमियों में उसे कोई दिलचस्पी नहीं थी । वह चुपचाप ठोड़ी को हथेली की उल्टी तरफ गड़ाकर झुकी नज़रों से घूर रहा था । ब्रिटिश साम्राज्य की—यानी अपनी रोटी की—वह बहुत तारीफ करता था ।

प्रो० मिसरा । एक हिंदुस्तानी जो प्रगति के नाम पर अपनी दक़ियानूसी पशुता के हाथों घिसट रहा था । जो अपनी अक्ल के सामने अपने से ऊँची तनख्वाह पानेवाले की अक्ल को ज़्यादा समझना धर्म समझता है, जो घिस देने के बाद एक नकली नाक लगाये है······

एकाएक एक बहुत ज़बर्दस्त शोर मचा । प्रोफ़ेसर, लड़के और लड़कियाँ सब ठठाकर हँस पड़े । नौकरों ने काम करते करते सर उठाकर कोरिडोर में से झाँका लीला उधर ही देखती रही...

ऊषा हँसकर कहने लगी—'देखो तो, व्यास को लड़के तंग कर रहे हैं । कैसा मज़ा आ रहा है ।' और वह हँस पड़ी । फिर भी लीला को आज कुछ अच्छा नहीं लगा । उसकी नज़रें फ़र्श पर बैठे लड़कों में कुछ ढूँढ़ने लगीं ।

ऊषा कह रही थी—'आज सुबह बड़ा मज़ा आया । इम्तहान शुरू होने के

'पहले यह व्यास हाथ में स्याही की दावात लिये जा रहा था। किसी ने उसे छेड़ा तो वह भागा। उधर से आ रहा था भगवती। उसी से टकरा गया और भगवती के कपड़ों पर स्याही फैल गई। भला इससे कोई क्या कहे?'

लीला ने कुछ नहीं कहा।

'आज भगवती आया नहीं।'—ऊषा ने इधर-उधर देखकर कहा।

'कोई काम होगा।'—कहकर लीला चुप हो रही। वह देखती रही।

प्रेज़ीडेंट सज्जाद ने कहा—अब आपको मिस्टर इंद्रनाथ अपनी कविता सुनायेंगे।

कविजी ने गाना शुरू किया—

'पीर है मेरे हृदय में

सुमुखि, टूटे पंख ही हैं, रत्न इस उजड़े निलय में'

युगांतर का टूटा राग गूँज उठा। इसके बाद तालियाँ पिटीं, भीषण कोलाहल मच उठा और कविजी को लौट आना पड़ा; क्योंकि हिंदी का ऐसा रोमांटिसिज़्म कोई सुनना पसंद नहीं करता। वह उदास होकर बैठ गये।

तब मिस्टर यूसुफ ने ग़ज़ल सुनाई, जिसको एक बार नहीं, लोगों ने बार-बार सुना कि—

माशूक़ की जगह भैंसा नज़र आता है।

हँसी के फव्वारे छूटते रहे।

फिर खाना हुआ और तब बहुत से लड़के जो फ़र्श पर बैठे थे, ठीक से कुछ न पा सकने के कारण, चिल्ला-चिल्लाकर हक़, पाने के लिए स्टीवार्ड्स को अपनी दोस्ती की तरफ़ इशारा करके बार-बार देखते थे, मगर ओहदा ओहदा ही होता है...

रात चाँदनी में बिखरती बिखर उठी थी। लीला ने बाहर आकर अपनी मोटर को स्टार्ट किया। आज वह उदास थी। ज्वार आने के पहले जैसे महासागर शांत हो जाता है। उसने देखा, रानी रेनोल्ड से हरी कुछ बातें कर रहा था। मैक्सुअल खड़ा-खड़ा घूरता रहा था। उसे हँसी आई, किंतु फिर मन भारी हो गया। वह अकेली थी।

मोटर एक आवाज़ करके चल पड़ी। लीला ने हार्न बजाना शुरू किया। राह पर भीड़ हो गई थी। लड़के हँस-हँसकर बातें करते चले जा रहे थे, जो हार्न सुनकर लहरों की तरह बँट जाते थे। पीछे से व्यंग्य कसना विद्यार्थियों का गहरी चोट करने-

वाला हथियार समझा जाता है। किंतु लीला निर्विकार रही, जैसे औरों पर भी उसका कुछ असर नहीं पड़ता। वह विश्रांत हो उठी। सड़क मोटर के पहियों के नीचे फिसलती चली जा रही थी। उसके पाँव ब्रेक और एक्सेलेरेटर पर कोई मशीन का ही भाग बने धरे थे। हाथ मानों स्टीयरिंग व्हील पर चिपक गये थे। पेड़ स्वप्न की तरह आते थे और ग़ायब हो जाते थे। क्षण भर को चौराहे की ज्योति मिली। अपनी ऊँची जगह खड़े सिपाही ने हाथ दिखाया, मोटर चलती चली गई। इसके बाद वही चांदनी···भिखारी, अंगरेज़, हिंदुस्तानी, अमीर, पुरुष, स्त्री, जो भी पैदल थे, सड़क पर बह रहे थे, लीला की दृष्टि में एक-से। हवा उसके माथे पर टकरा रही थी। ओस की बूँदों से ठंडी और भारिल। यह भी जीवन था। इसमें तूफ़ानों की गति थी, किंतु भीतर बिल्कुल शून्य; जैसे माया से घिरा वैष्णवों का सच्चिदानंद परमेश्वर।

बड़े-बड़े तूफ़ान उठते हैं, सागर कोलाहल कर उठता है, किंतु कुछ ही हाथ नीचे विश्रांत पानी स्तब्ध रहता है। धूल का गुबार लेकर उठती आँधी के चक्करों के बीच ही सुनसान शांति रहती है। लीला स्त्री थी।

उसने मोटर की गति बढ़ा दी। सर्र करके हवा को मोटर ने काटना शुरू किया और हवा अधिक वेग से उसके मुँह पर बज उठी। इसके बाद एक मोड़ था। यहाँ पेड़ों के कारण गहरा अँधेरा था। रास्ता इतना सकरा था कि मोटर मुश्किल से निकल सकती थी। उसने 'गियर' बदला और मोटर को मोड़ दिया। अचानक ही लीला सर से पाँव तक सिहर उठी। बल लगाकर ब्रेक को उसने पूरा ऊपर खींच लिया। गाड़ी एकदम रुक गई। प्रकाश में एक व्यक्ति खड़ा था। उसकी आँखें एकदम चकाचौंध हो उठी थीं। लीला ने बत्तियाँ बुझा दीं और तब अंधकार में वह कोमल कंठ से कह उठी—'मिस्टर भगवती।'

व्यक्ति रुक गया। वह आगे बढ़ा। मोटर के आगे की खिड़की पर उसने कोहनी टेककर भीतर झाँका। क्षण भर को दोनों की आँखें मिल गईं। भगवती के गर्म श्वास लीला के खुले कंधों पर काँप उठे।

'मिस लीला, आप यहाँ?'

'घर जा रही थी। आप भी अचानक ही मिल गये। कहाँ जा रहे हैं?'

'होस्टल।'

'घूमकर लौट रहे हैं क्या ?'

'जी हाँ, ज़रा सोचा घूम आऊँ ।'

लीला का गला भर-भर आ रहा था। भगवती का गला सूख रहा था। दोनों घबराये हुए थे।

लीला ने फिर कहा—आप घूमने जाते हैं ? मैं तो समझती थी कि दुनिया में अगर कोई चीज़ है तो सिर्फ़ केमिस्ट्री, लेकिन प्रकृति से भी आपको प्रेम है, इसका मुझे बिल्कुल ध्यान न था। देखिए कितना मीठा और सुहावना चाँद है जिसने उँडेल-उँडेलकर सुधा बहा दी है।

पेड़ के अंधकार में लीला के शब्द मूर्ख की कहानी-से मँडरा उठे।

'कहाँ ? यहाँ तो कोई चाँदनी नहीं है ?'

'देखिए तो, हाय रे ! आप भी बड़े वह हैं। यहाँ के पेड़ों ने ढँक रखा है। आइए, बैठिए न मेरे साथ, मैं आपको चाँदनी में ले चलूँ ।'

भगवती कुछ सोचता रहा। लीला ने फिर कहा और अबकी वह लीला बनकर बोली, कि सारे तकल्लुफ़ अपने आप बह गये—बहुत दिनों से तुमसे मिलना चाहती थी, मगर कैसे मिल सकती थी। आज अचानक ही ईश्वर ने कैसा मिला दिया ! चलोगे ? अभी आधे घंटे तक मुझे आज़ादी है। देर न होगी तुम्हें, चलो।

भगवती इस 'आप' से 'तुम' तक की यात्रा पर ही ग़ौर कर रहा था।

'माफ़ कीजिए'—उसने ख़ाकी कोट की रोल्ड कालर पर हाथ रख दिया। लीला इतना ही देख पाई कि वह कोई काला-काला निशान था। उसे कुछ याद आ गया। 'आप पार्टी में क्यों न आये ?'

भगवती ने उसे अधमुँदी आँखों से देखते हुए कहा—इस चाँदनी रात के मुक़ाबिले में कुछ अच्छा नहीं लगता था। मिस लीला, आपको मेरी तरह कोल्हू का बैल बनकर पढ़ाई में जुतना नहीं होता, आपके लिए पढ़ाई कविता है, मेरे लिए रोटी। तब आज जब मैं उस अंधकार से छूटा, तो मेरा जी उस क़ैदखाने में जाने को न हुआ। दीवालों पर फारमूला, प्रिसिपिटेशन, प्रोपर्टीज़ और टेस्ट्स लिखते-लिखते आँखें सींग की हो गई हैं। मिस लीला, ज़िंदगी एक नीरस तन्मयता होकर नहीं चल सकती। रस भरा गन्ना रेगिस्तान में नहीं पनप सकता। कालेज के युवक युवतियाँ जीवन का प्याला भर-भरकर पीते हैं, मैं उपेक्षा दिखाता हूँ। लेकिन क्या वह रस

पीने को मेरे होंठ कभी-कभी व्याकुल नहीं हो उठते ? इस यज्ञ को बलि बनने का दंभ और गर्व में कभी स्वीकार नहीं कर सकता। गरीबी में उन्मुक्त होकर इम्तहान के बाद, इस लंबे जीवन में केवल एक ही क्षण बस, मैंने चांद को देखा और देखी उस धुले हुए आसमान में चांदनी की लहरें। मैं चाहता हूँ कि यह चांदनी मेरे मन में ऐसी भर जाय कि अगले तीन महीने तक जब मैं शीत भरी लैब में कारबन, सिलीकन और बोरौन बका करूँ, तब एक टीस-सी कविता इस गरु हृदय में कुछ ठडक दिया करे।

'आप इतनी मेहनत क्यों करते हैं ?'

'क्यों करता हूं ? आपके सामने भी मुझे यह कहते संकोच नहीं होता कि कल आराम से रोटी पाने के लिए।'

'लेकिन मिस्टर भगवती नौकरी आजकल मिलती कहाँ है ? आप फ़र्स्ट क्लास फर्स्ट आयें, तो भी कोई गारटी नहीं है कि आपको कोई अच्छी जगह ही मिल जाये।'

'इस पूंजीवादी समाज ने मुझे विधवा बना दिया है। इसी लिए मैं सुहागिन का ढोंग नहीं रच सकता। तो क्या आप चाहती हैं कि मैं वेश्या बन जाऊँ ? यों तो मैं भी तरकीबें जानता हूँ। ब्रिज और टेनिस सीखकर ही दो जोड़े नये अच्छे सूट बनवा-कर रईसों को चाकरी करके मैं उनका दोस्त हो सकता हूं, उन्हें ठग सकता हूँ, मगर जाने क्यों उस झूँठे उन्माद से यह सूखी जलन अच्छी लगती है। न मैं रहमान की तरह कम्यूनिस्ट ही हूं, क्योंकि बोरजुआ समाज की घृणित व्यवस्था न मुझे डरा सकी है, न दहला सकी है। मैं जानता हूं, मैं एकदम व्यक्तिवादी है और इसलिए मैं विद्रोह नहीं जानता। घृणा करना जानता हूँ, और जानता हूँ कि मेरी घृणा एक प्रबल विद्रोह है। वह खेल मेरे लिए आहुति हो जायगा। आप नहीं सोच सकतीं कि लैब से लौटकर एक रोज पानी पीकर न केवल प्यास बुझानी पड़ती है, बल्कि भूख भी। दिलचस्पी न होते हुए भी गुलाम तबियत के गंदे मज़ाकों को हां में हां मिलाकर सराहना पड़ता है।'

लीला चुप थी। वह अजीब परेशानी में फँस गई थी। खैर, अब तो जैसे भी निभाना ही पड़ेगा। किंतु वह जब बात करता है, तो कितना अच्छा लगता है। बच्चों की तरह समझता है कि वह बहुत बड़ी बात कह रहा है। और ऐसे बोल

रहा है जैसे शेक्सपियर के पात्र लंबी-लंबी बातें करते थे, कवित्व भरी। शेक्सपियर जानता था कि वह बेवकूफ था और यह अभी इसे नहीं समझ पाया कि हम सब बेवकूफ़ हैं—

A tale told by an idiot.
pull of sound and fury
signifying nothing.

उसने मुड़कर अँधमुँदी आँखों से देखा और जैसे अनजान में उसके हाथ ने शीशे पर धरे भगवती के हाथ को ढँक लिया। हवा सीरी-सीरी बह रही थी, उनकी सत्ता की घोर उपेक्षा उसमें गूँज उठती थी। भगवती चुप खड़ा रहा। तब लीला कहने लगी—'भगवती, जीवन वास्तव में आजकल बहुत ही घृणित है। मैं करोड़ों को भूखा देखती हूँ, और देखती हूँ यह मुट्ठी भर लोग जो जीवन को यातना दे रहे हैं, अमीरों का अधिकार उनकी बेबसी है। लेकिन ईश्वर की जब मर्जी है, तब आदमी पंख फटफटाकर क्या कर सकता है? तुम कुछ भी मानो, लेकिन विश्वास करने से क्या होता है? जितना खोते हैं, उसके सामने यह प्राप्ति है ही क्या?'

'तुम अपने सुखों को छोड़ने के लिए तैयार नहीं हो। इसी लिए तुम ईश्वर से इतना डरती हो।'

'और तुम'—लीला ने कोमल स्वर में कहा—'ईश्वर को ठोकर मारकर भी अपने सुखों के लिए कुछ छोड़ना नहीं चाहते।'

वह हँस उठी जैसे न मानना। मैं तो तुम्हें नाराज़ देखना चाहती हूँ, तब शायद तुम और भी अच्छे लगो। कुछ देर दोनों चुप रहे। तब भगवती ने कहा—अच्छा अब मैं चलूँ?

लीला कुछ देर बोली नहीं। उसके मुँह से एक ठंडी साँस निकली। भगवती ने उसे सुन लिया। वह बोली—'आज अचानक इस ग़ुलाम जीवन में एक आज़ादी का पल कैसे मिल गया। आज तक सब धोखा था। वह किसान मज़दूर कितने सुखी हैं।'

भगवती ठठाकर हँस पड़ा! लीला चौंक पड़ी। आज वह पहली बार इतना खुलकर हँसा था। लीला अपलक देखती रही, जैसे यह तो अब तक मालूम ही नहीं था। वह कहने लगा—'मुझे ख़ुशी नहीं हो रही है। आप कहेंगी यह, मगरमच्छ,

कुत्ते आज़ाद हैं। पिंजड़े का बंदी अच्छा होता है या बेदिमाग झुंड की झुंड भेड़ें, जिनकी इच्छा के बिना अपने परमात्मा के लिए उनकी क़ुर्बानी दी जाती है। और शायद आप उसे निभा भी जायें, क्योंकि आपकी चेतना इस बात से सदा हावी है कि आपके पीछे त्याग का यश है।

'मिस्टर भगवती'—लीला चीख उठी। यह चिकना और रंगीन होकर भी क्या पत्थर ही है! ध्वनि भगवती के हृदय में विक्षोभ बनकर उतर गई और साथ ही पुरुष का वह अभिमान जाग उठा, जो उसे नारी के अंतस्तम पर चोट करके उसे तिलमिलाता देखकर पैदा होता है।

'आप जा रहे हैं क्या? आइए आपको पहुंचा दूँ।'

'नहीं, माफ़ कीजिए'—वह फुंकार उठा।

'भगवती'—लीला की पराजय पुकार उठी।

'लीला'—भगवती लुट गया था।

दोनों एक दूसरे को बहुत देर तक देखते रहे। लीला का हाथ भगवती के हाथ पर गर्म हो गया था।

जेल के घंटे ने टन-टन करके नौ बजा दिए। दोनों उस नींद से जाग उठे। लीला की आँखों में एक तरलता खेल उठी! उसने अपना हाथ उसके हाथ पर से हटा लिया। भगवती फिर भी वहाँ से न हटा। लीला ने कहा—'चलो।'

'नहीं', भगवती ने क्षमा मांगते हुए कहा। उसने देखा, लीला का रुमाल नारी की दो आँखों को चुपचाप सोख उठा। लीला चाहती थी कि या तो वह साथ आकर बैठ जाय या चला जाय।

सहसा उसने कहा—छुट्टियों में आप कहीं जायंगे तो नहीं?

'जी नहीं, डा० कुमार ने मुझे छुट्टियों में भी लैब में काम करने की इजाज़त दे दी है। अच्छा···नमस्ते!'

'नमस्ते',—चिड़िया ने पख खोल दिये थे—'मिलते रहिएगा न?'

'कहाँ? अब आपसे मुलाक़ात कैसे होगी?'

'ईश्वर कराएगा, आपने किसी बात का बुरा माना हो, तो माफ़ कर दीजिए।'

'ओह',—वह हँस पड़ा—'मैंने ही आपसे कुछ कठोर बातें कही हैं।'

वह चलने लगा। लीला ने गाड़ी स्टार्ट कर दी। चाँदनी ने ज़मीन आसमान

एक कर दिया था। हवा के झोंके भगवती के बालों को अस्तव्यस्त करने लगे। छाया बार-बार रूप बदलती थी।

कालेज निस्तब्ध खड़ा था, अकबर का मक़बरा! दिन में, साँझ में कितनी चहल-पहल थी। घास ओस से भींग रही थी। चौकीदार की लालटेन उस विशाल कालेज में धीमे-धीमे धुँधली-सी टिमटिमा रही थी, अंधकार में प्रकाश की एक किरण, मानव के गतिरोध की एकमात्र आशा···

रात को भगवती सोते समय अनजाने ही, पहली बार तकिया सीने से लगाकर सो गया।

लीला जागती रही। उसके हृदय में रह-रहकर एक शूल-सा चुभता था। भगवती ने उसका अपमान किया था। क्यों वह इंदिरा से स्नेह रख सकता है? इंदिरा के प्रति लीला को मन-ही-मन जलन हुई। लवंग ठीक है, जो कभी झुकना नहीं जानती और जब झुकती है, तब उसे स्वय ही अनुभव नहीं करती। फिर याद आया। कला की तरह वह शब्दों का जाल भी नहीं बना सकती। कारण? लीला नहीं समझ सकी। वह व्याकुल हो उठी और अपनी असमर्थता पर अपने आप रो उठी। किंतु भगवती का चित्र उसके सामने एक विराट पहाड़ की तरह खड़ा रहा और वह देखकर भी कुछ नहीं सोच सकी।

[१८]

गर्जन और लय

वह अपना पत्र खोलकर पढ़ने लगा —

प्रिय कामेश्वर,

बड़े अजीब आदमी हो तुम ! जाते वक्त मिले भी नहीं। और साथ में ले गये हो किस टेसू को। मैं जानता हूं, एक-न-एक जानवर पाले बिना तुम्हें अब खाना भी नहीं पचता। दसहरे के बाद तुम आ ही जाओगे। बड़े किस्मतवर हो। पहाड़िनें रंग ला रही होंगी। कभी समर को भी सैर कराई या नहीं ? मैं तो समझता हूँ, वह अब कुछ ही दिन के मेहमान हैं। तंदुरुस्ती दिन पर दिन सुधर रही है न ? बड़े-बड़े गुल खिले हैं। सुना तुमने। नायाब मियाँ समर इश्क भी करते हैं। पता नहीं, वह लड़की क्या होगी ! अंदाज़ से कहा जा सकता है कि हड्डी का ढांचा ज़रूर उनसे महुब्बत कर सकता है। लेकिन यह सब कुछ नहीं। प्रो० मिसरा की एक नौकरानी की लड़की से फँस गये थे बेचारे। ख़ुदा रहम करे। बार-बार दुनिया में ज़लज़ले आना ठीक नहीं वर्ना फरिश्तों को अहसान करने को कोई भी न मिलेगा। अब सुनते हैं, मिस लवग ख़ातून पर नज़र है।

यहाँ एलेक्शन की बुरी सदा बाकी रह गई है। कमला ज़ोरों से अविश्वास का वोट पास कराने की तैयारी कर रहा है। मैं देखता हूँ, मैं कुछ नहीं कर सकता। क्या होगा पता नहीं। विनोद को तो नहीं भूले होगे। मैंने तो उससे कह दिया कि बड़े भाई, चक्करों में फँस गये, तो कहीं के नहीं रहोगे। कॉलेज की लड़कियों को पहचानने में जो भूल कर गया उसके कपड़े ज़रूर फट जायेंगे, नतीजा कुछ नहीं निकलेगा। मगर वह अड़े हुए हैं। आपका कहना है कि रानी रेनाल्ड आप पर धीरे-धीरे आशिक हो रही है। मैंने कहा—हरो को भूल गये ? हरी और मैक्सुअल। भला कोई बात है ? लेकिन आपको राय है कि वे दोनों सिड़ी हैं ; असली इश्क

आपसे ही होनेवाला है। फिर बताओ हम क्या करें? पारसाल याद होगा तुम्हें, उसने हिंदुओं को एक कर दिया था, ईसाई होकर भी। अब देखें, क्या रंग आते हैं? इब्तदाए इश्क हैं!

प्रेज़ीडेंट होकर भी मैं देख रहा हूँ, कुछ ख़ास बात नहीं हुई। कॉलेज में हम लोग आते हैं और चले जाते हैं, बिरले ही प्रोफ़ेसर और लड़के लड़कियाँ हम पर असर डालते हैं। और फिर जो कालेज की जन्नत के बाहर पैर रखता है, तो आटे-दाल का भाव मालूम पड़ जाता है। हिंदुस्तान में ज़िंदा रहना कोई आसान बात नहीं है।

हाँ एक बात है। सलीम ने कहा है कि एक चिड़िया आई है। नाम है नादानी, एकदम तमंचा! मैं देख भी आया हूँ। उसकी नायिका ने कहा कि जाड़ों में वह उसे ले जायेगी। तब चाहो तो महीने भर के रुपये दे दो। वह नहीं जायेगी। तुम कहोगे, मारो गोली। मगर भाई, मुझमें अब ताब नहीं है, क्योंकि एक बार उसे देख चुका हूँ। क्या बात है! वैसे तुम्हारे Sentiments और Emotions कभी-कभी तुम्हारे men of action को बिल्कुल दबा देते हैं। फिर भी इस दुनिया की बुज़दिली को ही करुणा और दया कहा जाता है, जब अपनी जिंदगी के गुनाह को हम ख़ुद ख़राब समझते हैं तब दान-पुन्न करते हैं।

शिमले के क्या ठाठ हैं? तुम गये क्या कि शहर की लड़कियों ने खाना छोड़ रखा है। अब तो आ जाओ मेरे खंजर!

तुम्हारा

पुराना—

सज्जाद।

कामेश्वर मुस्करा उठा। उसके होठों से स्नेह का स्वर निकला—'लोफ़र!'

वह उठकर बाहर निकला। देखा, समर बैठे धूप में कुछ पढ़ते-पढ़ते ऊँघ रहे हैं।

वह लौट आया। उसे इस व्यक्ति पर दया आती थी। अब कौआ यह चाहे की मोरनी उसके पीछे-पीछे चला करे, तो आज तक तो ऐसा हुआ नहीं। फिर भी वह चाहता है कि समर उदास न हो, कुछ उसकी तफ़रीह हो जाया करे।

समर थोड़ी देर बाद जागकर फिर पढ़ने लगा और तन्मय हो गया। पढ़ते-पढ़ते उसने किताब बंद कर दी और आँख बंद करके सोचने लगा।

नीत्शे बायालोजी के Survival of the fittest को लेकर चलता है। ताक़तवर कमजोर को कुचल दे, यह उसकी राय में बिल्कुल ठीक है।

यह मानव पूँजीवादी संस्था में रहकर अपनी सामाजिक असमर्थता और कमजोरियों को ख़ुदा पर ढकेल देता है। वह वैज्ञानिक रीति से जड़ को खोज निकालने से डरता है।

वह एक भूला हुआ गीत गुनगुनाने लगा।

उस दिन के लिए तैयार हो जाओ जब यह अपूर्ण सभ्यता अपने कच्चे उत्कर्ष पर पहुँच जायेगी और उसके बाद अचानक ही लुढ़ककर ढह जायेगी।

'उस दिन को तुम्हीं देखोगे जब आदमी अपनी आजादी के लिए तुम्हारे अंदर पलनेवाले जानवर से लड़ेगा।

'वह दिन आ रहा है जब हर एक दाने को निचोड़ने पर तुम्हारी थाली में किसानों और मजदूरों का खून टपक आयेगा।

'वह समय पास है जब क्रान्ति चिर सत्य को रुँधी मनुष्यता के बीच से बाहर खींच लायेगी।'

जागो, अब भी जागो। अन्यथा तुम कभी नहीं जागोगे। ग़रीबों की गर्म आहों से आस्मान फट रहा है। यह कपड़ा इतना जर्जर है कि बार-बार सीने से भी तन नहीं ढंक सकता। आदमी नंगा हो रहा है। यह घर भुतहा है, इसमें अपनी ही छाया से डर लगता है।

'नई नींव डाल, नया घर बना, नया कपड़ा बुन, नई भोर होनेवाली है, अन्यथा नये प्रकाश में तुझे लज्जा आयेगी।"

कामेश्वर ने गीत का गुंजन सुनकर ठहाका लगाया और बाहर आकर कहने लगा—मियाँ, अभी तो दम तोड़ रहे थे, अब यह जोश है?

समर मुस्करा दिया।

शाम की धूप पेड़ों पर चढ़ने लगी थी। कामेश्वर ने कहा—चलो, आज तुम्हें 'वाइल्ड फ्लावर हाल' ले चलें।

कामेश्वर के सामने समर मना करने की शक्ति एकदम भूल जाता था।

उसने केवल कहा—चलो, कपड़े पहन लें।

दोनों कपड़े बदलने लगे।

Wild Flower Hall. खूबसूरती, हुस्न और अदा; दौलत और शानो-शौकत। वैभव, यानी रक्तभेद, वर्गभेद। यह शिमला है। यहाँ वायसराय रहता है। हिंदुस्तान के शाहंशाह का प्रतिनिधि, जिसके सामने चालीस करोड़ आदमी हैं और जिनकी आवाज़ उसके सामने भेड़ों की 'में में' से कुछ अधिक महत्त्व नहीं रखती। उसे सुख है। वह सुख भोगने ही के लिए भारत भेजा गया है।

आस्मान में बादल छा रहे हैं। काले, सफेद, ऊदे, नीले। हँस रहे हैं, टकरा रहे हैं। अब थोड़ी ही देर में टपक जायेंगे, रो पड़ेंगे। मेजों पर ठाठ के आदमी बैठे थे, जिन्हें देखकर याद आती है उन लोगों की जिनकी गर्दनें फ्रांस और रूस के गुंडे काट चुके हैं।

वेटर ने आकर सलाम बजाया। समर को याद आया उससे किसी ने कहा था कि अंगरेजों के आने पर तीन जात बढ़ गई हैं। एक आइ० सी० एस०, दूसरे वेटर और बियरर, तीसरी आया! और यह वेटर है। वेटर के मुँह से निकला—हुजूर!

कामेश्वर ने पूछा—तुम क्या पियोगे समर?

'मैं?'—सोचने लगा समर।

कामेश्वर ने ही कहा—टेनेन्ट्स बियर ठीक रहेगी। अच्छा हटाओ, सोलन ले आओ। तुम्हारे लिए और कुछ ठीक नहीं। और मैं, मैं, वह सोचकर उँगली हिलाते हिलाते कहने लगा—काकटेल! काकटेल तो आओ।

वेटर चला गया। कामेश्वर कहता गया—वैसे शिमले में शैम्पेन का मजा है, मगर मुझे व्हिस्की और रम के खास मेल में जो मज़ा आता है वह और किसी में नहीं......

शिमले की ठंड, मालरोड की शान! 'बियर! भी कोई शराब है?'

मगर जब दोनों पीने बैठे, नशा ऊपर के वैभव की तरह फौरन चढ़ने लगा। जीवन का 'लोअर बाजार' अब कहीं नहीं है। घिचिर-पिचिर, काले गंदे हिंदुस्तानी, गुंडे, पहाड़िनों के दलाल, कुली, मजदूर, रिक्शावाले......सड़ान से नाक सड़ती है। औरत

और मर्द उसी सड़ान में सड़ते हैं, क्योंकि और कोई चारा उन्हें नहीं मालूम। अजीब दुनिया की अजीब बातें .....

बाहर पानी पड़ रहा था। न दीपक है न, रोशनी है। प्रकाश की अगणित किरणें इन बादलों में से कभी-कभी मुँह मूँदकर फूट बहती हैं। चेतना की मर्मर झरती है। गति में अस्थिर स्वर। तुम्हारा अपनापन मेरा अभिमान है। और सूर्य है, चंद्र है, शक्ति है, रस है...आदमी हँसता नहीं, एक खुशी में खुशी नहीं और एक समय आँसू भरे नयनों की मुस्कराहट युगांतर की खुशी बन जाती है।' सोचते-सोचते पीते हुए समर झूमने लगा।

हाँ, वही Wild Flowor Hall।

कामेश्वर ठठाकर हँसता जा रहा था। वह कह रहा था—अरे यह भी कोई शराब है?

'बेबस किया भी तो नहीं पी तूने?'

'तू क्या जाने कि खंजर की चमक क्या है? सोलन, हा हा हा......'

वह भी झूमने लगा था।

गले में लकीर-सी खिच जाती है, 'चीज़ रम अच्छी है, मगर ब्रांडी में नशा बहुत चढ़ता है। मैं नशे में नहीं हूँ।'

उसके हाथ काँप रहे थे। वह सात पेग पी चुका था। गिलासों में शराब के फेन उबलकर चमक रहे थे। गंध से वातावरण भरा हुआ था। ज़बान लड़खड़ा रही थी। समर उल्लू-सा चश्मे में से टुमटुमा रहा था। कामेश्वर की आँखों में जाली चढ़ गई थी, लाल जैसे दूसरी शराब। वह हँस रहा था। उसने देखा सामने दो लड़कियाँ खड़ी थीं। कामेश्वर उठा और उनके पास जाकर कह उठा—आइए न! आज तो आप लोग बहुत दिन बाद आई हैं।

दोनों लड़कियों ने एक दूसरी की तरफ देखा। छोटी ने कहा— डैडी से इजाजत ले लीजिए।

'आइये भी'—उसने फिर कहा।

समर ने देखा, सचमुच लड़कियाँ आकर बैठ गईं और कामेश्वर ने दो नये गिलास मँगाकर भरने शुरू किये।

वह रात एक ऐश की रात थी। अंधेरी घोर घटा-सी चारों ओर छा रही थी।

जब वह चलने लगे, बाहर पानी बरस रहा था। दोनों एक रिक्शा में बैठ गये। रिक्शावाले भागने लगे, नंगे-से, गंदे, काले, पशु, नाममात्र को मनुष्य की-सी शकल, और कामेश्वर गा रहा था—

'पी पी के चल दिये जिगर, सागर का जोश था,

जो दाग जम गये उन्हें गालिब उठाये कौन ?'

और गालियाँ उसके मुँह से बरस उठीं—सूअर, जल्दी चलो, जल्दी··समर! ओ समर ··कैसी थी नागिन, गर्म गर्म, मांसल, चुंबन···

लड़खड़ाते हुए कमरे में आकर कामेश्वर बिस्तर पर लुढ़क गया। समर वाश-बेसिन पर कै कर रहा था, उमड़ते दिल को रोकता, चक्कर खाता··

उआ · उआ··

कमरे में बदबू फैल गई।

---

[१९]

दूसरा गुड़ियाघर

रानी ने हरी को घूरकर देखा और कहा—तो तुम्हारा मतलब ? यदि तुम मुझे इतने पत्र लिखना चाहते हो और लिखते नहीं, तो इसमें मेरा क्या दोष है ?' वह मुस्कराई। हरी ने देखा वह उसे विशेष गम्भीरता से नहीं ले रही है। जो कुछ वह कहता है उसे हँसी-हँसी में टाल देना चाहती है।

रानी ने ही फिर कहा—तुम्हें अपने ऊपर शायद विश्वास नहीं रहा है। मैं तो देखती हूँ, तुम्हें आजकल सभी बना रहे हैं। मालूम है तुम्हें, मैक्सुअल तुम्हारे विरुद्ध क्या कर रहा है ?

'नहीं तो'—हरी ने कोट का कालर उठाते हुए कहा—मैं तो कुछ भी नहीं जानता।

'अद्भुत !'—रानी ने विस्मय से कहा—वीरेश्वर ने कुछ नहीं कहा ?

'नहीं तो' उसने रटे हुए शब्दों का-सा उत्तर दोहरा दिया जिसको सुनकर रानी हँस पड़ी।

उसने कहा—वीरेश्वर ने कला से कहा है, कला ने इंदिरा से, इंदिरा ने मुझसे। बहुत मुमकिन है कामेश्वर भी जानता हो, यानी कालेज में हर कोई जानता हो, लेकिन तुम नहीं जानते।'

हरी ने किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर आँखें उठाईं। वह घबरा गया था। क्या कहना चाहती है यह लड़की ? ऐसा कौन-सा गम्भीर रहस्य इसके सामने खुला पड़ा है जिसका केंद्र मैं हूँ और मुझे कुछ भी नहीं मालूम। उसने आतुर होकर कहा—'तो कहतीं क्यों नहीं ?'

'कहूँ क्या ?'—रानी ने चिढ़ाते हुए कहा—'एक बार चुनाव में तो तुम्हारी इतनी अच्छी जीत हुई कि मैं गर्व से फूली न समाई। तुम तो सबसे कहते फिरते

थे कि मैं लिटेररी सेक्रेटरी हो गया हो गया, वीरेश्वर मेरे साथ है, वह मेरा दोस्त है। ऐसे ही होते हैं दोस्त? कमल ने क्या तुम्हें कम उल्लू बनाया? और अब फिर वे तुम्हारे विरुद्ध षड्यंत्र रच रहे हैं।'

'रानी!'—भय से हरी चीख़ उठा। 'क्या कह रही हो तुम? अब वह आख़िर क्या करना चाहते हैं? क्या वे मुझे कालेज में भी नहीं रहने देंगे? वीरेश्वर! मैं नहीं जानता यह सब लोग मेरे इतने विरुद्ध क्यों हैं?'

'इसलिए कि तुम सीधे हो, तुम्हें बहका देने में किसी को देर नहीं लगती। कमल सज्जाद के खिलाफ़ जो अपनी नीच दलबंदी कर रहा है, उसमें कोई भी भला आदमी साथ नहीं देगा। वीरेश्वर भी उससे अलग हो चुका है। वह तुम्हें सज्जाद के पक्ष में खींचना चाहता है। इसी लिए दोनों अपने अपने दाँव लगा रहे हैं और तुम चूँकि कालेज में प्रसिद्ध होना चाहते हो, इन छोटी-छोटी बातों में अवश्य फँस जाओगे और दोगले क़रार दिये जाओगे। क्या मैं ग़लत कह रही हूँ? तुमने कभी जीवन की गभीरता को नहीं परखा। तुम्हारी वेदना तुम्हारी मानसिक निर्बलता ही रही है।'

हरी अप्रतिभ हो गया। उसने क्रोध से कहा—न मैं वीरेश्वर की बातों में आऊँगा, न कमल के चक्करों में फँस सकूँगा। मुझे तुमसे मतलब था। लेकिन तुमने जो इतनी सरलता से मुझे दूध की मक्खी की तरह निकाल फेंका वह मेरे लिए एक महान शिक्षा है। और मुझे उल्लू बनानेवाली से मैं यदि कहूँगा कि वह और कुछ नहीं, और ईसाइयनों की तरह ही चालबाज़ है, तो वह क्रोध करेगी और प्रेम तुरंत घृणा के रूप में बदल जायगा।

'लेकिन यह ग़लत है'—रानी ने बात काटकर कहा—'मैं तुम्हें अब भी प्यार करती हूँ।'

हरी ठठाकर हँस पड़ा। उसकी इस हँसी में उसके हृदय का कितना भारी हाहाकार छिपा था, रानी ने उसे बहुत थोड़ा अनुभव किया। उसके इस अविश्वास से वह सिहर उठी। उसने कहा—'मैं जानती हूँ, तुम विक्षुब्ध हो, तभी इस प्रकार हँस उठे हो। किंतु एक बात पूछती हूँ, उत्तर दोगे?'

हरी ने सिर उठाकर उसकी ओर प्रश्न-भरी आँखों से देखा।

'क्या तुम्हारा प्रेम अपने आपमें पूर्ण है, समाज में स्वतंत्र है?'—'रानी

पूछकर उसको निर्निमेष दृष्टि से देखती रहो। जिससे हरी की बुभुक्षित आकांक्षा कुंठित हो गई। उसने उसी भाव से उत्तर दिया—'मेरा प्रेम यदि केवल तृष्णा है, केवल आनंद की धारणा है, तो भी तुम्हें उसका अपमान करने का कोई कारण नहीं। क्या वह तुम्हारे लिए भी तृष्णा और आंगिक सुख की भावना मात्र नहीं है? क्या तुम समझती हो, मैं कुछ अधिक प्राप्त कर सकूँगा और तुम नुकसान में रह जाओगी? यदि तुम्हारा विचार इतना जघन्य है, तो तुम वास्तव में अपने स्वत्वों को वेश्या का अधिकार मात्र समझती रही हो।'

'हरी!'—रानी चिल्ला उठी—तुम शायद होश में नहीं हो। उचित अनुचित का तुम्हें तनिक भी ध्यान नहीं रहा है। मैं तुम्हें क्षमा करती हूँ।'

हरी जो यह जानकर प्रसन्न हुआ था कि रानी तिलमिला गई है, इस विचार से पुनः अवरुद्ध हो गया कि वह अपने आपको उसकी तुलना में इतना उच्च समझती है कि उसमें क्षमा करने की महत्त्वाकांक्षा होना अनिवार्य है। रानी ने कहा—'हरी!' उसके स्वर में कोमलता थी, दृढ़ता थी, और निरासक्ति का एक ऐसा गहन जाल था जो हरी शीघ्र ही समझ नहीं सका। उसने आँखें उठाकर कहा—तुम समझदार हो, मुझे तुमपर विश्वास है, मैं जानती हूँ तुम मेरी हानि करना नहीं चाहते, क्योंकि तुम स्वय समझदार हो। किंतु क्या यह सब ठीक हो गया। जो है सो तो है ही। फिर वह होंठ भींच गई जैसे उसने बलात् कुछ भीतर ही रोक लिया जो शायद तनिक-सी असावधानता से बाहर निकल आता। स्त्री वही कहना चाहती है जिसमें उसकी बात अद्भुत लगे, जैसे बाजीगर 'अब्बा' करके मुँह से बड़े-बड़े लोहे के गोले निकाल देता है। किंतु वास्तव में स्त्री इतनी बेसमझी की बात करती है कि वह उसे स्वयं नहीं समझ पाती। उसे जो यह विश्वास व्यर्थ हो हो जाता है कि वह जो कर रही है, सब ठीक है, क्योंकि उसका मान बहुत उच्च है, वह पवित्र है, यही सब मूर्खताओं का मूल है। वह बहती है, डूबने लगती है इसी से बचानेवाले की गर्दन पकड़कर उसे भी तैरने से असमर्थ कर देती है। उसके बंधन ही उसकी समस्त अधूरी तृष्णा के मानसिक व्यभिचार हैं।

रानी कहती गई—'लेकिन······लेकिन तुम्हीं बताओ हरी, तुम स्वयं समझदार हो। यह ग़लत है, मैं इतना ही जानती हूँ। यह जो है वह तो है ही, उसको तो बदला नहीं जा सकता।'

हरी का क्रोध दुःख में बदल गया। उसने देखा कि यह स्त्री जो अपने आपको बहुत बढ़ा-बढ़ाकर जबर्दस्ती अपनी ही समझ में इतना महत्त्वपूर्ण बना रही है, वास्तव में वह और कुछ नहीं, इसकी दयनीय अवस्था है। यह कुछ नहीं, केवल एक गाय के समान है। ईसाई होने की जो स्वतन्त्रता की भावना इसको नई तौर से रटाई गई है वह वास्तव में एक छलना है। यह उतनी ही पर्देदार है जितनी मुसलमान औरत और उतनी ही रूढ़ है जितनी हिंदू औरत। उस अंधकार में इसे एक निलायती तृष्णा मिल गई है जिसके कारण यह न घर की रही है न बाहर की।

हरी ने हँसकर उससे एक कठोर बात कहा—तुम मेरी राय में मैक्सुअल से शादी कर लो।

रानी क्रोध से काँप उठी। उसने कहा—तुम मेरा अपमान कर रहे हो?

हरी ने कहा—आप मेरी बड़ी इज्जत कर रहीं थीं।'

रानी की आँखें तमतमाई-सी लाल हो गईं। उसने भर्राई आवाज़ से कहा—घृणा, हरी, घृणा। इस संसार में घृणा के अतिरिक्त और कुछ नहीं। तुम मेरी परवशता को जानकर मुझे मुक्ति की छलना में नहीं रहने देना चाहते?

हरी ने कहा—'मुझे क्षमा करो' किंतु बात ने जैसे कोई प्रभाव नहीं डाला।

रानी ने कहा—मैं मैक्सुअल से घृणा करती हूँ और अंतःकरण से घृणा करती हूँ। उसने मेरा सुखस्वप्न चकनाचूर कर दिया है। उसने मुझे बदनाम किया है। उसने मेरे पिता को गुमनाम चिट्ठियाँ लिखी हैं। लेकिन मैं इससे नहीं चिढ़ी, मैं विक्षुब्ध हूँ उसकी विजय की अनुभूति पर। वह जो यह समझता है कि इन सबसे उसने मुझे कुचलकर अपने को हावी कर दिया है, यही मैं नहीं सह सकती। उसने ईसाइयों को इकट्ठा करके उन्हें बताया है कि वे लोग घृणित हैं और ईसाइयों ने जो उसके घृणा के प्रचार को, सांप्रदायिकता के दायरे में, स्वीकार किया है, अपनी रक्षा का एकमात्र न्याय समझकर मैं उसी पर कुठाराघात करना चाहती हूँ। इसके लिए मुझे अपना सुख त्याग देना होगा। मुझे तुमसे सबंध तोड़ देना होगा, तभी मैं अपने कार्य में सफल हो सकूँगी।'

हरी ने व्यंग्य से पूछा—तो महारानी क्या करेंगी?

रानी ने कहा—जो करूँगी वह तो तुम भी देखोगे। जो तुम पुरुष होकर नहीं कर पाये वही मैं स्त्री होकर भी कर दिखाऊँगी। स्त्री की शक्ति क्या है, यह तुम भी

देख लेना। हरी का मन नहीं भरा। उसकी अजीब हालत हो गई। उसने ऐसे देखा जैसे यह लड़की अपने आपको आखिर समझती क्या है। रानी उसकी इस अवस्था को देखकर मन ही मन हर्षित हुई। उसने कहा—'मैक्सुअल ने जो मेरी ज़िंदगी हराम कर दी है, इसका बदला मैं उसकी ज़िंदगी हराम करके लूँगी। जो तीर उसने मुझपर चलाये हैं, मैं उन्हीं को उनके विरुद्ध कर दूँगी। जो कुत्ते उसने मुझपर छोड़े हैं वह उसे ही काटने को दौड़ पड़ेंगे और इसके लिए मैंने अपने दिमाग में एक नक्शा बनाया है। जिस तरह क्रान्ति करने के लिए षड्यन्त्र होता है उसी तरह मैं भी एक कुचक्र रचनेवाली हूँ। मैंने अपने काम के लिए एक आदमी चुना है और वह ऐसा है जो यदि मेरे वश में आ गया, तो इधर की उधर कर देगा।

हरी ने कहा—वह कौन है जिसपर तुम इतनी दृष्टि लगाये बैठी हो? और वह तुम्हारे वश में आयेगा ही क्यों?

रानी हँस पड़ी। उसने आँखें नचाकर कहा—मैं उससे प्रेम जो करूँगी। तुमने मुझे सिखा जो दिया है, एक बार।

हरी ने उद्विग्न होकर पूछा—वह है कौन?

'वह? विनोद को जानते हो?' रानी ने पूछा—वह इन चक्करों में नहीं पड़ता। लेकिन मुझे आशा है, उसे मैं पागल बना दूँगी। तब जो मैं आशा करती हूँ वही पूर्ण होगी।

'और यदि वह तुमसे सचमुच प्रेम करने लगे तो?'—हरी ने आँखें विस्फारित कर देखा?

'तो उसे आध्यात्मिक बनाने का प्रयत्न करूँगी। आंगिक प्रेम नश्वर होता है न? जैसा हमारा तुम्हारा। आध्यात्मिक होने से प्रेम चलता है।' वह हँसी, उसके घुँघराले बाल काँप उठे। हरी ने देखा, उसके सामने एक रहस्य खड़ा था। जो प्रतिशोध के लिए कितना पागल है, संसार को झूठ बोलकर बनाने के लिए कितना व्यग्र है; उच्छृंखलता की सीमा को पार ही करना चाहता है।

रानी ने ही कहा—जिस दिन विनोद मुझपर हावी होने लगेगा, मैं उससे संबंध तोड़ दूँगी।

हरी ने उस भय की आशंका से विचलित होकर कहा—तो विनोद का क्या हाल होगा?

रानी ने मुस्कराकर कहा--होगा क्या ? कुछ नहीं। मैं तो बदनाम हूँ, ही और बदनाम हो जाऊँगी। मुझे किसी से क्या लेना ? लेकिन विनोद को जो ठेस पहुँचेगी वह मेरा सबसे बड़ा संतोष होगा। वे सब मेरे अपमान से प्रसन्न हुए हैं, उनके अभिमान के चूर होने पर क्या मुझे प्रसन्न होने का अधिकार नहीं है ? इसमें मैक्सुअल तो कहीं का न रहेगा ! उसने निश्चय से सिर हिलाया—'वह तो बिल्कुल निरीह, घृणित साबित हो जायेगा। उसकी इतनी हिम्मत कि उसने मेरी ओर उँगली उठाई है ? विनोद का दिल टूटेगा, मैं हँसूँगी। ईसाइयों पर चोट होगी, मेरे लिए यही एक तृप्ति का कारण होगा।' फिर चुप रहकर पूछा--'राजमोहन को जानते हो ?'

हरी ने कहा--जानता तो हूँ।

'उसकी विनोद से मित्रता है। वह अपने सिद्धांतों पर अटल है। वह प्रेम भी नहीं करता, क्योंकि उनके पास समय नहीं है। वह भी ईसाइयों से घृणा करता है।'

हरी ने पूछा—क्यों ?

रानी ने हँसकर कहा—क्योंकि पहले वह जिस लड़की को चाहता था, वह मैक्सुअल की बहिन थी। इसी मैक्सुअल के कारण सब समाप्त हो गया। वह भी काम देगा।

वह हँस पड़ी। हरी ने देखा, वह वीभत्स थी। क्या सोच रही है वह यह सब ? अपनी ही जड़ों पर आघात करके यह कहाँ गिरेगी, इसका इसे कोई ज्ञान नहीं है, विनोद के विरोध की गुरुता इसकी समझ में नहीं आई है।

रानी ने आकाश की ओर देखते हुए कहा—मैं घृणा के सहारे जिऊँगी, क्योंकि मुझे यही सिखाया गया है। मेरे पिता धर्म के लिए नहीं, पादरी के सिखावे में आकर धन के लिए ईसाई हुए थे। उसके बाद भी अंगरेज पादरी ने उन्हें कभी बराबरी का दर्जा नहीं दिया। यह ईसा का उपदेश नहीं है।

रानी ने सांस लेकर फिर कहा—दुःख कायर करते हैं। अभी तुम्हारे सामने समस्त जीवन पड़ा है। उसे बरबाद क्यों करते हो ? जीवन में यदि कभी तुम्हें मेरे स्नेह की आवश्यकता पड़े, तो मुझे याद करना। मैं सदा तुम्हें मदद दूँगी, या कहो, तुम्हारी सेवा के लिए तत्पर रहूँगी। क्रोध से तुम मेरा क्या, अपना भी कोई लाभ नहीं कर सकते।

हरी ने सुना। उसका हृदय भीतर ही भीतर जलकर भस्म हो गया, जिसके भीतर हड्डियों की तरह स्मृतियों का एक ढांचा पड़ा था। एक दिन वह स्मृतियाँ सजीव थीं, उस दिन जीवन स्वर्ग था, और आज ? उसने बायें हाथ से अपनी आंखों को ढँक लिया और उसके मुँह से निकला—'बर्बर !'

रानी ने सुना और उसकी आंखों से दो बूँदें टपक पड़ीं। हरी न देखा और विस्मय से आँख फाड़े देखता रहा।

---

[२०]

निरीह

बाढ़-पीड़ितों को सेवा करने के लिए कालेज के विद्यार्थी गाँव में डेरा डाले हुए हैं। काम करने के बाद विश्राम करने को जगह है। कई कुर्सियाँ पड़ी हैं। एक बड़ी-सी बीच की मेज़ ढलती धूप में चमक रही है। एक ओर एक स्टूल पड़ा है जिस-पर वाशबेसिन रखा है। कपड़े और टोप टाँगने की एक खूँटी भी वहीं रखी है।

वीरसिंह आकर बेसिन के पास खड़ा होकर चिल्ला उठा—'महाराज, हाथ धुला जाओ।'

बुड्ढा महाराज आकर लोटे में से पानी डालने लगा। अभी वह हाथ धो ही रहा था कि वीरेश्वर ने आगे बढ़कर कहा—महाराज, मेरा भी हाथ धुला दो और इनका भी।

वह कला थी।

महाराज पानी डालने लगा। वीरेश्वर ने कहा—बड़े भाई, ज़रा पानी धीरे-धीरे डालो।

'अच्छा बाबूजी।'

'लाओ'—वीरेश्वर ने पूछा—'लाये हो? लाओ-लाओ।' और तौलिया लेकर बोला—मिस कला, इजाज़त हो तो मैं······

'ज़रूर-ज़रूर'—वह मुस्कराई—'आप तकल्लुफ़ भी कर लेते हैं?'

वीरेश्वर ने कहा—वीरसिंह! तुम्हें तो शायद फिर जाना है?

'जाना तो तुम्हें भी है',—वीरसिंह ने चोट की।

'मगर मैं'—वीरेश्वर कहने लगा—'जा कब रहा हूँ? न भाई, बहुत थक गया हूँ, अक्ल चकरा गई है।'

'इतने ही से?'—कला ने पूछा।

'इतने ही से !' वह चौंक पड़ा, 'कह दिया न आपने ? मैं तो जानता था कि आप यही कहेंगी। मगर आपको यह भी मालूम है कि हमें क्या-क्या करना पड़ता है ? जहाँ आप ज़ख़्मी से दो मीठी बातें करके पट्टी-वट्टी बाँधती हैं वहाँ हमें स्टेचर उठाना पड़ता है। या ख़ुदा, वीरसिंह, वह कितना भारी था कमबख़्त ! सूअर से तो उसके बाल थे और प्रोफ़ेसर मिसरा को देखकर समझा, डाक्टर साहब आ गये हैं। नहीं भाई, मैं नहीं जाऊँगा।'

वीरेश्वर एक कुर्सी पर डटकर बैठ गया। वीरसिंह कहने लगा—अच्छा तो आप बैठिए मिस कला ! मैं अभी हाज़िर हुआ।

कला ने धीरे से कहा—अच्छा, जल्दी आइएगा न ?

वीरसिंह चला गया। कला मेज़ पर ही बैठ गई और वीरेश्वर को देखने लगी। वीरेश्वर ने जेब से सिगरेट का पैकेट निकाला और सिगरेट मुँह से लगा ली। हाथ बढ़ाकर वीरेश्वर बोला—आप पीती हैं ?

लाल रंग उसके गालों पर फैल गया। वह कह उठी—जी नहीं, पीती तो नहीं मगर...

एक सिगरेट निकालकर उसने मुँह से लगा ली।

वीरेश्वर ने सिगरेट जलाकर दियासलाई उसकी तरफ़ बढ़ाकर कहा—लीजिए।

कला ने सिगरेट मुँह से निकालकर कहा—आप लोगों को तो कुछ भी नहीं मालूम। लड़कियाँ कहीं सिगरेट पीती हैं ? और वह हँस पड़ी। उसकी हँसी का छोर पकड़कर वीरेश्वर कहने लगा—ओहो, तो आप लड़की हैं। लड़कियाँ तो पर्दे में रहती हैं, फिर आप कैसे बाहर हैं ? अच्छा समझ गया, यह morality के खिलाफ़ है ? लाइए, वापिस कर दीजिए, डेढ़ पैसे की आती है।

उसने सिगरेट लेकर रख ली, मगर कहता गया—लेकिन लड़कियाँ क्यों नहीं पी सकतीं ?

'बस अब रहने दीजिए'—सुनकर वह बोल उठा—'अच्छा।' दोनों चुप हो गये। नेपथ्य में ही कहीं सुदूर आँखों के परे एक रोने की आवाज़ गूंज उठी। इस आदमी को अपना घर लुट जाने पर कितना अफ़सोस होता है ! वह समझता है कि जो उसके बाप-दादा ने बनाया है वही अच्छा है, उसका स्वयं बनाया घर अच्छा नहीं होगा !

रोना उस सन्नाटे में भयंकरता से गूँज उठा। कला सिहर उठी।

ऊँटों पर दो सवार रेगिस्तान में जाते हैं। वहाँ एक तूफ़ान उठता है। अरब के उस तूफ़ान की आँधी से कोई नहीं बचता। तब सवार देखा करते हैं। उसके बाद जब क्षीण चाँद निकल आता है और सन्नाटा छा जाता है तब दर्दनाक आवाज़ें उस खामोशी को भेदने लगती हैं और सवार मदद करने को ऊँटों पर से उतर पड़ते हैं। कला ने दर्द भरी आवाज़ में कहा—कौन रो रहा है?

किंतु वह चौंक पड़ी। वीरेश्वर कह रहा था—रो रहा है? रो रहा होगा कोई, जिसका कोई मर गया होगा! आपको किस बात का अफ़सोस है?

'आपको किसी की मौत पर अफ़सोस नहीं होता?' वह पूछ बैठी।

वीरेश्वर निर्विकार बनकर बोला—क्यों? मौत पर अफ़सोस क्यों होने लगा? जब Organic cells काम करना बंद कर देते हैं, तो आदमी मर जाता है। एक ज़माना वह भी था जब मौत ही न थी। एक रंध्र का एमीबा मरता ही न था।

'लेकिन'—कला ने उदास होकर कहा—'आदमियत भी तो कोई चीज होती है?'

'आदमियत अगर रोना है, तो वह आपकी जायदाद बने। ज़ख़्मी को दवा पिलाने तक मेरी आदमियत है और मरने पर फूँक देने में।'

'तो आप मुहब्बत जैसी चीज़ भी नहीं मानते?'

'जी, मानी तो वह चीज़ जाती है जो असल में होती है'—उसने फूँककर मुँह के चारों तरफ़ एकत्रित धुआँ इधर-उधर उड़ा दिया।

'ज़मीन सूरज के चारों तरफ़ घूमती है, चाँद ज़मीन के गिर्द घूमता है, तो कहिए कि सूरज से जमीन को इश्क हो गया है। खिंचाव प्रकृति का एक नियम है, औरत और मर्द भी इसी तरह एक दूसरे को चाहते हैं, वह बाप बनना चाहता है वह मा बनना चाहती है।'

कला प्रतिवाद करने लगी—'लेकिन मा तो अपने बच्चे की तरफ खिंची रहती है?'

वीरेश्वर मुस्कुराया। 'वह ख़ुदगर्ज़ी है। मिस कला, आप अपने हाथ को चाहती हैं, मा बच्चे को चाहती है। वफ़ादारी, प्यार, खिंचाव और नाज़ुकदिली निकाल दीजिए और फिर बताइए मुहब्बत क्या है?

कला हँस पड़ी। उसने कहा—हाथ, पाँव, आँख, कान, नाक निकाल लीजिए और कहिए कि आदमी क्या चीज़ होती है ?

'नहीं मिस, आदमी एक भौतिक पदार्थ है और आपका प्रेम केवल एक विचार है, एक वासना है। मुझे बताइये युवती युवक एक दूसरे के हम उम्र क्यों खोजते हैं प्रेम एक क़ायदा है और आप व्यर्थ बात का बतंगड़ कर रही हैं।'

'तो आप यहाँ आये किसलिए हैं ? हमदर्दी दिखाना तो दूर रहा, बेकार ही एक इल्लत और मोल ले ली।'

'आप मेरा मतलब नहीं समझीं। मरते सब हैं, मगर बाद में, ग़रीबी में मरना बुरा है···फिर वह कुछ सोचते हुए बोला—और बुरा अच्छा भी कुछ नहीं होता, लेकिन यह न्याय नहीं है।'

'तो आप'—कला पकड़ बैठी—'ग़रीबों के लिए नहीं, वरन् अपने रुपये पैसे के पाप का प्रायश्चित्त करने आये हैं ?'

वीरेश्वर कह पड़ा—ऊँहुं, आप समझी नहीं।

'नहीं समझी'—कला बिगड़कर बोली—आप तो बड़े कमाल की बात कह रहे हैं न ? साफ़ साफ़ कहिए कि आप उनसे नफ़रत करते हैं।

'बिल्कुल ग़लत समझा आपने। आप नफ़रत और मुहब्बत दो चीज़ बिल्कुल अलग-अलग मानती हैं, मैं दोनों में ज़रा-सा फ़र्क़ देखता हूँ।'

'जी, वह क्या ?'

'ठीक पूछा आपने। देखिए, प्रेम में आदमी दूसरे को ज़्यादा समझने लगता है और घृणा में अपने आपको ज़्यादा समझता है। बात वही है। वास्तव में न कोई बात सच्ची है, न झूठी। एक बाज़ार-भाव है, एक असली कीमत। असल कीमत के ही चारों तरफ बाज़ार भाव घूमता रहता है। जब मँजनू लैला में मिल गया था, तब वह दोनों दो न रहकर एक हो गये थे। मँजनू को लैला ही लैला नज़र आती थी, यानी लैला होकर भी उसका ही अपनापन निखर आया था, यानी कि अपने आपको कुछ ज़्यादा समझने लगा था। और नफ़रत में यह शुरू ही से हो जाता है। प्रेम प्रारम्भ होता है इच्छा पर और समाप्त होता है त्याग पर ; नफ़रत में भी यही होता है। अर्थात् एक घर जल चुकने पर छोड़ता है, तो दूसरा वैसे ही। युगों से

मनुष्य प्रेम-प्रेम कहकर अपने आपको धोखा देता आ रहा है। और घृणा अगर बुरी लगती है, तो इसी लिए कि आपने यह शब्द सदा बिना समझे बुरा मान लिया है।

साँझ आ रही थी। रोने की आवाज़ फिर अँधियारे की तरह बढ़ रही थी। कला कह पड़ी—'आप तो हैं पत्थर। मुझसे तो नहीं सुना जाता। मेरा तो दिल दहलता है।'

'दिल', वीरेश्वर कहने लगा—'यह क्या चीज़ होती है?'

कला ने बात काटकर कहा—रहने दीजिए रहने दीजिए। चलिए देख आयें। जाने किसपर क्या आफ़त पड़ी है, चलिए न?

वीरेश्वर ने उठकर कहा—चलिए। और घिरते अंधकार में दोनों एक तरफ़ बढ़ गये। दूसरी तरफ़ से दो लड़के आकर बैठ गये।

एक ने कहा—यार मैक्सुअल, मैं तो काम करते-करते तंग आ गया।

मैक्सुअल ने कहा—कोई फ़िक्र नहीं है, दोस्त! काम करने का सार्टिफ़िकेट तो मिल ही जायगा। सिगरेट दो न यार! उसने ऐसे कहा जैसे फिर ले लेना।

'जी हाँ, शुक्रिया' और उसने अकेले मुँह में सिगरेट लगा ली। एकाएक मैक्सुअल ने फुसफुसाकर कहा—मिसरा आ रहा है, मिसरा। बुझा दे बुझा।

प्रो० मिसरा ने मेज़ के सामने बैठकर अपनी सिगरेट जलाई और पुकार उठा—महाराज!

'जी बाबूजी, आया।'

शाहंशाह ने फिर कहा—चाय और टोस्ट! दोनों लड़के आदाबअर्ज करके वहीं बैठ गये। महाराज खाने-पीने का सामान रख गया।

मैक्सुअल ने कहा—काम तो ख़ूब चल रहा है।

प्रो० मिसरा ने सुना नहीं। वह चाय बनाकर प्याला उसकी ओर बढ़ाते हुए बोला—लीजिए।

'ओह थैंक्यू सर', कहकर उसने प्याला कृतार्थ होते हुए ले लिया। साथी के लिए कृतज्ञता दिखाने को शब्द ही नहीं रहे। वह दिल में मैक्सुअल को कोसने लगा।

मैक्सुअल ने फटा दामन सीने की कोशिश की—उम्मीद है, यहाँ का काम कल तक ख़त्म हो जायगा।

प्रोफ़ेसर मिसरा में चाय पीकर जान पड़ गई। कहने लगे—जरूर ! अबकी ज़्यादा काम सिर्फ़ दो ने किया है। कला और वीरसिंह। बड़ी हुशियार लड़की है।

मैक्सुअल ने दबी ज़बान से कहा—'जी' और चुपचाप चाय पीता रहा। उसका कहीं कोई ज़िक्र नहीं !

फिर एकाएक उसे कुछ ध्यान आया। वह बोला—मगर वीरेश्वर···

प्रोफ़ेसर चमक उठा। 'किसकी बात छेड़ दी आपने भी ? वह कुछ करने धरने के हैं ? उन्हें तो कई साल हो गये न कालेज में ?'

'जी हाँ'—मैक्सुअल ने सिर हिलाया—'सात साल का तजुर्बा है। ज़रा मुँह-फट हैं ...'

'जी नहीं, तमीज़ उनमें ज़रूरत से ज़्यादा है।' प्रोफ़ेसर हँसा, उसकी हँसी में लड़कों की बनावटी हँसी डूब गई।

कहीं से वीरेश्वर चुपचाप आकर बैठ गया। उसके मुँह की सिगरेट ने छिपना कभी नहीं सीखा था। प्रोफ़ेसर पर निगाह पड़ते ही वह सिगरेट मुँह से निकाले बिना बोला—'हलो, सर ! कहिए मिजाज़ तो अच्छे हैं ?'

प्रोफ़ेसर ने बात करते हुए कहा—आइए आइए। इनायत है बड़े लोगों की। आप तो एकदम आस्मान से टूट पड़े ?

वीरेश्वर हँसा। उसने कुछ भी कहा नहीं। उसकी हँसी एक बहुत बड़ी बत्तमीजी बनकर फैल गई।

प्रो० ने गंभीर होकर पूछा--मिस कला कहाँ है ?

'वहीं कहीं पट्टी-वट्टी बाँध रही होंगी।'

प्रोफ़ेसर ने कहा—आप और वह तो साथ-साथ गये थे न ?

'जी हाँ'—वीरेश्वर ने कहा—'देखा था आपने ?' आपने के पीछे के प्रश्नसूचक चिह्नों की गणना करना उसके स्वर के व्यंग्य से ही हो सकती है। केवल एक प्रश्न और वह बहुत बड़ा।

'लड़कियाँ . ' प्रोफ़सर ने कुछ कहना चाहा, किंतु वह बात काटकर बोला—ठीक है, आपका मतलब मैं समझ गया। मैं भी यही सोचता था। देखिए न ? कालेज में पढ़नेवाली लड़कियों की कितनी आफ़तें हैं ! अगर वह किसी से नहीं मिलती-जुलती, तो वह बनती है, अपने आपको कुछ समझती है, और अगर सबसे मिलती-

जुलती है तो उसका चाल-चलन खराब है, वह आवारा है और अगर खास-खास आदमियों से मिलती-जुलती है, तो दाल में काला नज़र आने लगता है। वाह रे हिंदुस्तान ! बलिहारी है तेरी लड़कियों की। तिसपर प्रोफ़ेसर चाहते हैं कि लड़कों से लड़कियाँ बिल्कुल बात न करें।

'क्योंकि...'

वीरेश्वर उसे टालकर कहता गया—'मगर व्यक्तिगत रूप में मैं लड़कियों को परमात्मा की कोई चतुर रचना नहीं समझता। वह भी आपस में फोश बकती हैं मगर लड़कों के सामने भींगी बिल्ली बन जाती हैं। जैसे मा के सामने जाकर कालेज के हज़रत लड़के। क्यों क्या राय है आपकी ?

मैक्सुअल इस चुप्पी को न सहकर बोल उठा—वह तो होगा ही, क्योंकि मर्द मर्द है और औरत औरत ही है ?

वीरेश्वर ने कहा—ख़ूब कहा न आपने ? मैं जानता था। मुझे मालूम था।

प्रोफ़ेसर ने कहा—तो आप प्रेम जैसी चीज़ से भी जानकारी रखते हैं ?

वीरेश्वर घिरघिराकर कह उठा—प्रेम ? क्यों, आप बुरा समझते हैं ? मैं एक दिमागी सतह तैयार कर लेना चाहता हूँ, क्योंकि गुलामों को प्रेम में पड़कर गुलामी को भूल जाने का कोई अधिकार नहीं है। ख़ैर जाने दीजिए। अरे अँधेरा हो गया। अरे भाई महाराज, कुछ रोशनी-ओशनी का इंतजाम करो।

महाराज ने कहा—अच्छा बाबूजी।

कुछ देर सन्नाटा घूमता रहा। मिस लवंग ने अचानक ही आकर कहा—'नमस्ते !'

सब चौंककर बोल उठे—'ओहो, नमस्ते, आइए, आइए।'

वीरेश्वर ने कहा—कहिए, मिजाज़ अच्छे हैं ?

'कृपा है आपकी—कहती हुई वह एक कुर्सी पर बैठ गई।

मैक्सुअल ने टाई की गाँठ ठीक करते हुए पूछा—अब आपकी तबियत तो ठीक रहती है न ?

लवंग हँस पड़ी, मानों उसे यह तकल्लुफ़ भाता है। वह ऐसे आदमियों को पसंद करती है जो उसके बैठने के बाद बैठें, उसके खड़े होने पर स्वयं खड़े हो जायँ।

वीरसिंह भन्नाता हुआ घुस आया। उसने कुछ नहीं कहा। महाराज चाय की

दूसरी केटली लाकर रख गया। उसने दो कप बनाकर, एक लवंग की तरफ़ बढ़ाते हुए कहा—लीजिए।

लवंग ने मुस्कराकर कहा—शुक्रिया।

कुछ देर चुप्पी खेलती रही। तब लवंग वीरसिंह से कहने लगी—अब तो आप सेवा कर रहे हैं न?

'जीहाँ'—उसने विश्वास से कहा—'प्रयत्न है।' और एकदम जोश में आकर कह उठा—'मैं एक नया समाज बना देना चाहता हूँ। अब देखिए, आप एक अछूत हैं......।'

लवंग ने चौंककर कहा—जी नहीं, मैं तो—

वीरेश्वर हँसने लगा। मगर वीरसिंह ने बात काटकर कहना जारी रखा,—'मान लीजिए न? कुछ हर्ज है? तो आपको भी मैं एक ब्राह्मण के साथ बिठाना चाहता हूँ। मैं एक ऐसा समाज बना देना चाहता हूँ जहाँ बराबरी हो, जहाँ हृदय और शरीर की शक्तियाँ एक दूसरे पर निर्भर हों।'

लवंग ने कहा—भूलिए नहीं मिस्टर वीरसिंह सूअर फिर भी सूअर ही रहेगा।

वीरसिंह तिनक गया। वह चेतकर बोला—लेकिन एक मेहतर और एक अंगरेज़ के सूअर में कितना फ़र्क़ होता है। मिस लवंग, अगर जान पड़ जाये, तो पत्थर बोल सकता है।

'अगर ही का तो सवाल है।' वह चीख उठी।

वीरसिंह ने कहना चाहा—'सुधार', किंतु वीरेश्वर बिना सुने कहने लगा—कितने घंटे सोते हो वीरसिंह? नींद तो पूरी हो जाती है न? क्यों मिस लवंग, आप इन बातों में कुछ ख़ास दिलचस्पी नहीं लेतीं?

'क्यों नहीं?'—लवंग ने कहा—'दिलचस्पी तो दिल से ली जाती है न?'

वीरसिंह बड़बड़ाया—'और यह हाथ कब काम आते हैं?'

लवंग हँसी और हँसते-हँसते कहने लगी—'क्या बात है! ठीक ही है, ठीक ही है। लेकिन क्या बात है कि आप समाजवादियों की तरह 'हम' न कहकर 'मैं' कहते हैं?'

वीरेश्वर ने कहा—'Beautiful! (सुंदर)।'

प्रोफ़ेसर ने जवाब दिया—'अभी यह उतने बक्की नहीं हुए हैं।' फिर कुछ रुककर उसने कहा—चलिए मिस लवंग, आपको भी दिखलायें।

वीरेश्वर ने उसे पक्का किया—'ज़रूर, ज़रूर !'

सबके चले जाने पर वीरेश्वर और वीरसिंह उस बढ़ते अँधियारे और भींगी हवा में रह गये। वीरेश्वर ने कहा—थक गये हो वीरसिंह ?

वीरसिंह चिढ़ा-सा बोल उठा—थका तो नहीं हूँ मगर…

वीरेश्वर ने टालते हुए कहा—रहने दो।

वीरसिंह ने दृढ़ता से कहा—वीरेश्वर, ज़िंदगी इतना आसान खेल भी नहीं है, जितना तुम समझते हो ?

'क्या मतलब ?'—वीरेश्वर पूछ उठा।

'तुम्हें मालूम है, सब लोग तुमसे नफ़रत करते हैं।'

'क्यों ?'

'क्योंकि तुम्हें दूसरों की कमज़ोरियों से खेलने में मज़ा आता है। शायद तुम कहोगे, तुम्हें इन बातों की परवाह नहीं है।'

'नहीं, भला मैं ऐसा क्यों कहने लगा ? तुम पूरी बात तो कहो।'

'क्या तुम समझते हो कि कला तुम्हें चाहती है ? लेकिन मैं तुम्हें बता दूँ कि वह तुमसे नफ़रत करती है।'

वीरेश्वर हठात् कह उठा—'वह तो मुझसे कह चुकी है यही बात।'

लवंग लौट आई। वीरसिंह ने कहा—कहिए कैसे लौट आईं ? थक गईं क्या ?

लवंग ने कहा—जी हाँ।

वीरसिंह चलते चलते बोला—'अच्छा, नमस्ते।'—लेकिन लवंग ने ध्यान न दिया। वह वीरेश्वर से कह रही थी—मिस्टर वीरेश्वर, आप समझते हैं कि कला को आप इस तरह अपने वश में कर लेंगे। मगर जो हमदर्दी नहीं दिखा सकता वह किसी की सहानुभूति क्या पा सकेगा ?

'मैंने आपका मतलब समझा नहीं। साफ़-साफ़ कहिए।'

'आप बुरा मान जायेंगे।'

'क़तई नहीं।'

'तो आप समझते हैं कि कला को आपकी बातचीत अच्छी लगती है ?'

'बुरी लगती है, ऐसा तो उन्होंने कभी कहा नहीं न ?'

कहने ही से सब कुछ होता है क्या ? आप इस तरह खिचे रहने का ढोंग करके समझते हैं कि वह आपकी तरफ़ खिच आयेगी ? एक बात पूछूँ ?'

'ज़रूर !'

'आप इतना बनते क्यों हैं ?'

'बनता हूँ !'

चारों ओर फिर कोलाहल मच उठा। लवंग ने चौंककर पूछा—'क्या हुआ ?'

वीरेश्वर ने निर्लिप्त होकर कहा—कौन जाने ?

इतने में कला को स्ट्रेचर पर लिटाये हुए वीरसिंह आदि ले आये। वीरसिंह हाँफ रहा था। उसने साँस इकट्ठी करके कहा—वीरेश्वर ! कला के बायें कंधे पर कुछ ईटें गिर पड़ीं। मैंने इनसे पहले कहा था कि वे वहाँ न जायें।'

वीरेश्वर का गंभीर घोष कूक उठा—'कला ? बहुत चोट लगी है ?'

स्ट्रेचर ज़मीन पर उतार दिया गया। वीरेश्वर पास जा बैठा। कला ने आँखें खोल दीं।

एकाएक लवंग पूछ बैठी—मि० वीरेश्वर, आप इतने परेशान क्यों हैं ?

'जी ?' वीरेश्वर चौंक उठा—'कहाँ ? मैं तो उदास नहीं हूँ !'

वीरसिंह स्तब्ध खड़ा था। लवंग ने कहा—आपमें से किसी के पास पट्टी-वट्टी है ?

मैक्सुअल ने कहा—पट्टियाँ तो मिस लीला के पास रहती थीं। वह चली गई हैं यहाँ से दो मील दूर के गाँव धनरौली। फिर ?'

वीरेश्वर ने कहा—ले लीजिए न यह ?

और उसने स्कार्फ़ खोलकर दे दिया। झिलमिला रेशम कला के मस्तक पर रक्त से भींग गया, और इसके साथ ही वीरेश्वर उठकर अंधकार में चला गया।

महाराज ने आकर कहा—वीरेश्वर बाबू, रोशनी आ गई है। आज आप कैसे अंधेरे में घूम रहे हैं, पहले तो आपको रोशनी बिना चैन नहीं पड़ता था ?

प्रोफ़ेसर मिसरा ने विस्मय से देखा कि वह हँसता हुआ लौट आया। उसने कहा—मैं कुछ अचानक ही भूल गया था। और इसके साथ ही दियासलाई की सींक के छोर से उठी रोशनी में सिगरेट, माथा और नाक अँधेरे में चमक उठे। प्रोफ़ेसर

के हृदय का विद्वेष एक बारगी घुलकर बह गया। कैसी जली रस्सी की ऐंठ है! कैसे निर्बल लड़के हैं, इनसे बराबरी करना अपने आपका अपमान करना है···कुछ नहीं, केवल बातें और समाज में इनका कोई स्थान नहीं, कुछ नहीं, मा-बाप के बल पर ऐंठे, अपने को अफ़लातून समझनेवाले, बच्चे, मूर्ख···निरीह···दयनीय···

उसे पहली बार अनुभव हुआ कि वह उन सबके पिता की आयु का था, वह उसके लड़के थे···हठी, चंचल, और दुलार से बिगड़े हुए···

[२१]

मरीचिका

जब दरिद्रों को झोंपड़ी बनाते-बनाते पैसे मिल गये तब मध्यवर्ग के खंडहर-सुधार का काम छोड़कर तफ़रीह के लिए निकल पड़े। साँझ हो गई थी। आसमान और सुदूर क्षितिज पर सुंदर बादल छा रहे थे जिनपर डूबते सूर्य की किरणें मनोहर सोने-चाँदी की तस्वीरें चित्रित कर रही थीं। ठंडी-ठंडी हवा चल रही थी। उस ठंडी सिहरन में किसान थके-माँदे लौट रहे थे।

शहर में रूप होता है—साम्राज्यों का वैभव उसकी उच्च अट्टालिकाओं में छिपा रहता है; लेकिन नीचे ही तीव्र अंधकार कोनों में गुर्राया करता है। दूर-दूर तक फैलती छाया—गाँवों में मनुष्य केवल जीवित रहता है। वृद्ध अपने जीवन से बेज़ार हो जाते हैं, युवक अपनी भूख और वासनाओं को मिटाने की इच्छा में ही झुक जाते हैं, औरतों की छाती नाज़ करने के पहले ही ढल जाती है और बच्चे, गंदे, घिनौने से राह पर कुत्तों के साथ खेला करते हैं। मध्यवर्ग इस गाँव की झूठी सादगी पर मरता है। रईस वहाँ प्रकृति का सौंदर्य देखने जाते हैं। पर्वत का मनोरम दृश्य कौन नहीं चाहता? किंतु उसमें जो पशु प्रकृति की कठोर दया पर गुफ़ाओं में पलता है वह कभी सुखी नहीं होता।

कुत्तों ने कर्कश आवाज़ से भूँकना शुरू कर दिया था। गायें धूल उड़ाती हुई लौट चली थीं। भैंसों की हेड़ नहर के गंदे पानी में से निकलकर लकड़ी के कुँदों-सी सरक रही थीं। दस-दस बरस के बालक-बालिकाएँ पानी में कूद-कूदकर नंगे नहा रहे थे जो शहर के लोगों को देखकर छिपने की कोशिश करने के प्रयत्न में पानी में फिर से कूद जाते थे।

हवा से ऊँचे-ऊँचे खेत, जिनका कुछ भाग कटना शुरू हो गया था, सिहर उठते थे। यह नहर प्राण की धारा बनाकर गाँव में लाई गई थी, किंतु ज़मींदार के

कारिन्दों की कृपा, भारत की अमीरी और नहर विभाग के अफ़सरों की जनता के प्रति सहानुभूति आदि के कारण वह किसान के लिए लाभकारी होते हुए भी एक आफ़त हो गई थी।

लेकिन उन बटोहियों को उन बातों से कोई मतलब न था। प्रो० मिसरा कैंप में ही रह गये थे। उन्होंने कहा था, ऐसी जवानी के दिन कभी के बीत गये थे। वीरेश्वर, वीरसिंह, मैक्सुअल, लवग, लीला। बाकी लोगों को घर प्यारा था।

एक जगह सब बैठ गये। वीरसिंह ने एक किसान को आते देखकर पूछा—यह रास्ता किधर गया है?

बूढ़ा किसान था। उसके साथ थी एक छोटी बच्ची जो उसके पीछे घास का छोटा गट्ठर सिर पर धरे गीत गुनगुनाती चली आ रही थी। बूढ़े ने बिना दिलचस्पी लिये कहा—'बोहड़ को।' और वह रुककर बच्ची ।को पुचकारकर बोला—'थकाय गई बेटी?'

बच्ची ने मुस्कराकर कहा—कितेक दूर और है?

'आध कोस है।'

चलने लगा वह। पीछे-पीछे गीत गाती बच्ची—

चौमुख दिवला बार ..

इस सगीत में मध्यवर्ग का विलास नहीं था। मध्यवर्ग अनंत उसे ही कहता है जिसमें भौतिक को झुठानेवाली एक भटकती आत्मा का गीत होता है और प्रेम, विरह, सेक्स तथा ऐश्वर्य की चर्चा होती है।

लीला को बैठी देखकर लवंग ने कहा—चलो, अभी से बैठ गई तुम तो?

वीरेश्वर ने कहा—थक गई? बूढ़ों को भी मात कर दिया?।

उठकर खड़ा हो गया वीरसिंह, और बोला—चलो घूम आयें। किंतु मैक्सुअल ने लीला को न उठते देखकर कहा—मैं तो क़सम खाता हूँ कि एक क़दम भी अगर चल पाया। लीला के एकांत पाने की इच्छा ने उसे आशा भर दिया था। लीला जाना तो नहीं चाहती थी किंतु मैक्सुअल के साथ एकांत उ के लिए असह्य था। वह उठकर कह पड़ी—'अच्छा चलो।'

मैक्सुअल अकेला रह गया। चारों चल पड़े। चलते वक्त लीला ने कहा—बुरा न मानिएगा न? माफ़ी मिल गई?

मैक्सुअल ने शांत भाव से कहा—कोई बात नहीं। वह जलकर देखते-देखते खाक हो रहा था।

रात को चारों जब लौट आये तब चाँद आस्मान में उमंग रहा था। उसकी लहरें पृथ्वी को चूम रही थीं। पेड़ हवा में हिल रहे थे। पत्ते हवा से हट जाते थे तब वीरसिंह के मुँह पर चाँदनी खेलकर छिप जाती थी।

कैंप में उस वक्त सब सो रहे थे। केवल वीरसिंह जाग रहा था। वह एक पत्थर पर बैठा था। लीला आकर उसके पास घास पर बैठ गई। और सब उस समय इतना शांत था, इतना निःस्वन······

रात थी और अद्‌भुत रात थी। अभी कल ही यहाँ महानाश का तांडव छाया हुआ था। बाढ़ आ गई थी। आदमी को रहने को जगह न थी। वह समझता है, पाप बढ़ जाने से ईश्वर की ओर से दंड मिलता है! किंतु वह भूल जाता है कि ईश्वर—उसका ईश्वर भी आदमी की कल्पनाओं में ज्यादा दिलचस्पी नहीं लेता। और इस समय सौंदर्य बिछा हुआ था; ऐसे ही समय बाल्मीकि का राम व्याकुल हो उठा था। लीला ऊँघने लगी। वीरसिंह ऊँघता सा उसे देखता ही रह गया। उसी समय दूर पर कहीं बाँसुरी बजने लगी। स्यात् कोई विरही बजा रहा था। लीला चौंक उठी। कुछ देर तक वह चुपचाप सुनती रही जैसे संगीत उसके रोम-रोम में समाया जा रहा था। धीरे-धीरे वह कहने लगी—मिस्टर वीरसिंह! एक बार मैं एक नई जगह गई थी। तब मैं सिर्फ चौदह बरस की थी। वहाँ एक विराट जल-प्रपात था। मैं क्या कहूँ कि कितना विराट था वह जल-प्रपात! अभिमानी मनुष्य को वहाँ जाते ही मालूम हो जाता था कि वह कितना हीन है! वह केवल महिमा थी। इतनी जलधारा आकाश को और भूमि को एक कर रही थी कि उठान में फेन दूध-सा स्वच्छ था। अविराम निर्झर एक महान, धीर, गंभीर गति में गूँज रहा था। वह एक सरकन मात्र थी। उसमें से एक निर्घोष दिग्दिगंत में व्याप्त हो रहा था, मानों वह मानव के युगयुगांत के चीत्कार का घोर उपहास था तब मैं अनबूझ-सी खड़ी थी कि कानों में ठीक आज ही की-सी एक बंशी ध्वनि गूँज उठी। आह! कितना करुण संगीत था। ऐसा प्रतीत होता था, मानों सिद्धार्थ आज महाभिनिष्क्रमण के मोह में व्याकुल हो उठा था। मुझे धीरे-धीरे उस गीत ने अपनी ओर आकर्षित कर लिया। अंधकार में मैं बढ़ती चली गई थी। वायु तेज़ और झीनी, शीतल और मादक बह रही थी। मैं

बढ़ती ही गई। वहाँ एक निर्झरी सघन निकुंजों में घिरी चाँदनी में चाँदी-सी चमक रही थी। मैंने देखा, एक व्यक्ति बाँसुरी बजा रहा था। सच कहती हूँ, मैं रो उठी थी।'

लीला तन्मय होकर गा उठी। वीरसिंह सुनता रहा—

"अब नहीं, अब नहीं माधव। अब कोकिल की फेरी नहीं सही जाती। आग लगता हुआ जो मलय बह रहा है, अब मेरे लिए असहनीय है। लो यह हृदय ले जाकर भस्म कर दो।

'कालिंदी के तल में बैठकर भी पाषाण का हृदय द्रवित नहीं होता। क्या तुम मेरे मन की जलधारा से तनिक भी नहीं पसीज सकते ?

'आग लगा दो मेरे शरीर में, भस्म कर दो यह हृदय, ऐसे कि अंतराल भी हाहाकार कर उठे। वज्रों के प्रहार से भी न झुक सकेगा मेरा अभिमान, क्योंकि मैंने तुम्हें प्यार किया है। मेरा प्यार उस गुफा के समान है जिसको पहाड़ों का विराट भार भी नहीं लड़खड़ा सकता।"

लीला रो रही थी। वह कहने लगी—"उफ! मानों वह प्रपात केवल उसका गंभीर, अथाह, अजस्र करुण संगीत था। कुछ देर वह मुड़ा और, और ''वह मुझे देखकर निर्दोष नयनों से मुस्कुराया। उसने कहा—'बालिका—यहाँ क्यों आई है ?' वही गीत, वही रागिणी इस समय भी बज रही है। जब-जब वैसे ही कोई बंशी प्रतिध्वनित होती है, मैं काँप उठती हूँ।"

दोनों फिर चुप रहे। बाँसुरी चुप हो गई तब किसी की बहुत ही शिथिल आवाज़ दूर-दूर से गूँज उठी—

> तुझे अपनी - अपनी पड़ी रहे,
> मुझे तेरा भी तो ख़याल हो,
> मेरी ज़ीस्त एक बिदा हुई,
> मुझे आज किसका मलाल हो!
> तेरी ज़िंदगी का नशा चढ़े,
> तब मुझमें बाकी खुमार हो······

आवाज़ केवल गूँज बन गई। और कुछ सुनाई नहीं दिया। वीरसिंह ने कहा—यह गाना एक भग्न हृदय का चीत्कार है। जैसे इस करुण तान को सुनकर समस्त संसार की विभूतियाँ केवल एक केन्द्र पर इकट्ठी हो जाती हैं।

लीला चौंककर देखने लगी। यह लड़का जिसने जीवन की कोई बात शायद कभी सोचकर गभीरता से नहीं की आज वह कैसे यह सब बातें कर रहा है, लेकिन वह यह नहीं समझती थी कि प्रेम की वासना का स्वप्न पशु में भी कवित्व भर देता है, क्योंकि वह एक ऐसी तड़पन है जो एकीकरण की अनन्यभूत आत्मा होती है। लीला चुप हो रही। वीरसिंह ने साँस भरकर कहा—हम ग़रीबों के लिए आये थे और हमने टूटी झोंपड़ियों में दबकर मरनेवालों को बाहर खींच लिया।

'इसके बाद',—लीला कह उठी—हम तुम अलग हो गये।' फिर वह सोचकर कहने लगी—'समाज ने ही तो हमें ऐसे बाँध रखा है मिस्टर वीरसिंह। हम एक दूसरे के पास आने की कोशिश करते हैं, किंतु आ नहीं सकते। देखिए एक चिड़िया का बच्चा है जिसके पख, उगते हुए पख कतरकर चिड़िया कहती है—बेटा उड़। किंतु बच्चा उड़े तो कैसे उड़े? चल पड़े, तो रुके कैसे? या तो हम लोगों की मशीन पहले ही फेल कर दी जाती है, ताकि स्त्री पुरुष एक विशेष आयु तक आपस में एक दूसरे से अविश्वास के दायरे खींचकर घृणा करते रहें और जब विवाह हो जाय, तो दो अजनबी आदमियों की तरह एक दूसरे को प्यार करने का ढांग करें और अगर ऐसा नहीं है, तो मशीन को ढाल पर इस तेजी से लुढ़का दिया जाता है कि उसका परिणाम केवल टकराकर दुर्घटना की मौत होती है। एक वेग है, आँधी है, मृत्यु है, दूसरी स्थिरता है, उमस है, वह कायर अत्याचार है। तब हम कैसे मान लें कि हमें आज़ादी से सोचने को दिमाग दिया जाता है? जो बड़े कहते हैं वही हमें करना पड़ता है। मगर सोचो तो उनके बड़े होने में उनकी तक़दीर ही है, कुछ महत्त्व तो नहीं। एक खास उम्र तक बच्चे को शिक्षा और खाने की आवश्यकता होती है उसके बाद उसकी आत्मा का हनन प्रारंभ हो जाता है। आज कल तुम सुनते होगे कि पढ़ लिखकर लड़का बाप से अलग हो गया। मैं उन बातों को छोड़ती हूँ जब लड़का यूरोप का होने का दावा करने लगता है। लेकिन नब्बे फ़ी सदी यह होता है कि जब लड़के का दिमाग़ खुलने को होता है और वह स्वतंत्र होना चाहता है तब उसे जंजीरों में बाँधने का ज्यादा-ज्यादा प्रयत्न होता है। सोचो अगर तुम्हारा कोई

'ए , तो क्या तुम उसके गुलाम हो? न यह बाप के लिए कुछ घमंड की बात है कि उसका लड़का ऐसा है, न लड़के के लिए कि उसका बाप कैसा है? वह एक प्रकृति की अकस्मात होनेवाली घटना से जुड़ा रहता है। अन्यथा पिता पुत्र का स्नेह कोई विशेष बात नहीं है। जब समाज में मातृसत्ता थी तब सब पिता थे, सब पुरुष समाज में समान थे। हिंदुस्तान की गुलामी को पक्का करनेवाले मा बाप इतने दकियानूसी होते हैं कि इस बच्चे को उड़ने नहीं देना चाहते। असल में ये पूँजी है। स्त्री पति पर निर्भर है, क्योंकि वह उसे रोटी देता है। बच्चा बाप को चाहता है, क्योंकि बाप उसे पालता है, मा को क्योंकि वह उसकी नर्स होती है और मा-बाप भी लड़के को इसी लिये चाहते हैं कि वह एक पूँजी होता है। वह···वह एक मशीन है। भविष्य में आमदनी होने की आशा से जिसमें अभी पूँजी लगाई जा रही है। लेकिन लड़की का कोई सवाल कहीं भी नहीं है। लड़की क्योंकि घर की पूँजी होकर नहीं रहती, इसलिए न उसे मा-बाप ही इतना चाहते हैं, न भाई-बहिन ही। क्या यह हो सकता है कि प्रेम की दुहाई देनेवालों में उसके प्रति स्वाभाविक आकर्षण कम हो? नहीं। समाज के कायदों से दिमाग बनता है। बचपन से मा-बाप होने वाले सिखाये जाते हैं कि लड़की किसी की होकर नहीं रही है। उसे मनु ने पाप कहा है, नीत्शे ने कोड़ों से पिटने लायक पशु, तुलसीदास ने ताड़न के अधिकारी, किंतु क्यों युगांतर से यूरोप ने नारी से कुछ पाने की आशा की है? क्यों उसे रहस्य कहा है? सिर्फ़ इसलिए कि उन्होंने औरत को रुपये और पूँजी की तरह माध्यम बना लिया है, मान लिया है और उसे दबा-दबाकर स्वयं उसे ही महसूस करा दिया है। चढ़ाकर लूटनेवाले पुरुषों का कमीनापन नारी को बाजार में रखकर भी तृप्त न हुआ। अब स्त्री का दिल स्वय इतना गुलाम है कि वह औरत को मुँह खोले नहीं देख सकती। कैनीबाल नरमांस खाकर प्रसन्न होता है, उसके सामने इससे बढ़कर सत्य ही नहीं। यही स्त्री की दशा है। मा कहकर नारी का गला घोंटा गया है। मैंने महाभारत में पढ़ा है, किसी समय स्त्रियाँ गायों की तरह स्वतत्र थीं।'

लीला हाँफ रही थी। वीरसिंह नारी के उन्माद को बैठा चुपचाप देख रहा था। वह कह रही थी—श्वेतकेतु ने पहले-पहल स्त्री को वेश्या समझा। उसने स्त्री की स्वतंत्रता को समाज के पुरुष-स्वार्थों में जकड़ दिया। महाभारत पाँचवाँ वेद है किंतु जैसे चार वेद समाज को रूढ़ियों और घृणित अंधकार से न बचा सके वैसे ही यह

निरीह पाँचवाँ वेद का दंभ भी नहीं बचा सका। तुम स्त्री की सत्ता का क्या न्याय दे सकते हो? उसे पुरुष ने सतीत्व के जाल में फँसाया है।

वीरसिंह चौंक उठा। उसने सोचा भी न था कि भारतीय कन्या कभी ऐसा कठोर सत्य कहने का साहस कर सकेगी। किंतु उसने कुछ कहा नहीं। वह सुनता रहा—

'सतीत्व कहता है, संभोग पाप हैं, यानी प्रकृति का नियम पाप है, यानी उसके ईश्वर की माया पाप है, यानी कि आदमी पाप है, तब आदमी का बनाया पुराण भी पाप ही की उपज है। फिर देखो यह इंगलैंड के Puritans की-सी बात। वह स्त्री को एक लाइसेंस देता है कि तुम्हें एक आदमी मिलता है, जैसे एक साइकिल को। चाहे वह उस पुरुष को चाहे या घृणा करे, आदिम आग की प्रदक्षिणा करके उसे उस लाइसेंस पर दस्तखत करने पड़ते हैं अपने दिल के खून से। उस लाइसेंस का मतलब है, वह रात-रातभर अपनी मर्जी के खिलाफ उसके साथ नंगी नाचे। प्राचीन काल की बेवकूफियाँ नहीं, कमीनेपन को अक्लमंदी माननेवाला भी एक घृणित अधकार है। तुम गंदगी को गंदगी से नहीं धो सकते। सामंती राज्य की स्त्री एक वेश्या है। घर की बेजान चीज़ों की स्वामिनी, और जीवित मनुष्य की दासी। आर्थिक परतन्त्रता से उसे बाँध दिया गया था। वह क्या जीवन है जब अपने पर नहीं, दूसरों पर गर्व किया जाये? ज़िंदा रहना क्या कोई बात है? कुत्ता जंज़ीर से बाँधकर भूखा रखा जाये तो वह कैसा भी मांस खा सकता है। और जब उसे मालूम हो जाये कि यह मांस उसको चौकीदारी किये बिना नहीं मिलेगा तो वह भूँकने के लिए भी तयार हो जायेगा। कहो वीरसिंह, सतीत्व पूँजीवाद को बनाये रखने का ढकोसला है, सड़ि मरे धर्म की एक दाई है।'

लीला अनवरत कहती चली गई थी। वीरसिंह ने उसकी आँखों में आँसू देखे। हवा बहुत ठंडी चल रही थी। लीला सिहर उठी। वीरसिंह ने कहा—यह क्या मिस लीला, जाड़े के मारे काँप रही हो? लो मेरा यह कोट ओढ़ लो।

हठात् लीला कठोर स्वर में कह उठी—'जी नहीं, धन्यवाद!' वीरसिंह चौंक उठा। वह तो कहनेवाला था कि आप विद्यार्थी संघ की सदस्या हो जाइए। और यह क्या! वह उठकर चलने लगा। लीला चुप बैठी रही। वीरसिंह चला गया। लीला बैठी रही। काँपती रही।

चाँदनी भूमि पर फैल गई थी, उमड़ गई थी, निरंजन आकाश शुभ्र फैला हुआ था। लीला बैठी रही।

× × ×

वीरेश्वर कैंप में लेटा हुआ सोच रहा था।

वीरेश्वर, वीरसिंह, लीला, लवंग और मैक्सुअल घूमने चले हैं। मैक्सुअल अकेला रह गया है। लीला भी चल पड़ी है। मैक्सुअल के साथ बैठने की उसकी इच्छा नहीं है। क्यों? क्यों भगवती······

मैक्सुअल ने बुरा माना होगा। ज़रूर, माना होगा। मगर वह व्यक्ति रूप में भी इतना नहीं है। हर-एक आदमी में कुछ-न-कुछ अच्छाई होती हैं। उसमें भी कुछ होगी, किंतु अभी तक तो ज़ाहिर नहीं है। हम किसी से नफ़रत करते हैं उसे अपने से हीन समझकर, किसी से जलते हैं उसे अपने आपसे ऊँचा समझकर। क्या यह ठीक है? क्या मनुष्य को मनुष्य से घृणा करने का अधिकार है? क्यों नहीं। जिसमें जिसका स्वार्थ है वही उसे रखना चाहता है, क्योंकि अपनी सत्ता को कौन बनाये रखना नहीं चाहता! तब भगवती लीला की अंतश्चेतना में इतना कैसे घुल-मिल गया? वह ग़रीब, यह कैप्टेन की लड़की। नारी भी अजीब वस्तु है।

पाँच व्यक्ति चले। सब एकत्व लेकर। खेतों की हरियाली, यौवन की तरंगें, उन्माद का पवन; ग्रामीणों की ग़रीबी; मध्यवर्ग की एक, एक झूठी आशंका, संतोष का पाप···

वे टूटे से कच्चे घर, गंदे घिनौने आदमी, औरत; अधकचरे, घृणित······ मध्यवर्ग की करुणा का उनके लिए एक रुद्ध अभिशाप। किंतु फिर भी कुछ नहीं कर सकते? व्यक्तिगत रूप में यह नहीं हो सकता। तो क्या सामूहिक रूप में मनुष्य इस संसार के सामाजिक दुःख मिटा सकेगा? इसके लिए उसे दिमाग़ खोलना पड़ेगा। बीसवीं सदी का बर्बर असल में अभी सभ्यता की भोर में है। अभी तक वह जानवरों की तरह रहा है।

आदमी इतना रुद्ध क्यों है? वह पैदा होता है तब वह जब केवल एक मांस का लोंदा होता है। उसकी संज्ञा-शक्ति धीरे-धीरे मस्तिष्क के रूप में बढ़ती है। किंतु अपनी कलुषित सीमाएँ उसे दाबती हैं। चीन की औरत की तरह लोहे का जूता उसके पैरों में पहना दिया जाता है। जो भी बढ़ता है, वह टूटता है।

हम केवल प्राकृतिक कोपों का भय करते हैं।

हम पदार्थ और चेतना हैं। दोनों का परिणाम एक है। वैज्ञानिक उसे Sichi कहता है। क्या वह केवल विचारमात्र है?

शृङ्खला टूटी। वीरेश्वर ने करवट बदली।

हम परिवार बनाकर रहते हैं। परिवार एक आदिम चिह्न है, बर्बरता की निशानी है, हर क़दम पर बाँध है। परिवार मन को जड़ों तक धँसा पूँजीवाद की घृणा का झूठा प्रेम है।

वीरेश्वर उद्विग्न हो गया। नींद बहुत दूर चली गई थी। वह बेचैनी से उठकर टहलने लगा। बाहर निकलकर उसने देखा, लीला चाँदनी में बैठी सिसक रही थी। जाने क्यों वह लौट आया और फिर सोने लगा।

---

[२२]

सलीब के सामने

बड़े-बड़े पादरी, लड़के लड़कियाँ, और प्रोफ़ेसर दो-दो की कतार में चैपिल में होकर बड़े हाल में घुसने लगे और अपनी-अपनी औकात से बैठने लगे। घंटा बजने लगा। जब प्रतिध्वनि भी मौन हो गई, एक अंगरेज पादरी उठा और अंगरेज़ी में कहने लगा—'आज हमारा कैंप चौथी बार लगा है। संत आर्नल्ड स्वर्ग में भी हमारे छोटे प्रयत्न और विराट आयोजन को देखकर कितने सुखी होंगे। भगवान की कृपा से हमारा साहस अक्षुण्ण है। हमें गर्व है कि हम उसके मतानुयायी हैं जिसने मानवता के त्राण के लिए अपने हाथों से अपनी सूली उठाई थी, जिसने सलीब पर भी भूले हुए मानव को क्षमा किया था।'

तालियाँ पिट उठीं। लड़कियों और लड़कों में एक चंचलता उकस उठी। उनकी आँखों ने पर खोल दिये।

पादरी कहने लगा—'संत आर्नल्ड ने अपने जीवन का सुख हिंदुस्तान के लिए बलिदान कर दिया था। और उसी के परिणाम-स्वरूप आज मैं देख रहा हूँ कि आप लोग साम्य, स्वतन्त्रता और शांति का पूर्ण उपभोग कर रहे हैं। हमने यहाँ आकर पाँच साल में अभी तक साढ़े चार हज़ार ईसाई बना लिये हैं। वे गरीब पहले हिंदुओं में भंगी और चमार माने जाते थे। हमने उनकी मर्ज़ी से ही, बिना लालच दिये, ईसा का पाक नाम सुनाकर उन्हें अंधकार में प्रकाश दिखाया है, उन्हें बराबरी का संदेश सुनाया है। आज वे ब्रिटिश साम्राज्य में अफ़सर बनने के योग्य हो गये हैं। परसों ही एक व्यक्ति का सब इन्सपेक्टर के लिए चुनाव हो गया है। आज उनकी आँखों की पट्टी खुल गई है।'

फिर तालियाँ बजीं और निगाहों ने अटकने को अपने-अपने केंद्र ढूँढ़ लिये। पादरी बोलता गया—

'कल हमने ग़रीब लड़कों के खेल कराकर उन्हें इनाम बाँटे थे। आज उनमें से चार ईसा के क़दमों पर आ गये हैं। वह अब बुतपरस्ती में विश्वास नहीं रखते। उन्हें मालूम हो गया है कि रक्त और रंग के फ़र्क से इंसान जानवर नहीं हो जाता, अंगरेजों ने इसे साबित कर दिया है। आज उनकी आँखों के सामने से बादल फट गये हैं · · · ·'

तालियाँ बजीं, और लड़के लड़कियों में इशारेबाजियाँ शुरू हो गईं। आँखों के तीर दिलों पर चलने लगे। काले चेहरों पर स्नो ने एक चमक-सी पैदा कर दी थी, और रंग बिरंगी लड़कियाँ अपने वक्ष को टेढ़ी नज़र से देखकर मुस्कुरा रही थीं।

पादरी बहुत ख़ुश हो गया। वह बोलता गया —'अब हमारा अस्पताल बड़े मज़ में चल रहा है। जबसे लड़कियों ने सहायता दी है, काम बहुत तेजी से चलने लगा है। सच तो यह है कि ईसाई लड़कियों में अंगरेज लड़कियों की-सी तहज़ीब और अक्ल आ जाती है। फ़र्क सिर्फ़ होता है पूर्व और पश्चिम का। ईसाई लड़की लजीली भी होती है। हिंदुस्तान की बाकी औरतें कड़ा थामना और बुर्का ओढ़ना जानती हैं। वह आज़ादी क्या जानें?'

लड़कियाँ उल्लसित। जैसे चिड़िया अब उड़ने ही वाली है।

'यह लड़कियाँ वहाँ 'मदर' के नाम से पुकारी जाती हैं। हाल ही में एक आदमी पर ईसा की कृपा दृष्टि हुई। उसे लाटरी से बहुत रुपया मिला। तब सच्चे ईसाई के रूप में एक 'मदर' ने उससे विवाह करके उसे ईसाई बना लिया। हम खुदा से इस जोड़ी की बड़ी उम्र चाहते हैं।

हमारा कैंप इस साल भी बड़ा सफल रहा है।

तालियाँ तुमुल ध्वनि कर उठीं। कहीं-कहीं से 'हियर-हियर' की आवाज़ भी मच उठी। पादरी रुककर बोला—'अब हम अपना आज का काम शुरू करते हैं। कुछ लड़कियाँ आपको ईसा का संदेश सुनायेंगी।'

लड़कियाँ सामने आकर खड़ी हो गईं और अंगरेज़ी लय-तान पर एक उर्दू गाना गाने लगीं। जब होस्टल में उन्हें हिंदुस्तानी गानों की मनाही हो गई थी उन्होंने हिंदुस्तानी फिल्मी गानों को अंगरेजी लय पर सेट कर लिया था। धार्मिक गीतों की साधारण रूप से शब्दहीन गूँज मंडराकर लौट गई उस दिमाग़ी खुदा के पास ही जिसकी वह उपज समझी जाती थी।

विनोदसिंह ने बगल में बैठे राजमोहन से कहा—'राजा, दो वोट से क्या होगा?'

राजमोहन धीरे से बोला—'घबराने से भी क्या होगा विनोद! कम से कम मुझे उम्मीद है, रानी तो तुम्हारा साथ देगी ही।

विनोद ने मुस्कराकर पूछा—क्यों?

राजमोहन ने कहा—इसका जवाब मैं नहीं दे सकता। तुम, तुम जो बोलोगे। जल्दी तैयार हो जाओ।

'मैं तो तैयार ही हूँ।'

कुछ देर हाल में सन्नाटा रहा। अंगरेज़ पादरी उठकर बोला—अब मिस्टर विनोदसिंह आपके सामने एक अपना प्रस्ताव उपस्थित करेंगे। उन्होंने उसे अभी प्रकट नहीं किया है। इसलिए मैं प्रार्थना करूँगा कि वे खड़े होकर सब बातें जो वह जरूरी समझें, कह जायें।'

विनोद खड़ा हो गया। इधर उधर देखकर वह कहने लगा—भाइयो और बहिनो! आज मैं ईसा के बच्चों के सामने कुछ अर्ज़ करने के लिए खड़ा हुआ हूँ। मुझे ऐसा लगता है कि यज़ीदी भी शैतान से इतना परेशान न होता जितना मैं अब हूँ। भेड़ों का चरवाहा केवल अपनी बुद्धि पर विश्वास रखने के लिए लाचार होता है। मैं नहीं जानता, आप मेरी बात पसंद करेंगे या नहीं?

जनसमाज क्रुद्ध-सा फुसफुसा उठा और कुछ ख़ुश नज़र आने लगे।

विनोद कहता गया—'हम आज अँगरेज़ पादरियों का दामन पकड़े खड़े हैं। हम नहीं जानते कि हमारी सांस्कृतिक राह क्या है? हम ईसामसीह के असली बच्चे होने का गर्व कर सकते हैं, क्योंकि हम सिर्फ भेड़े हैं। संसार बढ़ रहा है किंतु हम अभी तक चुप बैठे हैं। हममें से कितने हैं जो ईसा को समझने का दावा रखते हैं? हम ईसाई हैं, अँगरेज़ नहीं। संसार मेरी आँखों के आगे घूम रहा है। एक दिन ईसाई रोमन अत्याचार से पीड़ित होकर भारत आये थे। उस दिन इन्हीं लोगों ने हमें शरण दी थी जिनपर आज हम नाक सिकोड़ते हैं। हम गरीब हैं, इसी से हमारी कोई ज़रूरत भी महसूस नहीं करता, जैसे कम होकर भी पारसियों की सब पूछ करते हैं। साम्यवाद और धर्म का ढोंग करके पूँजीवादी अपना मतलब सिद्ध कर रहे हैं। पश्चिम में भयंकर विनाश छाया हुआ है। वह भी ईसाइयों का शांति संदेश है। नफ़रत करनेवाले का एक अंत है--सब उससे नफ़रत करते हैं। हमारे

जीवन की सबसे बड़ी विडंबना है, पादरी। लंबे-लंबे चोंगे पहने, शक्तिशाली 'शब्दों' के हथियार लिये, ढोंग के कवच ओढ़कर वह अंगरेज़ हमें सांस्कृतिक और राजनैतिक पराजय दे रहे हैं। आज भेड़ों में भी लड़ाई हो रही है। हम एक साम्राज्य के गुलाम हैं जो विदेशी है। मिशन बूढ़े अँगरेज़ पादरियों की हिटलरशाही है और यूरोप की गंदी औरतें हमारे देश में धर्म की प्रचारिणी बनकर आती हैं? जीवन भर उनकी कामतृष्णा का हनन होता है और भारत में आकर वह खाना पाती हैं।'

हाल में एकाएक ज़ोर से तालियाँ पिट उठीं। पादरी स्तब्ध बैठे रहे। क्रोध से वह पागल हो उठे थे। किंतु लड़कियों में रानी के सिवाय सब असंतोष से भर उठीं।

'उनके स्वदेशीय जीवन की तुलना में यह जीवन एक स्वर्ग होता है। और रात को? कभी-कभी मैं सोचता हूँ, क्या नारी कभी इतनी विकृत हो सकती है? पुरुष भी तो बड़े त्यागी होते हैं! उन पादरियों के आराम में क्या कमी है? वायसराय को भी तो तनख्वाह पूरी नहीं पड़ती। और अंगरेज़ पादरियों की जगह सिर्फ़ अँगरेज़ पादरी ले सकता है। वे तो कहते हैं कि वे राजनीति और देश के छोटे बंधनों से परे हैं। फिर? लेकिन हिंदुस्तानी पादरी कभी इसका विरोध नहीं करते। आखिर फिर वे खायेंगे क्या? धर्म की आड़ में हमारे नाम बदले जाते हैं, किंतु वह भी पूरी तरह से नहीं। ताकि हम कहीं साहब लोगों में घुलमिल न जायें, हम न इधर के हैं, न उधर के।

'अंगरेज पादरियों ने धर्म की ओट में हिंदुस्तान में ठाठ करने की दृढ़ दीवार बनाई है। वह यह जानते हैं कि पददलित को कैसे अधचकरा अडा बनाया जा सकता है। लोगों का मत दल और फरेब से बदलवाना ही श्रद्धा की माप है? वह जिन्हें न हिंदूपन से लाभ था, न ईसाईपन से हो सकता है—पैसे के कारण नाचते हैं। ये पादरी धार्मिक नहीं, सामाजिक और राजनीतिक मतपरिवर्त्तन करा रहे हैं। वे बेवकूफ़ों को लूट रहे हैं।

'ईसाइयत की पहली बात आज़ादी – आज़ादी चाहिये हमें। क्योंकि हिंदुस्तानी आज़ाद नहीं होना चाहिए? क्योंकि गाँधी के बहकावे में हमें नहीं आना चाहिए? राजनीति में भाग लेनेवाले ईसाई समाज से बहिष्कृत कर दिये जाते हैं। हम निर्जीव प्राणी बना दिये गये हैं। जीवन हमारे लिए एक अभिशाप बन गया है। आज मैं

धर्म के दावेदार, सत्य के हक़दार, ईसाइयत के बाने में छिपे फ़ैरिसीज़ से पूछता हूँ कि हमारी कल के हिंदुस्तान में क्या हालत होगी ?'

'साथियों ! अब मैं प्रस्ताव पेश करता हूँ ।'

विनोद कागज़ उठाकर पढ़ने लगा—

"हम ईसाई जो राजनीति में हिस्सा लेने से रोके जाते हैं, जिन्हें समाज से मसीह की मुखालफ़त करने का तोहफा मिलता है हम भी राजनीति में सहयोग दे सकें। हमें रोकने का भावी परिणाम यही होगा कि हम यूरोप के यहूदी बन जायेंगे।"

'अब मैं आपसे', उसने साँस लेकर कहा—'अपने दिमाग से सोचने की प्रार्थना करूँगा। आप सब बंधनों से परे, सब भयों को छोड़कर, इसे विचारिए। मुझे आशा है कि जो कुछ मैंने आपसे कहा है, वह ऊपर का बोज साबित नहीं होगा। धन्यवाद।'

विनोद बैठ गया। भयंकर कोलाहल मच उठा। दो-चार स्टूआर्ट्स इधर-उधर चुपचाप घूमते रहे। कोलाहल रुकने में प्रायः पाँच मिनट लग गये। पादरियों के मुँह पर विष तमतमा रहा था। आज काले मुंह के लगूरों ने लाल मुँह के बदरों पर जैसे अपनी शक्ति का दड तोल दिया था। अंगरेज़ पादरी क्षण भर ठिठककर बोला—'आपने अभी मिस्टर विनोदसिंह का प्रस्ताव सुना। इसके बारे में मुझे अधिकार है कि मैं इसके रखे जाने की स्वीकृति दूँ या इसे रदकर दूँ.... '

उसने क्षण भर रुककर इधर-उधर देखा और देखा कि सभा में इसपर कुछ क्रोध है, वह एकदम बोल उठा—

'लेकिन मैं हाथ धोकर इसके पेश किये जाने की अनुमति देता हूँ। जो पक्ष में हैं वह दांये बैठ जायें, जो विपक्ष में हों वह बांयें।'

लोग उठ-उठकर अपनी जगहें बदलने लगे। हर्ष से पागल राजमोहन विनोद के पास आ गया।

'विनोद, तीन वोट से अब कितने वोट हो गये ? न बोलते तो क्या यह सब होता ?'

विनोद ने कहा—पादरी तो उस तरफ़ बैठे हैं।

'हाँ, उनके साथ ही वह भी हैं जो अंगरेज़ों को जाते देखकर कहेंगे, हमें भी इंगलैंड ले चलो।'

दोनों हँस दिये।

इतने में पादरी बोल उठा—'अब मैं दोनों स्काच पादरियों से प्रार्थना करता हूँ कि वे वोट गिन लें। आशा है आप शांति रखेंगे।

हाल में सन्नाटा छा गया। राजमोहन ने धीरे से कहा—मैंने गिन लिये हैं, हम दो वोट से जीत गये।

तीनों पादरियों ने गिन-गिनकर वोट लिखकर बड़े पादरी को दे दिये। उसने कहा—'समय कम है, काम अधिक है।' और उसके मुख पर मुस्कान खेल गई, 'मैं आपको परिणाम सुनाता हूँ। प्रस्ताव के समर्थक हैं—६३'

विनोद—गलत है बिल्कुल ·····

राज०—सुनो चुप ·····

पादरी—और प्रस्ताव का विरोध करनेवाले हैं—६४। अब मैं आज की सभा का विसर्जन करता हूँ।

तुमुल कोलाहल मच उठा। सब उठकर चले गये। हाल सूना-सा रह गया। एक क्षण खड़ा रहकर विनोद धीरे से मुस्करा उठा। यह सलीब के सामने हुआ था, यह मसीह के बच्चों का न्याय था, यह विश्वशांति के विराट महल की नींव थी।

बाहर रानी विनोदसिंह की प्रतिक्षा में खड़ी थी। उसने गर्व से विनोद की ओर मुस्कराकर देखा जैसे जो कुछ हुआ, बहुत अच्छा हुआ। ईसाइयों के अंध-विश्वास पर प्रहार करके उसे हार्दिक प्रसन्नता हो रही थी। मन में भाव उठा। किंतु वह तो अब दूर हो चुका है। यह मुर्गे तो सिर्फ़ तमाशे के लिए लड़ाये जा रहे हैं। काश वह भी हिंदू होती, तो इंदिरा की तरह स्वतंत्र होती, लीला की तरह मुक्त होती, और वह क्षण भर को ठिठक गई। याद आया। यह लड़कियाँ धर्म के कारण नहीं, धन के कारण स्वतन्त्र हैं।

रानी को स्वतंत्रता का अपना विचार साँप की तरह कुंडली मारकर फन उठाकर उल्टा उसी की ओर देख उठा। वह काँप गई।

[२३]

पत्थर और पत्ता

रात गहरी और अंधेरी थी। बादल छा रहे थे। पानी पड़ चुका था। ठंड काफ़ी थी। हरी कालेज की सीढ़ियों पर बैठा था। कल वह जीवन में बह रहा था और खोया हुआ था, आज वह उस धारा को देखकर उदासी से मुस्करा उठा था।

दूर सड़क पर बिजली के खंभों पर लट्टू जल रहे थे। उनमें से प्रकाश उमड़ रहा था। फ़ील्ड पर पानी झलमला रहा था, उसपर प्रकाश की लंबी-लंबी धाराएँ बही जा रही थीं। सुनसान कालेज के हृदय में चौकीदार अपनी मद्धिम लालटेन जलाये बैठा था। वह निस्तब्धता हरी के हृदय में डूबने लगी। हवा सीरी और मादक चल रही थी। उस शांति में उसके भीतर की सारी उथल-पुथल मौन हो चुकी थी। सामने डेविड होस्टल की खुली खिड़कियों में प्रकाश था, एक बहुत ही मनोहर प्रकाश। उस प्रकाश का निर्जन प्रतिबिंब सामने फील्ड के पानी में वैसा ही पड़ रहा था।

वह रात एक रोमांस की रात थी। जब दो हृदयों को मिलकर रहना अच्छा लगता। किंतु हरी आज अकेला था। वह चुपचाप देखता रहा। कभी-कभी कोई भूली-भटकी बूँद आस्मान से टपक पड़ती थी। रात की भयद निर्जनता में हवा एक अपना अलग राग फैलाती हुई झूम रही थी।

अचानक उसने दूर पर एक संगीत सुना। कितना मनोहर था। डेविड होस्टल की लड़कियाँ साँझ की प्रार्थना कर रही थीं। उस ईसा से प्रार्थना कर रही थीं जिसकी किसी ने सुनकर उसे सूली पर लटका दिया था, जिसके रक्त से रंजित होकर भी संसार पहले से भी कहीं अधिक विषम हो गया। पश्चिमी गीत अपनी लयगति के आरोहण अवरोहण में वायु पर चढ़कर आया जैसे कोई उन्माद हो और उसके हृदय का तार-तार झंकृत कर गया। वह सिहर उठा। फिर उसने देखा कि एक के

बाद एक करके लड़कियाँ एक-एक जलती मोमबत्ती लेकर सड़क पर आ गईं और चैपिल की ओर मुड़ चलीं। उनके हर क़दम पर मोमबत्ती की लौ थरथराती थी और अपने-अपने बाँये हाथ से वे उसका अंचल बनाये थीं। वही कोमल और मधुर शब्द, वही लय-ताल-गति, और वही सुमधुर स्पंदन। गीत उठा, उसने बादलों में एक गड़गड़ाहट मचाकर उन्हें छुआ और चैपिल में जाकर डूब गया। प्रकाश की रेखा का लय हो गया। उसमें एक चेतना जाग उठी। उसने देखा, दूर कहीं वहाँ पेड़ों के पीछे एक झिलमिल प्रकाश अंतराल में द्रिम-द्रिम कर घुला जा रहा था।

वह लड़कियों का होस्टल है जिसके सूने कमरों में अब आबादी है, मगर वह सत्ता जो मनमें स्वयं सूनी है वहाँ सृष्टि की रचनेवाली रहती है, वह प्रकाश है।

वह हँस पड़ा।

मूक स्तब्ध यह इमारत खड़ी रहती है। संध्या की सतरंगी बेला जब आकाश में छाई रहती है, छत पर लड़कियाँ खेलती हैं। वह यौवन का उत्साह है जैसे केवल बहती धारा का उच्छृङ्खल प्रवाह। कोई अपनी टीसों में सिसकती होगी। कोई अपनी आँखें मींचकर बादलों से बात करती होंगी।

आत्मचिरंतन यह प्रकाश भागता है, रुकता है, किंतु फिर भी चल है। मानव का हृदय क्षण भर अकस्मात् ही यौवन में आकुल हो उठता है। लेकिन ये लड़कियाँ इस प्रकाश की चेतना से दूर हैं। यह बंदीगृह है। संस्कारों के अंधकार में बद्ध समाज की निर्जीव बंदिनी! ये विमुक्त चेतना का स्पदन नहीं सुन सकतीं। इनका जीवन स्वतंत्रता के नाम पर रुद्ध इच्छा है, किंतु फिर भी इनमें एक अज्ञान है जो इनकी सत्ता का सबसे बड़ा सामंजस्य है।

यह पुरुष से समता करती हैं, किंतु वास्तव में यह केवल अबलामात्र हैं। आज ये भगिनी हैं, कल पत्नी होंगी, परसों माता, किंतु इनकी विजय ही इनकी सबसे बड़ी पराजय है। इनके शृंगार में नारीरूप लज्जा करता है, आत्मरूप सबसे बड़ा सौंदर्य है, किंतु वह चांचल्य नहीं, एक गंभीर सागर है।

हरी ने सिगरेट निकालकर मुँह में लगाई। और दियासलाई जलाई। उस उजाले से एक आदमी चलते-चलते रुक गया और उसके पास आकर बैठ गया। हरी ने देखा वह वीरेश्वर था। उसने कहा—हरी! मैंने तुम्हें आज कितना ढूँढ़ा, किंतु तुम हो कि मिले ही नहीं।

हरी ने उत्साहित स्वर से कहा—क्यों ? क्या काम है ?

वीरेश्वर चकरा गया। कहा—'तुम्हें हो क्या गया है ?'

हरी ने कहा—वीरेश्वर ! मैं सदा के लिए तुमसे क्षमा माँगता हूँ। मैंने जो आज तक तुम्हें सुख दिया है अथवा केवल दुःख दिया है, सब साफ़ दिल से मुझे वापिस कर दो। अब मुझे अपने आपसे घृणा हो गई है। रहमान ने एक दिन मुझसे कहा था कि हिंदुस्तानी प्रेम में फँसकर जोवन बरबाद कर बैठते हैं और सचमुच मैंने सब कुछ खो दिया है।

वीरेश्वर चुप रहा। हरी कहता गया—'सब अपनी अपनी पढ़ाई में लग गये हैं, दोस्तों में से कोई भी दिखाई नहीं देता, फिर मैं ही क्यों जिंदगी बरबाद करूँ ?'

वीरेश्वर ने कहा—कालेज में मशहूर होकर कोई इतना बेफिक्र नहीं रह सकता। हम निर्णायक थे और रहेंगे।

'निर्णायक ! नियंता !' हरी ने हँसकर कहा—'नहीं वीर, यह सब कुछ नहीं। यह झूठ है।'

वीरेश्वर ने बदलकर कहा—तुमने सुना लवंग कालेज छोड़ गई। पता नहीं एकाएक बीच टर्म में कैसे छोड़ दिया।

हरी ने कोई जवाब नहीं दिया।

वीरेश्वर बोलता गया—विनोद फिर ज़ोर में आ गया है। वह किसो के सामने नहीं आता था। अब फिर रंग आये हैं। यह तुम्हारी रानी रेनोल्ड का किस्सा क्या है ? कुछ समझ में नहीं आता। कुछ दिन सुना था मैक्सुअल पर कृपा दृष्टि है, अब सुनते हैं विनोद को एक नया दावा है।

हरो मुस्कराया। वह बोला—वीरेश्वर ! तुम समझ ही नहीं सकते। मैं तो यही कहूँगा कि रानी फिर भी अच्छी लड़की है।

वीरेश्वर हंसा। और हँसी के बीच में से उसकी आवाज़ निकलने लगी—'क्यों नहीं ? तीन-तीन को चुना जाये, और Canine (कुत्तों का प्रेम) love किसे कहते हैं ? मगर तुम तो कहोगे ही। जान चली जाये, मगर मजाल है कि लैला के कानों में आवाज़ पहुँचे, कहीं उसके दिल को चोट न लगे।'

हरी ने मुस्कराकर धीर स्वर में कहा—तुम चाहे कितने भी सुधारवादी, समाजवादी बन जाओ, लेकिन नारी को संपत्ति मानने की भावना से दूर नहीं हो

सकती तुम्हारी संस्कारों में बँधी हुई बुद्धि। प्रेम की अनुभूति से उत्पादित करुणा और व्यापकता को तुम नहीं पा सकते। कला का क्या हुआ ?

वीरेश्वर ने सिर नीचा कर लिया। कहा—कुछ नहीं, वह मोह था। दो एक पत्र भी लिखे थे उसने। लेकिन मैंने जवाब नहीं दिया। बातचीत जरूर की थी।

हरी ने पूछा—फिर ?

वीरेश्वर ने जवाब दिया—'फिर कुछ नहीं। उसके पिता को प्रोफ़ेसर मिसरा के इशारों से मालूम हो गया। तबसे उसने भी पंख समेट लिये हैं। लेकिन तुमने रानी की बात नहीं बताई ?

हरी ने उदासी से कहा—बताने को है क्या ? उसको ईसाइयों ने परेशान कर दिया कि वह हिंदुओं मे क्यों मिलती जुलती है ? आखिर कहाँ तक सुनती मेरे पीछे ? लेकिन विनोद से उसका प्रेम केवल एक प्रतिशोध है। विनोद ईसाइयत के खिलाफ़ है, उससे सम्पर्क बढ़ाना जले पर नमक छिड़कना है। उससे तो सब ईसाई चौंकते हैं।

विस्मित अबोध-सा वीरेश्वर देखता रहा। फिर बोला—उसने गलती की है हरी। जानते हो ? विनोद इसको बहुत सच समझने लगा है। विनोद अब तो पहले जैसा नहीं रहा। उसने मुझे अपने पास आये प्रेम-पत्र दिखाये, सब टाइप से छपे थे। लड़की भी कितनी चालाक है ! कोई भी खत पकड़ नहीं सकता। मुझे लगता है, इसका नतीजा अच्छा नहीं निकलेगा।

'कामेश्वर क्या कर रहा है आजकल ?'—हरी ने टोककर पूछा।

'डटकर पीता है, और क्या करेगा ?'—वीरेश्वर ने एक घृणित इशारा किया। हरी चुप रहा। वीरेश्वर ने रुककर फिर कहा—सज्जाद को आफ़त से बचाना होगा। लोग उसको प्रेसीडेंट नहीं रहने देना चाहते। तुम अलग नहीं रह सकते। तुम इतने फूल सूँघ चुके हो कि काँटे भी तुम्हारे दुश्मन हो गये हैं। कमल पार्टी बना रहा है। अबके नहीं। अब के नहीं। हम तुम ही सज्जाद को बचा सकते हैं। कहो हरी ! तुम लौट आओगे ? कहो न ?

हरी ज़ोर से हसा। वीरेश्वर अप्रतिभ रह गया।

'वीरेश्वर', हरी ने कहा—मैं अब सदा के लिए जा रहा हूँ। समझे ? अब मैं इस शहर से ही सदा के लिए मुँह काला कर रहा हूँ। अगर किस्मत ने जीता-

जागता लौटा दिया, तो शायद फिर मिलें। मैं सदा से भाग्य पर विश्वास करता रहा हूँ। सज्जाद की तख्ती विद्यार्थियों ने नहीं, भाग्य ने जमाई थी। भाग्य ही उखाड़ भी सकता है। फिर चिंता क्या है? ऐसी कौन सी सल्तनत छिन जाएगी? मुझे तो तुम जवाब दो।

वीरेश्वर ने अचकचाकर पूछा—'यानी?'

हरी ने कहा—मैंने कहा न कि मुझे जवाब दो। अब मेरी तबियत तो इस अधकचरी जिंदगी से ऊब गई है। मैं...मैं किसी दिलेर काम में जाना चाहता हूँ। अब अखबार पढ़ने में मज़ा नहीं आता। अब तो चाहता हूँ, लड़ना, लड़कर मरना और मरते वक्त किस्मत आज़माना।

वीरेश्वर ने कहा—तो क्या करोगे?

हरी बोला—करूँगा नहीं। कर लिया है। परसों मुझे ट्रेनिंग पाने चला जाना है। अब जाड़े में अगला जत्था भरती होगा। उसी में मुझे कमीशन की इजाजत मिल गई है। सेकेंड लेफ्टिनेंट हो जाऊँगा। ३१० रुपये। मज़ा रहेगा। जिंदगी एक तूफान बन जायेगी।'

वीरेश्वर ने मुस्कराकर पूछा—बस ३१० रुपये में?

हरी ने कठोरता से कहा—वह मेरी कमाई होगी तुम लोगों की तरह मा बाप पर बोझा नहीं लादूँगा।

वीरेश्वर ने कहा—तुम लड़ाई में जाओगे हरी? साम्राज्यवाद को मजबूत बनाने जाओगे? हिंदुस्तान के ग़रीबों पर छुरी चलाने जाओगे?

हरी ने कहा—हिंदुस्तान के गरीब! तुम यह ऊनी कोट पहनकर क्या कर रहे हो? तुम जो रुपये बारह आने की सिगरेट पी जाते हो। यह किसके गले में हार बनकर पड़ेगा?

फिर हँसकर कहा—बहुत दिनों की बातें हैं तुम्हारी। हम तो तबतक रहेंगे भी नहीं। इस कमजोरी से मैं ऊब गया हूँ। अब तो बस कुछ चाहिए। जोश! ख़ून! हत्या!

वह ठठाकर हँसा।

'हिंदुस्तान को आज़ाद होने में अभी बरसों पड़े हैं। मैं त्याग करते-करते थक गया हूँ। अब और नहीं किये जाते।'

वीरेश्वर बोला—वह तुम्हारे व्यक्तिगत त्याग थे। यह सामूहिक हो जायेगा। रुपयों की ऐसी क्या कमी है?

बात काटकर बोलते हुए हरी उठकर खड़ा हो गया—'बच्चों की-सी बातें न करो वीरेश्वर! जाओ पढ़ो। तुम्हें तो अब कालेज में कई बरस हो गये? अब कब तक पढ़े रहोगे?. पढ़ो और अच्छा दर्जा पाकर पास करो। शायद तब कोई नौकरी मिल जाये। वर्ना कुछ नहीं, कुछ भी नहीं।'

रात के दस बजे का घंटा बजने लगा। वीरेश्वर के मुँह से आवाज़ भी नहीं निकल सकी।

४

छुरी
और
काँटा

[२४]

सिर्फ़ पत्ता

किंतु सज्जाद ने कामेश्वर को विश्राम नहीं लेने दिया। नादानी को जाने से रोककर एक छोटे से घर में टिका दिया जो शहर के प्रायः कम आबाद हिस्से में था। कामेश्वर ने जिस समय रूप की उस ज्वाला को देखा, उस समय उसे अनुभव हुआ कि धन और संकोच एक व्यर्थ की बात थी। इस रूप के सामने संसार की प्रत्येक वस्तु हीन थी। वह अपने आप धन्य हो गया। एक सप्ताह तक नित्य उसके घर जाता रहा। आठवें दिन कालेज से लौटते समय उसने देखा, भगवती अपने कमरे की खिड़की पर खड़ा होकर बाहर झाँक रहा था। उसकी इस अवस्था को देखकर कामेश्वर को विस्मय हुआ।

कमरे में घुसते हुए कामेश्वर ने कहा--यह क्या हो रहा है?

भगवती खिड़की से उतर आया। बोला—कुछ नहीं, जरा झाँक रहा था।

'तो खिड़की पर चढ़ने की क्या जरूरत थी? क्या कोई गुज़र गई थी जिसे आड़े तिरछे होकर देख रहे थे?'

भगवती ने बहुत छोटा उत्तर दिया—'नहीं।' और वह गभीर हो गया। उसके मुख पर विषाद की एक छाया इधर से आकर उधर से निकल गई। वह क्षण भर उसके मुख को देखता रहा। भगवती के मुख पर झलकता था कि कभी उसने नारी को छुआ भी नहीं। कामेश्वर की दृष्टि में उस मनुष्य का जीवन व्यर्थ है, जिसने कभी स्त्री को नही परखा। चुप होकर वह देर तक सोचता रहा। भगवती अनजान-सा बैठा रहा।

कमरे में एक खाट थी, जिसपर बिस्तर बिछा था। प्रायः रहमान का-सा ही सब कुछ था, केवल राजनीति के पदचिह्न नहीं थे।

एकाएक कामेश्वर ने कहा—भगवती! तुम्हें अपना अकेलापन कभी भी नहीं कचोटता?

भगवती के शब्द गले तक आकर रुक गये। मन में आया, लीला की बात सुना दे। फिर न जाने क्यों रुक गया। उसने कहा—यह तो सब तुम जैसे उस्तादों के काम हैं।

'उस्तादी तो कहने की बात है, लेकिन सच, तुम्हें कुछ भी नहीं होता? मैं तो इन सबकी कल्पना भी नहीं कर सकता। यदि मुझमें इस भूख की निर्बलता न होती तो नारी के प्रति मुझे रत्ती भर भी आकर्षण नहीं रहता।'

वह कहकर हँस उठा। हँसा तो भगवती भी, किंतु जैसे कामेश्वर को प्रसन्न करने के लिए। कामेश्वर ने फिर कहा—तुमने कभी किसी से प्रेम किया है?

भगवती ने सिर हिलाकर स्वीकार किया।

'किससे?' कामेश्वर ने चौंककर पूछा जैसे आप भी? हमें तो ऐसी आशा न थी।

भगवती ने कहा—अपने आपसे।

कामेश्वर कुंठित हो गया। उसने कहा—तो मैं दावे से कह सकता हूँ कि तुम्हारे हृदय नहीं है। तुमने नारी को कभी नहीं देखा।'

भगवती ने चिढ़कर कहा—क्यों, मैंने क्या स्त्रियाँ नहीं देखीं?

'यों देखना देखना नहीं होता। अच्छा एक बात कहूँ मानोगे?'

भगवती ने कहा—क्या?

'पहले कसम खाओ।' कामेश्वर ने अधिकार से उसका हाथ दबाकर कहा। भगवती झिझका। किंतु कामेश्वर ने हाथ नहीं छोड़ा। भगवती ने लाचार होकर कहा—अच्छा कहो?

'मेरे साथ चलो। जहाँ मैं ले चलूँ वहीं चले चलो। और कोई प्रश्न पूछना निषिद्ध है।'

भगवती कपड़े बदलने लगा। कामेश्वर और भगवती चल पड़े।

जिस समय वे दोनों शहर के प्रायः बाहर बसे उस छोटे-से स्वच्छ घर में घुसे, उस समय कमरे में से सितार बजने की ध्वनि आ रही थी। कोमल लहरियाँ काँपती हुई करुण स्वर से सिसक रही थीं। भगवती का हृदय भीतर ही भीतर सिहर उठा।

अंदाज से ही उसने समझ लिया कि आज वह एक ऐसी जगह आया है, जहाँ आना उसके जीवन का कोई भी कार्य नहीं था। और फिर भी आने के अपराध की हीनता के पीछे भी जो समाज की अस्वीकृति है वही एक संकोच बन गई। उसने ठिठककर कामेश्वर का हाथ पकड़कर कहा—कहाँ ले आये हो मुझे? यह जगह ठीक नहीं।

कामेश्वर ने मुड़कर देखा, जैसे किसी पुराने उस्ताद ने एक कमाल के पेंच को देखकर घबराहट से घुटने टेक दिये थे। उसकी आँखों में एक गर्व खेल उठा—गर्व जो अपने आपमें इतने दिन से असंतोष से हाहाकार कर रहा था आज इस अबोध सरलता को देखकर किंचित् मुस्करा उठा। भगवती ने फिर कहा—'किंतु .....'

कामेश्वर के होठों से एक क्षीण हास्यध्वनि-सी फूट निकली और उसने शरारत भरी आँखों से देखकर बाँये हाथ से उसका हाथ पकड़कर कहा—डरते हो? जंगल में रहकर योग करना चाहते हो?

'लेकिन मैं तो कभी यह सब नहीं करता!' भगवती का कंठ रुद्ध हो गया।

'नहीं करता!' व्यंग्य से कामेश्वर ने कहा—'तुमसे कुछ करने को कौन कहता है। स्त्री को देखना भर तो पाप नहीं। फिर देखने से भी डरते हो? मैं तो ढोंग में अपने आपको छिपाकर सज्जन नहीं बनना चाहता।'

इसके बाद भगवती ने कुछ नहीं कहा। द्वार पर खड़े होकर देखा, कमरे में कोच पर एक युवती लेटी हुई थी और औंधी सी हो सितार के तारों को बार-बार छेड़ देती थी, जैसे जीवन की इस वीणा पर कौन-सा स्वर है जो बजकर मन को सांत्वना दे सकेगा, यही वह निश्चित नहीं कर पा रही हो। स्वर कमरे में द्रुत पग धर गूँज उठते थे।

पदचाप सुनकर सुंदरी ने आँखें उठाईं। कामेश्वर ने चुपचाप कुछ इंगित किया। युवती ने नशीली आँखों से भगवती की ओर देखकर कहा—आइए!

स्त्रियों के सामने अपने आपको बहुत उच्च समझनेवाले भगवती को एकाएक लगा, वह बहुत ही तुच्छ है। यहाँ तक कि उसके खड़े होने का ढंग भी इतना भद्दा है कि वह उस रूप का प्रत्यक्ष ही एक घोर अपमान है। युवती हँसी। भगवती ने देखा। वह कुछ भी नहीं समझ सका। एक बार उसे लगा, जैसे वह सब एक इंद्रजाल था और वह कभी भी उसमें रहने योग्य न था। यही स्त्री जो इतने घोर पाप में अपना जीवन व्यतीत कर रही है, जिसका नाम सुनते ही लोग घृणा से नाक

सिकोड़ लेते हैं आज वह उसके सामने इतना नम्र कैसे बन गया? वह वास्तव में सुंदरी थी। भगवती अधिक उसकी ओर नहीं देख सका। किंतु जो कुछ उसने देखा, वही क्या मनको पराजित करने के लिए काफ़ी नहीं था। किसी को कर्ज़ा देने पर जब कर्ज़दार बेशर्मी पर उतर कर टालने पर उतारू हो जाता है तब कर्ज़ा देनेवाला दो-एक तगादा करके फिर अपने आप अपना रुपया माँगने में झेंपने लगता है। भगवती को ऐसा ही लगा सामने एक पतिता स्त्री बैठी थी, किंतु वह इतनी निःसंकोच थी, कि भगवती अपने ऊपर संकुचित हो उठा।

नादानी ने फिर तिरछी नज़र से सिर झुकाकर देखा। देखकर एक बार मुस्कराई और भगवती को लगा, जैसे उसका शरीर झनझना उठा हो। संसार मूर्ख ही तो है, जो इसे पतित कहता है। यह तो केवल रूप है जिसका अस्तित्व बहुत अल्पायु है। इसे भी पुरुष देश और काल की सीमा में बांध करके अपना स्वार्थ नापना चाहता है। मन के भीतर कुछ हँसा। स्वार्थ को माप से अधिक गुरुत्व रखनेवाली स्वार्थ की सिद्धि धीरे से मुस्करा उठी। भगवती ने कामेश्वर की ओर देखा। वह अविचलित-सा उसी ओर देख रहा था।

भगवती सिहर उठा। युवती धीरे से हँसी। दोनों जाकर कुर्सियों पर बैठ गये। युवती ने बांये हाथ से सितार हटा दिया और कुहनी के सहारे अधलेटी सी बैठ गई।

कामेश्वर ने कहा—'यह हैं नादानी! और आप भगवतीप्रसाद। कालेज में पढ़ते हैं। हमेशा अव्वल रहते हैं और औरतों से हमेशा दूर भागते हैं। आज मैं इन्हें ज़बर्दस्ती पकड़कर लाया हूँ, अपने अहोभाग्य समझो।

'शरीफ़ आदमी ऐसे ही होते हैं न?'—कहा और भगवती पर आँखें गड़ाकर नादानी धीरे से हँसी। भगवती की झिझक न जाने क्यों कुछ कम हो गई। बरबस ही उसके होठों पर मुस्कराहट छा गई। सचमुच उस समय वह बहुत सुंदर लगा जैसे साधारण बदली भी, बहुत दिन गर्मी पड़ने के बाद, आस्मान में बहुत ही मोहक प्रतीत होती है। नादानी को कुछ-कुछ विस्मय हुआ। उसने एक बार उसकी ओर कुछ समझने का प्रयत्न करते हुए देखा। कैसा है यह आदमी जो प्रहारों पर हँसता है, जैसे पत्थर जब तक पत्थर की रगड़ नहीं खाता, सरलता से आग ही नहीं निकलती! और भगवती सोच रहा था कि वेश्या का परिचय भी कितना अल्प है! जिसके पीछे मनु के बनाये कोई बंधन लागू नहीं होते। न पिता का नाम, न पति

का नाम, जानती है तो बस मा का नाम, जिसके बताने की कोई आवश्यकता नहीं, क्योंकि अपने आपका परिचय अपने अस्तित्व से अधिक कुछ भी नहीं। जिसकी घृणित दासता ही बंधनमयी स्वतंत्रता पर पलटकर चोट कर उठी है और न क्षमा करना चाहती है, न क्षमा-प्रार्थना करती है, क्योंकि करने न करने का प्रश्न परंपरा की रूढ़ियों के नीचे दबा पड़ा है, कुचला गया है, किंतु मर नहीं पाया। उस अनावृत्त नारी के प्रति जो उसकी अनुपस्थिति में एक क्षोभ था, उसकी उपस्थिति में एक कौतूहल बन गया। भगवती को याद आया। प्राचीन काल में रोमन सम्राट् मनुष्य और सिंह का द्वंद्व देखा करते थे। यह कौन नहीं जानता था कि मनुष्य का अंत ही एकमात्र परिणाम है, किंतु मनुष्य को मरते हुए देखने को सहस्रों की भीड़ एकत्र हुआ करती थी। उस आनंद की वीभत्सता भी मन का यदि संतोष बन सकती थी, तो सैकड़ों शताब्दियों के बाद सभ्यता के इस आवरण में चाँदी का शेर यदि स्त्री से खेल करे तो क्या आश्चर्य! और पुरुष और स्त्री का संबंध समाज में हर स्थान पर बद्ध है। यही एक स्थान है जहाँ पुरुष स्त्री के प्रति अनाच्छादित बर्बरता से आकर्षित होता है। वह चाहता है कि उसे फूल ही समझूँ, फूल समझकर ही कुचल दूँ और उस कुचलन से निकली गंध पर झूमकर विभोर हो जाऊँ।

भगवती के कंधे पर हाथ रखकर कामेश्वर ने अंगरेज़ी में कहा—मुझे यक़ीन है, तुम्हें यह जगह उतनी ही बुरी लगी जितनी तुम आशा कर रहे थे।

भगवती ने कुछ नहीं कहा। नादानी मुस्कराई। समझी या न समझी, यह तो कोई नहीं जानता। कामेश्वर से उसने आँखों ही आँखों में कुछ इशारा किया। कामेश्वर उठकर भीतर के कमरे में चला गया। नादानी भी उसके पीछे उठकर चली गई। भगवती कमरे में अकेला बैठ गया। सामने ही एक अद्भुत सौंदर्यमय चित्र था। भगवती का एकांत उसे कुरेद उठा। वह उठकर चित्र देखने लगा। चित्र की उस स्थान पर उपस्थिति से उसे विस्मय हुआ। गांधारी अंधी थी। वह महाभारत के भीषण युद्ध के बाद एक दिन अचानक उस भयानक शोक में भी, शोक से आहत जर्जर भी, भूख से पागल हो उठी थी और इस समय वह अपने सौ पुत्रों, बंधु-बांधवों के रक्त से भींगी पृथ्वी पर खड़ी होकर रोटी खा रही थी।

चित्र वास्तव में उतना सुंदर कभी नहीं था। वीभत्सता के सहानुभूतिहीन रूप ने एक करुणा का उत्पादन कर दिया था। वह देर तक उसे घूरता रहा।

भीतर जाकर नादानी ने कामेश्वर के कंधों पर हाथ रखकर कहा—यह कौन है ?

कामेश्वर ने मुस्कराकर अपना प्रश्न पूछा—है कैसा ?

'हिरन है।' नादानी ने हँसकर कहा। कामेश्वर भी हँस दिया। उस हँसी में अपने जीवन का कलुष भी खिलाड़ी का चातुर्य बन गया था। दोनों ने स्नेह से एक दूसरे की ओर देखने का अभिनय किया। नादानी ने कहा—मगर तुमने यह नहीं बताया कि यह करता क्या है ?

'मालूम देता है, तुम बातों को बहुत जल्दी भूल जाती हो ?'

'क्यों ?'—नादानी ने आँखें उठाकर पूछा।

'अभी तो मैंने तुम्हें बताया था, कालेज में पढ़ता है। हमेशा फर्स्ट आता है।'

'अरे हाँ'—नादानी ने झेंपते हुए कहा—'मैं तो बिल्कुल ही भूल गई थी। तो फिर ?'

इस प्रश्न के लिए जैसे कामेश्वर बिल्कुल तैयार नहीं था। उसने उसकी ओर केवल तीक्ष्ण दृष्टिपात किया। कहा कुछ नहीं। वह इस स्त्री के क्षणिक परिवर्तन से तनिक चौंक गया था। उपन्यासों में बहुधा पढ़ा है कि वेश्या भी प्रेम में पड़ जाती है और वह प्रेम सदा गलत व्यक्ति से हो जाया करता है, कहीं ऐसा ही तो नहीं ? वह कुछ भी निश्चय नहीं कर सका।

नादानी ने फिर कहा—तो इसके बाप क्या करते हैं ?

'बाप नहीं है।'

'तो भाई होंगे ?'

'नहीं इसके कोई नहीं था न है।'

'तो फ़िर यह दुनिया में आया कैसे ?'

कामेश्वर फिर हँसा। यह स्त्री कभी-कभी बिल्कुल कालेज के शोख़ लड़कों की-सी बातें करने लगती है। फिर अपने आप कहा—'इसके सिवाय मा के कोई नहीं है।

'ज़मींदार है ?'

'नहीं।'

'रईस है ?'

'नहीं।'

'तो फिर इसे यहाँ क्यों ले आये हो ? यह क्या कोई धर्मशाला है ?'

कामेश्वर ने नीचे का होंठ काट लिया। अभी तो कहती थी अच्छा है। और अब यह प्रश्न।

कहा—'क्यों, तुम उसे पसद नहीं करतीं ?'

'जहाँ तक आदमी का सवाल है, मैं उसे जानती ही कितना हूँ, जो उसपर राय कायम कर लूँ। वैसे शकल-सूरत का तो बुरा नहीं है। लेकिन मेरे पास उसे लाने का अर्थ ?'

कामेश्वर कोई उत्तर नहीं दे सका। वह उसकी ओर देखता रहा। नादानी ने कहा—मैं पुरुष को उसके पुरुषत्व से नहीं चाह सकती। मैं जानना चाहती हूँ उसके पास धन है ?

कामेश्वर का मौन घृणा से उसका मुख टेढ़ा कर गया। नादानी हंस पड़ी, जैसे कामेश्वर मूर्ख था। वह बोल उठी—'घृणा हो रही है ? लेकिन यह तो एक सच है। वेश्या धन के अतिरिक्त किसे प्यार करती हैं ? यदि पुरुष को अपने ऊपर इतना गर्व है कि वह धन से मुझे खरीद सकता है, तो क्या मेरा गर्व अनुचित है कि धन के अतिरिक्त पुरुष के पास और कोई साधन नहीं जिससे वह मुझे खरीद सके ?'

उसने कामेश्वर की ओर पीठ और दीवाल की ओर मुँह करके भारी स्वर में कहा—यदि तुम चाहते हो कि मैं तुम्हें भीख दूँ तो साफ़-साफ क्यों नहीं कहते।

कामेश्वर ने कहा—'भीख ? कैसी भीख ! मैं उसे यहाँ सिर्फ़ इसलिए लाया था कि उसने जीवन में कभी स्त्री का संसर्ग नहीं किया। काश तुम उसका झिझक छुड़ा देतीं।

'क्यों नहीं किया ?' नादनी ने मुड़कर पूछा। 'इसी लिए न कि वह गरीब है ? तो मुझसे सुनो कि यदि वह गरीब है तो उसे ऐसा करने का कोई अधिकार भी नहीं है। यदि मुझे गरीबी के कारण समाज और किसी भी तरह जीवित रहने देना नहीं चाहता, तो फिर मुझे परोपकार की छलना का यश लेने की कोई आवश्यकता नहीं।'

वह हँसी। सच वह बड़ी कटु और चुटीली हँसी थी। उसमें व्यंग्य का विष भँवर बनकर चक्कर मार रहा था।

कामेश्वर ने आगे बढ़कर उसके कंधों को ज़ोर से पकड़ लिया और कहा—तुम जीत गईं। मैं हार गया हूँ।

एकदम वह मुड़ा और बिजली की तरह बाहर निकल गया। भगवती उस समय भी चित्र ही देख रहा था। एकाएक कामेश्वर को उस वेग से निकलते देखकर उसने पुकारकर कहा—अरे सुनो! कहाँ जा रहे हो?

किंतु कामेश्वर ने कुछ नहीं सुना। वह तो एकदम चला गया। क्षण भर में ही भगवती ने उसकी ओर दौड़ने का निश्चय किया, किंतु इससे पहले कि वह कदम उठाये, किसी ने उसका हाथ पकड़कर अपनी ओर खींचा। भगवती ने मुड़कर देखा और हठात् उसके मुँह से निकल गया—'आप?'

'तुम कहाँ जा रहे हो?'

प्रश्न निर्विवाद-सा उसके मुख पर टकरा गया। तुम! आप भी नहीं। इस संबंध में हीनता ही तो है। भगवती का सारा शरीर झनझना उठा। उसे लगा जैसे उसका हाथ किसी वज्र मुट्ठी में बंद है। उसने कातर दृष्टि से नादानी की ओर देखा। नादानी ने कठोर स्वर से कहा—'क्या तुम उसके साथ ही आये थे? जानते नहीं यह वेश्या का घर है? यहाँ आनेवाले को स्वयं भी समर्थ होना चाहिए!

भगवती ने कुछ नहीं कहा। वह देखता रहा। देर तक देखता रहा। फिर धीरे से उसने कहा—मालुम देता है, तुम्हें लोगों ने सताया बहुत है।

नादानी ने सुना। हँसी और बड़े ज़ोर से हँसी। फिर कहा—क्यों आये हो यहाँ बाबू?

भगवती फिर भी खड़ा रहा, क्योंकि नादानी ने उसका हाथ पकड़ रखा था। वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गया। यह कामेश्वर ने उसे कहाँ लाकर फँसा दिया। अभी तक कैसा शांतिपूर्ण जीवन बिताया। न जाने क्या का क्या हो जाये। और कोई उसे इसे इस स्थान पर देखेगा, तो क्या कहेगा, क्या इसी लिए वह गाँव से यहाँ आकर रह रहा है? मा सुनेगी तो क्या सोचेगी? गाँव के लोग क्या कहेंगे? भगवती सोचते-सोचते सिहर उठा।

नादानी ने उसका हाथ छोड़ दिया और पलंग पर बैठ गई। और कहा—भगवती! यहाँ आओ।

भगवती मुग्ध-सा उसके पास चला गया। उसने कहा—बैठो।

वह कुर्सी पर बैठ गया। नादानी उसे घूरती रही। फिर धीरे-धीरे जैसे वह शांत हो गई। उसने कहा—गाना सुनोगे?

भगवती ने सिर हिला दिया। अपनी इस अस्वीकृति पर उसे तनिक भी संकोच नहीं हुआ। हृदय ने कहा—जानते हो? गाना सुनने के लिए मनुष्य के पास दो कान होना ही पर्याप्त नहीं है। उसकी जेब में कुछ दाम भी होने चाहिएँ। किंतु हृदय पर अज्ञात-वासना ने प्रहार करके उत्तर दिया--किंतु मेरा तो कोई दोष नहीं। मैंने तो कभी अपने आप गाना सुनाने को नहीं कहा। यदि मैं इसे मना कर दूँ तो इसे बुरा नहीं लगेगा?

हृदय कभी इतनी जल्दी परास्त नहीं होता। उसने मुड़कर कहा--लेकिन ज्ञात या अज्ञात रूप से यह संगीत वासना को जगाने का साधन नहीं, तो क्या है?

तब स्वार्थ की समस्त शक्ति ने भवानी की भाँति समस्त शक्तियों का एकत्रीकरण होकर उत्तर दिया--मैं यहाँ अपने आप नहीं आया। आकर फँस गया हूँ। अब और कर भी क्या सकता हूँ? यदि नहीं सुनता तो बात भी क्या कर सकता हूँ। यह मेरा दोष नहीं है।

नादानी तार झुनझुनाने लगी थी। वह गाने लगी। गीत अपने आप थोड़ी देर तक गूँजता रहा। फिर अंतराल में लय हो गया। पहाड़ों में एक गूँज उठी और अपने हृदय का समस्त हाहाकार उसने करुण से करुणतम स्वरूप में उगल दिया। किंतु पत्थरों ने इसे एक दूसरे पर निर्दयता से फेंक दिया और सब मिलकर उसपर बर्बर अट्टहास कर उठे। भगवती अचेतन-सा बैठा रहा। उसने एक बार भी पुराने अभ्यस्तों की भाँति वाह-वाह नहीं की। प्रशंसा नहीं की। बुत बना था, बुत बना बैठा रहा। उसका संकोच ही इस बात का साक्षी था कि वह सचमुच वहाँ बैठने के योग्य न था। नादानी ने सितार हटा दिया। फिर पूछा—गीत कैसा लगा?

भगवती ने कहा—बहुत अच्छा।

'और सुनोगे?'

'नहीं।'—भगवती ने हठात् उसे उत्तर दिया। नादानी चौंक पड़ी।

'क्यों? तुम तो कहते थे अच्छा लगा'—उसने विस्मय से पूछा।

भगवती ने धीरे से कहा—सुनना तो सरल है, लेकिन उसकी कीमत चुकाना तो मेरे बस की बात नहीं है।

'तो फिर यहाँ आये किस लिए थे ?'

'मैं अपने आप यहाँ नहीं आया था। बल्कि मुझे इस घर में घुसते समय ज्ञात हुआ था कि कामेश्वर मुझे ऐसी जगह ले आया था।

नादानी ने होंठ बिचका लिए। सीधा प्रहार कर रहा है। मुँह पर कह रहा है कि वह एक वेश्या है। इतनी बार अपने आप दूसरों को बार-बार जताने पर भी न जाने क्यों वह अबकी एकदम विक्षुब्ध हो उठी। उसने तीक्ष्ण स्वर से कहा--और तुम यह जानते हुए भी कि ऐसी जगहें तुम्हारी सीमा में नहीं आती, एक बार झाँक आने में नहीं झिझके ?

लोहे पर लोहा ज़ोर से टकरा गया। एक दूसरे ने एक दूसरे की निर्बलता को ढूँढ़कर उसपर अपने मन की विकृत ईर्ष्या के विकराल नख चुभा दिये और दोनों ने एक दूसरे की ओर घोर घृणा से देखा और विचलित न होकर आँखें फेर लीं। भगवती के हृदय पर एक जोर का घूँसा लगा। वह संसार से कहता है कि वह दरिद्र है। किंतु क्या दरिद्र होने के कारण वह एक वेश्या से भी पतित है ? लेकिन इस स्त्री का क्या ? यह तो अपनी लाज हया खोकर ही यहाँ आकर बैठी है। इससे कुछ भी भलमन्साहत की आशा करना अपने मन की दासता के अतिरिक्त कुछ भी नहीं, जो यह समझती है कि किसी भी परिस्थिति में क्यों न हो, मनुष्य फिर भी मनुष्य ही है। किंतु यहाँ तो ऐसा नहीं। मनुष्य तो न जाने कब का सड़ गया और उसे निकालकर बाहर कर दिया। उसी की लाश पर यह किला खड़ा है, सामंती शक्ति का, बलि ही जिसकी नींव का एक मात्र धन है, धन, जिसकी रक्षा के लिए मनुष्य की नहीं, एक पिशाच की आवश्यकता है, क्योंकि पिशाच ही कभी भी कोमलता को छलना में नहीं पड़ सकता। भगवती के चेहरे पर एक स्याही-सी फिर गई। वह विक्षुब्ध होकर बोल उठा—तुम समझती हो, तुम्हारे पास आना किसी भी आदमी का गर्व हो सकता है ?

'गर्व हो या न हो, यह तो मैं नहीं जानती। किंतु इतना अवश्य जानती हूँ कि आदमी मेरे पास आते हैं और वह उनकी नीचता का काफ़ी प्रमाण है।'-- नादानी ने उसकी ओर क्रुद्ध होकर देखा।

भगवती हँसा। उसने कहा--नीचता तो कह दिया; यह नहीं कहा कि मैं स्वयं इतनी घृणित हूँ कि मनुष्य के और किसी रूप का मुझसे मेल नहीं हो सकता।

नादानी ने चिल्लाकर कहा—चुप रहो ! भिखारी ! आये थे अपने रईस मालिक को लेकर कि दो टुकड़े मुझे भी डलवा देना। निकल जाओ यहाँ से। ज़िंदगी भर की है खुशामद, यहाँ नवाबी दिखाने आये हैं।

लेकिन भगवती हँस पड़ा। अपमान को अपमान समझने से ही तो अपमान होता है। फिर भी धीरे-धीरे उठा और द्वार की ओर चला। नादानी देखती रही फिर आवाज़ दी—भगवती !

भगवती रुक गया। नादानी उठकर उसके पास आगई और पूछा—'बुरा मान गये ? जा रहे हो ?'

भगवती कुछ नहीं समझा। खड़ा रहा। चुपचाप। उसे जैसे उत्तर देने को भी कोई आवश्यकता नहीं। उसका मौन ही उसकी समस्त वाक् शक्ति का पर्यायवाची है। नादानी ने मुँह फेर लिया, जैसे वह कुछ कहना चाहती थी, मगर कह नहीं सकती। हृदय को घुमड़न एक असह्य नीरवता बनकर भीतर भीतर ही खदक उठा जैसे कत्था खदक उठता है और वे कठोर टुकड़े रक्त का रंग धारण करके ऊष्मा से तड़फड़ाने लगते हैं।

नादानी ने ही कहा—भगवती ! कामेश्वर तुमको लाया था। वह कायर था, भाग गया। तुम उतने निर्बल नहीं लगते।

भगवती ने सुना और कहा—वह तुम्हें पालता है जैसे घर पर उसने टामी कुत्ते को पाला है। मैं उसका नौकर नहीं हूँ।

नादानी ने फूत्कार करते हुए कहा—तुम बँगले के कुत्ते हो, ऐसा तो मैंने नहीं कहा। तुम्हें देखकर ऐसा कोई नहीं कह सकता। तुम जानते हो तुम क्या हो ?

उसने आँखें उसके चेहरे पर गड़ा दीं। उनमें ऐसी दृष्टि थी जैसे कर्कश मुड़ी हुई उँगलियाँ गला घोट देने के लिए उठकर हवा में धीरे-धीरे मृत्यु का भीषण हाथ बनकर झुकने लगते हैं। नादानी ने उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही कहा—तुम एक सड़क के कुत्ते हो। दूसरों की झूंठन को मेहनत से कमाया माल समझनेवाले।

'नादानी'—भगवती जोर से चिल्ला उठा। उसका स्वर वीभत्स हो गया। किंतु नादानी पागलों की तरह हँस पड़ी और पलंग पर लेटकर हँसती रही। भगवती उसकी ओर आग्नेय नेत्रों से थोड़ी देर तक देखता रहा और फिर एकदम मुड़कर बाहर निकल गया। हँसी की आवाज़ अभी उसके कानों में गूंज रही थी। जैसे बाहर स्वच्छ

हवा थी और वह एक विषैली सड़ाँध में से निकलकर आया था। एक बार उसने साँस ली और फिर चल पड़ा। अनजाने ही उसके पैर अपने कमरे की ओर न उठकर कामेश्वर के घर की ओर मुड़ गये।

भगवती ने कमरे में प्रवेश किया। उसने अंतिम वाक्यांश सुना। लवंग कह रही थी—वह तो हमारे गाँव का है।

इंदिरा ने उठकर स्वागत किया। कहा—आओ भगवती! आज तो अजीब हालत कर रखी है। क्या हो गया है तुम्हें? यह तुम्हारा चेहरा कैसा लग रहा है?

भगवती ने बोलना चाहा। पर स्वर अवरुद्ध हो गया। गलग्रथित कंठ ने उस संकोच को एक डर बनाकर भीतर बैठा दिया। उसने भर्राये स्वर से कहा—कामेश्वर आ गया?

'कहाँ गये थे भैया?'—इंदिरा ने सरलता से मुस्कराकर पूछा। भगवती को लगा जैसे वह जानती थी, जैसे यह इन सबने मिलकर साज़िश की थी उसे नीचा दिखाने की, उसके घावों को हरा करने की। उसने कहा—तो क्या अपने कमरे में हैं?'

'मैं तो नहीं, जानती आइए। वहीं छोड़ आऊँ।' फिर मुड़कर कहा—लवंग मैं अभी आती हूँ। और फिर कहा—चलिये।

भगवती उसके साथ हो लिया। दूसरे कमरे में पहुँचते ही उसने उसकी राह रोककर पूछा—'भगवती! एक बात कहूँ?'

'नहीं।'—भगवती ने रोष से कहा—'मैं यहाँ तुम्हारी बात सुनने नहीं आया हूँ। मुझे कामेश्वर से मिलना है।'

इंदिरा उसके विकृत स्वर को सुनकर चौंक गई। फिर भी उसे क्रोध हो आया। उसने तेज़ होकर कहा—लेकिन तुम्हें सुननी ही पड़ेगी।

भगवती चुप होकर उसे देखने लगा। इंदिरा ने इसकी कुछ चिंता नहीं की। उसने धीरे से कहा—तो तुम सचमुच इतने क्रुध हो? किन्तु मैंने तो कभी तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ा। मैंने तो कभी तुम्हारा अपमान नहीं किया। फिर? फिर इतनी प्रतिहिंसा किस लिए?

भगवती को एक हल्का-सा चक्कर आया। उसने अपना हाथ उसके कन्धे पर रखकर अपने आपको सँभाल लिया। इंदिरा विस्फारित नयनों से उसे देखती रही।

भगवती की आँखें झुक गईं। उसने धीरे से कहा—मुझे माफ़ करो इंदिरा। मैं बिल्कुल आपे में नहीं था। उफ़! यह मैंने क्या किया? मुझे जाने दो इंदिरा! कामेश्वर से मैं अब नहीं मिलना चाहता। उफ़! उफ़ ....

इंदिरा कुछ भी नहीं समझी। उसने कहा—क्यों, भैया से नहीं मिलोगे?

भगवती ने कातर स्वर से कहा—मिलूँगा, इंदिरा। अवश्य मिलूँगा। लेकिन इस समय नहीं। अब तो व्यर्थ होगा। एक काम कर सकोगी?

इंदिरा ने कहा—क्या?

'मुझे बाहर पहुँचा दोगी?'

'क्यों नहीं? लेकिन क्या तुम बीमार हो?'

'नहीं, मैं बिल्कुल ठीक हूँ।'

'तो फिर तुम्हें हो क्या गया है?'

'कुछ भी तो नहीं।' और फिर ऐसे कहा जैसे वह कुछ भी नहीं जानता—मैं घर जाना चाहता हूँ।

इंदिरा ने उसका हाथ पकड़ लिया। कहा—चलो। तुम्हें आराम करने की ज़रूरत है।

'आराम?'—भगवती के मुंह से फूट निकला और वह लौटते हुए हँस उठा।

दूसरे दिन जब भगवती कालेज से लौटकर आया, न जाने क्यों उसका हृदय एकदम उद्विग्न हो गया। वह अपनी पराजय को स्वयं ही नहीं समझ पाया। एक विक्षोभ से उसका हृदय भीतर ही भीतर व्याकुल हो रहा था। नादानी का चित्र उसकी आँखों के सामने बरबस लोटने लगा। फिर वही उन्माद! वह मन ही मन काँप उठा।

उसने खिड़की से झाँककर देखा, कामेश्वर सड़क पर जा रहा था। आज जैसे उसे यह जानने की भी आवश्यकता नहीं थी कि भगवती जीवित है या मर गया। और कल वह कितने उल्लास से, स्नेह भरे आवेश से उसे अपने साथ पकड़कर नादानी के घर ले गया था। तो क्या उसने जान-बूझकर मेरा अपमान कराया है? भगवती इस प्रश्न पर अटक गया। वह देर तक इसी उलझन में पड़ा रहा।

एकाएक बराम्दे में कुछ लड़कों की बातचीत सुनकर जैसे उसका ध्यान टूट गया और उसे लगा, जैसे वह फिर कठोर संसार में लौट आया था।

वह उठा। कपड़े पहने। बालों पर कंघा फेरा। पहली बार शीशे में अपनी सूरत देखी और न जाने क्यों मुँह पर एक लाली सी दौड़ गई। कौन-सा युवक ऐसा होता है जो यौवन में अपने आपको सुंदर नहीं समझता? भगवती ने आँखें हटा लीं और नादानी के घर की ओर चल पड़ा।

जिस समय वह द्वार पर खड़ा हुआ, घर खुला पड़ा था। वह भीतर घुस गया। न जाने क्यों उसे इस प्रकार चुपचाप भीतर जाना भी अनुचित नहीं लगा।

भगवती ठिठक गया। विस्मय से उसकी आँखें विस्फारित हो गईं। क्षण भर को हृदय स्तब्ध हो गया। यह वह क्या देख रहा था? पर्दा खिंचा हुआ था। उसकी बगल की तरफ़ एक कोना हल्की हवा से फूलकर उठ गया था जिसमें से कमरे के भीतर का दृश्य दिख रहा था। कौतूहल ने मर्य्यादा को ठोकर मारकर दूर हटा दिया। भगवती वहीं छिपकर खड़ा हो गया। भीतर हल्के प्रकाश में नादानी कपड़े बदल रही थी। भगवती ने देखा जैसे बेटा मा को देख रहा था, भाई अपनी बहिन को। नादानी निरावरण खड़ी थी। सिर से पांव तक, पेट से पीठ तक, कंधे से घुटने तक, टखनों से गर्दन तक, नितंबों से हाथों तक, उंगलियों से कुहनियों तक, बालों से मुख तक, जैसे पाप का भीषण हलाहल खुल गया हो, अत्याचार का रक्त जम गया हो। एक ऐसी झल कि यह दुनिया उस आग में तड़प कर जल जाये। भगवती ने देखा, वह स्त्री थी। केवल मादा। यह औरत का सौदा था, मा का सौदा था, मनुष्य और धन के बर्बर संभोग का एक माध्यम था, मदिरा रक्त थी और जीवन का गला सूख रहा था। उन आँखों की ज्योति से जैसे महलों में आग लग गई थी, एक असमर्थ, मूक, प्यासी अबला का विराग भीषण प्रतिशोध उगल रहा था। भगवती की काम-तृष्णा उसकी ज्वाला में भस्म हो गई। अपमानित जीवन का पथ धुल गया था। यह दैत्य नहीं था, आदमी ही पैरों के नीचे कराह रहा था; भयानक आग की लपटों में युग कराह रहा था। वैभव की आत्मा छीनकर वह नारी शांत मूक वहाँ खड़ी थी, चिर विषाद की कालिमा उसे डस रही थी। उसकी सदा की बद्ध आत्मा उसे गुलाम बना रही थी।

भगवती ने देखा--एक चाँद सा मुँह, सुंदर केश, अधमुँदी आँखें, दो मांसल हाथ जैसे चिकने साँप, जंघा, घुटने,...कोई लचक नहीं, कुछ नहीं, सिर्फ एक मादा, जिसमें कोई दैवी आकर्षण नहीं, भगवती की समझ भूल गई कि कैसे इसी मांसपिंड

में अज्ञान ही रहस्य बन जाता है। वीणा पर झूमनेवाली रागिणी। किंतु मन नहीं माना। उसने उसे देखा, आँख गड़ाकर, अधमुँदी आँखों से, पलक खोल कर .....

केवल एक नारी, एक सहज स्नेह की प्यासी नारी। केवल एक गाय की तरह ही तो है यह। उसमें से रुपये की आवाज़ कहीं से नहीं आ रही थी। कोई गंध नहीं, कोई भय की छाया नहीं।

नादानी को एकाएक कुछ भ्रम-सा हुआ। उसने बड़ा तौलिया झट से अपने शरीर पर ओढ़ लिया। और बढ़कर कहा—कौन? कौन है वहाँ?

एक बार मन में आया भाग जाये, किंतु जैसे पैरों ने उठने से इंकार कर दिया। वहीं बुत-सा खड़ा रहा। नादानी ने पर्दा उठाकर झाँककर देखा और एक बार विस्मय से उसकी आँखें खुल गईं। फिर हठात् व्यंग्य से हँस पड़ी। भगवती के रोम रोम में आग सी लग गई। वह उस पतिता के सामने भी एक घोर अपराधी के रूप में खड़ा था। जहाँ डाके डालना उचित है, चोरी नहीं। कुछ भी नहीं सूझा। लज्जा से एक बार कान तक लाल हो गये, किंतु समस्या की सुलझन नहीं हुई। नादानी अभी भी सामने उसी उपेक्षा से देख रही थी।

एकाएक नादानी ने उसका हाथ पकड़ लिया और अहसान करती-सी बोली—तुमने मेरी बात नहीं मानी। बहुत भूखे लगते हो? आओ। वैसे तो तुम्हें यह अवसर कभी नहीं मिलेगा।

वह फिर हँस पड़ी। भगवती के काटो तो खून नहीं। एक झटका देकर हाथ छुड़ाने की भी शक्ति नहीं रही। पराजित-सा खड़ा रहा, जैसे वह एक पशु था, उसमें से मनुष्यता का समस्त विवेक लुप्त हो चुका था।

नादानी ने अट्टहास किया। आज उसने अपने से भी हीन व्यक्ति को देखकर अपने अहंकार की वास्तविक स्पर्धा को जागते हुए देखा। अपमान करने के लिए उसने फिर कहा—आओ।

भगवती निर्जीव-सा देखता रहा। फिर उसके मुख से लड़खड़ाते शब्द निकले—मैं नहीं, मैं नहीं, मैं इसलिए नहीं आया था ··

नादानी हँसी। तो फिर क्यों आये थे? सुबह खाना खाया था? सूरत तो नहीं बताती।

इस अपमान-जनक प्रश्न को सुनकर भगवती तिलमिला गया। नादानी ने फिर गंभीर होकर कहा—रुपया चाहते हो?

भगवती ने निर्दोष नयनों से सिर हिला दिया। उसने धीरे से कहा—मैं केवल एक बात के लिए आया था। वह यह कि तुम यह काम छोड़ दो। नादानी ने सुना। भगवती का हाथ ऐसे छोड़ दिया जैसे बिजली का तार छू गया हो। लौटकर भीतर चली गई। भगवती ने देखा, वह बिस्तर पर मुँह छिपाकर रो रही थी। वह कुछ देर चुपचाप देखता रहा। नादानी भूल गई, जैसे भगवती था ही नहीं।

फिर सिर उठाकर उसने भगवती की ओर देखा। उसकी आँखों में आँसू डबडबा रहे थे। कातर दृष्टि से एक बार देखा और फिर सिर झुका लिया।

भगवती देखता रहा।

[२५]

कागज़ के फूल

इंदिरा ने हँसकर कहा—'सच ?'

'नहीं तो क्या मैं तुमसे हँसी कर रही हूँ ? बिल्कुल सच समझो । अब तो दिन भी ज़्यादा नहीं रहे ।'

'शाबाश ! और सारी बातें ऐसे चुपके-चुपके कर लीं कि किसी को पता तक नहीं चला ? हुआ कैसे ?'

'मंसूरी में मुलाकात हुई थी । लाइब्रेरी के पास । मैं एक बेंच पर बैठी थी । आस्मान खुला हुआ था । हवा बड़ी मतवाली थी । उस दिन मैं आस्मानी साड़ी पहने थी और उसी समय हमने एक दूसरे को देखा । वह एक रिक्शे में से उतरकर एक दूकान के भीतर गया । और फिर...'

लवंग को रुकते देखकर, शरारत भरी आँखों से देखते हुए इंदिरा ने कहा—क्यों, रुक क्यों गई ? फिर बताओ न क्या हुआ ?

'फिर राजेन ने कहा कि डैडी को उज्र नहीं होगा ।'

'राजेन तो इंगलैंड से हाल में ही लौटा है न ?'

'हाँ, बिल्कुल गर्मियों में ही । बार० एट-ला ही होना चाहता है । बड़ा अच्छा आदमी है ।'

'I Love him.'

'यानी कि मैं उसे प्यार करती हूँ । खूब । तो यह दिल्लगी मंसूरी में शुरू हुई ?'

लवंग ने कहा—शैतान ! हमारा प्रेम तुम्हें सिर्फ़ एक मज़ाक मालूम देता है ? अब शादी के बाद हम भी इंगलैंड जायेंगे ।

'नामुमकिन',—इंदिरा ने टोककर कहा—नामुमकिन ! लड़ाई के दौरान में शायद ही इजाज़त मिले ।

लवंग ने चेतकर कहा—उस कमबख्त हिटलर को लड़ाई छेड़ने को कोई और मौक़ा नहीं मिला ?

इंदिरा ने सिर हिलाकर कहा—तो गोया आपकी शादी की साइत लड़ाई छिड़ने के पहले तलाश की जाती और उसकी बुनियाद पर लड़ाई छेड़ी जाती।

'चुप रहो बेवकूफ !' लवग ने मुस्कराकर डाँटा !—लेकिन तुम ही बताओ। इंगलैंड से बढ़कर 'हनीमून' मनाने के लिए और कौन-सी जगह थी ? राजेन सुनेगा तो उसे कितना दुःख होगा !

'हाँ तो फिर क्या हुआ ?'

'उसके बाद वे डा० सिन्हा के घर ही आकर टिक गये। उसके बाद Life was a real pleasure, सच जिदगी बिल्कुल, बिल्कुल.. क्या कहना चाहिए.. ...'

इंदिरा ने धीरे से कहा—स्वर्ग हो गई।

'बिल्कुल ठीक। Exactly ! इंदिरा ! जिदगी बिल्कुल स्वर्ग हो गई। मेरे पास लफ़्ज नहीं हैं, वर्ना मैं उसको तुम्हें बाताती। उफ़ ! काश ऐसा होता ! मगर मैं 'पोयट' (Poet, कवि) नहीं हूँ।'

'तुम्हें तो जरूरत भी नहीं है। पोयट तो राजेन को बनना होगा। है कैसा ?'

'Oh ! Handsome ; Broad shoulders, deep chest Wonderful eyes !'

(सुंदर विशाल स्कध, प्रशस्त वक्ष, अद्भुत नयन।)

इंदिरा कुछ प्रभावित हुई। काश वह भी एक ऐसा ही पा जाती। लेकिन लवग का भाग्य अच्छा है। उसकी-सी किस्मत सबकी नहीं होती। लवंग का आर्थिक पहलू सुरक्षित है, और यहाँ सब ऊपर ही ऊपर का ढाँचा रह गया है। दोनों में बराबरी कैसे हो सकती है ?

लवंग ने फिर कहा—मैंने एक रोज़ राजेन से बात करते समय पूछा था कि तुम ज़मींदार आदमी हो। ज़मींदारों के यहाँ ज़मींदार खान्दानों की लड़कियाँ जाती हैं जो मुँह पर घूँघट काढ़ती हैं और कहिए न कि एकदम अठारहवीं सदी की चिड़ियाँ होती हैं। उनमें ऐश करने की हविस बहुत होती है। हुकूमत का घमड भी बहुत होता है। फिर ऐसी जगह तुम मुझे ले जाओगे तो बन सकेगी ? मैं तो पर्दा नहीं

करूँगी। मैंने कालेज की शिक्षा पाई है। Equality—बराबरी दे सकोगे ? उसने कहा—तुम समझती हो इंगलैंड में मैंने सिर्फ़ किताबें पढ़ी हैं। नहीं डारलिंग, तुम बिल्कुल आजाद रहोगी। तुम डैडी को नहीं जानतीं। वे भी इंगलैंड से लौटे हुए हैं। उनके ज़्यादातर दोस्त रिटायर्ड आई० सी० एस० और बड़े-बड़े अफ़सर ही हैं। लेकिन वे भारतीय हैं। भारत की सभ्यता का उन्हें बड़ा गर्व है। तुम देखोगी उनकी आलमारियाँ ऐसी ही किताबों से भरी पड़ी हैं। अक्सर जो अंगरेज लोग उनके यहाँ आया करते हैं वह इस वजह से उनकी बहुत तारीफ़ करते हैं। सच बहुत आगे बढ़े हुए हैं।

लवंग चुप हो गई। वह जैसे किसी चिंता में पड़ गई। इंदिरा भी चुप होकर कुछ सोचने लगी। उसे उसके भाग्य पर ईर्ष्या भी हुई। इसी समय किसी की पदध्वनि सुनाई दी। सिर उठाकर देखा उदास भगवती द्वार के बीच में खड़ा होकर नमस्ते कर रहा था। इंदिरा ने कहा—आइये! मिस्टर भगवती! आइये! परसों आपको क्या हो गया था।

भगवती आकर एक कुर्सी पर बैठ गया। लवंग के मुख पर अपनी वही चिंता खेल रही थी। भगवती उसे देखकर दिल ही दिल सकपका रहा था। उसे न जाने क्यों यह लड़की कुछ भयानक-सी लगती है। फिर भी कुछ समझ नहीं पाता, कह नहीं पाता। उसने अंदाज से देखा कि यह वातावरण भारतीय इतिहास की अपनी एक विशेषता रह चुका है। टैगोर के बचपन में इन्हीं जैसे लोग हिंदुस्तान को आगे ठेलकर ले गये थे, लेकिन आज इन्होंने अपने विद्रोहात्मक अंश को बिल्कुल छोड़ दिया है या यों कहा जाये कि इससे अधिक विद्रोह इनका वर्ग कभी भी नहीं कर सकता था। वह इनकी सीमा के बाहर था।

इंदिरा ने मुस्कराकर कहा—आपने मेरी बात का कुछ जवाब नहीं दिया।

'जी, मैं तो ठीक ही था। कुछ तबियत जरूर खराब थी।'

इंदिरा सुनकर मुस्कराई। उसने कहा – भगवती! तुम तो चंदौसी के पास के रहनेवाले हो न ?

'हाँ, क्यों ?'

'तो वहाँ कहाँ रहते हो ?'

'एक गाँव है।'

'कौन-सा गाँव है। आखिर! बताने की बात बताओ। यह तो तुम पहले भी बता चुके हो कि एक गाँव में रहते हो।'

'खिरावटी!'

लवंग ने एकदम चौंककर पूछा—क्या कहा। खिरावटी? आपने खिरावटी ही कहा न?

'जी हाँ'—भगवती एकाएक सकपका गया।

'तब तो आप राजेन को जानते होंगे?' लवंग ने पहली बार उसमें दिलचस्पी लेते हुए पूछा।

'जी, वह तो मेरे गाँव के जमींदार हैं। उन्हें कौन नहीं जानता। हाँ मैं उनका दोस्त तो नहीं हूँ।'

'वह कैसे हो सकते हैं आप?' लवंग ने उपेक्षा से कहा—आखिर उन्हें अपने रुतबे का भी तो खयाल रखना पड़ता होगा।

भगवती ने आहत होकर इंदिरा की ओर देखा। इंदिरा ने सिर झुका लिया। फिर बात बदलने के लिये, नज़र न मिलाते हुए कहा—इनकी उन्हीं राजेन से शादी हो रही है। राजेन के पिता ने कहा था कि शादी खिरावटी में ही होगी, किंतु लवंग के भैया तैयार नहीं हुए। अब अगले महीने जाड़ों में यहीं होना निश्चय हुआ है। राजेन के पिता ने पहले तो कहा था, वह भारतीय ढंग की लड़की पसंद करेंगे, किंतु फिर राजेन ने उन्हें मना लिया। उन्होंने कहा—मुझे कितने दिन जीना है। जो कुछ है वह तुम्हीं लोगों के लिए है। तुम जिसमें खुश रह सको वही करो।

लवंग भगवती को कुछ देर से घूर रही थी। वह देखती ही रही। कल्पना के किसी अज्ञात स्तर पर उसे लगा कि राजेन और भगवती की मुखाकृति में बनावट में बहुत कुछ साम्य था। किंतु यह बात व्यर्थ है। संसार में मनुष्यों का कुछ ठीक नहीं। बंबई में ढूँढ़े पर एक न एक आदमी ऐसा अवश्य ही मिल जायेगा जिसकी कामेश्वर से कुछ कुछ शक्ल मिलती होगी।

भगवती ने सुना। सुनकर उपेक्षा दिखलाई। यही लवंग थी जिसके विवाह को उसने इतना सरल बना दिया था और आज यही इतना अभिमान दिखला रही है। अब यदि इसे वह सब कुछ बताये तो भी यह विश्वास ही कब करेगी। फिर भी हर हालत में यही तो कहना पड़ेगा कि राजेन उसपर बहुत मेहरबान है और यह

वह अपने मुँह से किस प्रकार कह सकेगी? भगवती यही सब सोचकर चुप रह गया। उसने इंदिरा की ओर देखा। साफ़-साफ़ लिखी थी एक अर्द्ध घृणा-सी उन होठों पर, मानों वह कुछ ही देर में बिल्कुल विक्षिप्त होकर फूट पड़ेगी। किंतु वह यह निश्चित नहीं कर सका कि उसका यह भाव था किसके प्रति? क्या वह उसी के प्रति तो नहीं था? क्या वह उसकी दयनीयता पर हो तो इतने गर्व को मादकता से कुछ ही क्षण में अपनी उच्छृंखलता का विस्फोट कर देना चाहती है?

भगवती अप्रसन्न-सा उठ खड़ा हुआ। यदि उसका बस चलता तो वह यह विवाह अब कभी भी नहीं होने देता। किंतु बात हाथ से निकल जा चुकी थी।

जब वह अपने कमरे पर पहुँचा, होस्टल प्रायः सूना पड़ा था। रविवार होने के कारण लड़के अधिकांश में अपने छोटे-छोटे झुंड बनाकर चले गये थे। कोई सिनेमा, कोई किसी के यहाँ चाय पर, कोई प्रेम करने की राह पर··· केवल वही अकेला रह गया था। बहुत से लोग यही सोचते हैं कि भगवती के ठाठ हैं। देखो तो कैसा मुँजो फाँसा है। बिल्कुल नया बांगड़ू आया है, मगर साले की लड़कियों तक में पैठ है। भगवती मुस्कराया! उन्हें क्या मालूम कि पानी ऊपर ही ऊपर इतना गहरा दिखाई देता है, वास्तव में उसमें कोई गहराई नहीं, निरा छिछला है, बल्कि यह कहना भी गलत नहीं होगा कि वास्तव में जल की गदगी की भयावहता ही उसके गंभीर लगने की एकमात्र छलना है। किंतु इसके लिए भगवती क्या करे? वह तो कहीं अधिक प्रसन्न होता यदि वह यहाँ अकेला पड़ा रहता। अपना काम करता। न किसी से लेना, न किसी को देना। खैर देने का सवाल तो अब भी नहीं उठता। किंतु उसी न देने की निर्लज्जता को न लेने का महत्त्व दिखाकर छिपाना पड़ता है। भगवती व्याकुल हो गया। छत की ओर देखा। किंतु निराकार शून्य की ऊब से भी अधिक थी वह हड्डी की-सी भावहीना भयानक सफेदी, जिसपर आत्मा की कोई छाया क्षण भर भी अटकना नहीं चाहती।

कमरे में निस्तब्धता छा रही है। कमरे के बाहर निस्तब्धता छा रही है। कालेज बिल्कुल सुनसान पड़ा है। भगवती अधिक देर तक भीतर नहीं टिक सका। कमरे में ताला डालकर वह फिर बाहर आ गया। आज न जाने क्यों पढ़ने में बिल्कुल जी नहीं लगा था। अन्यथा नित्य तो वह ऐसे सन्नाटे की कामना किया करता था। शोरगुल से उसकी आत्मा घबराती थी जैसे वह उसमें अपने आपको जीवित नहीं

रख सकेगा। उसमें खो जायेगा या अच्छा हो—चकनाचूर हो जायेगा जैसे शीशा स्वच्छ, स्निग्ध होकर भी ठंडी मार से चटक जाता है, टूट जाता है।

भगवती कालेज की बगल में शांत खड़े हुए बड़े छायादार इमली के पेड़ के नीचे जा खड़ा हुआ। कितनी नीरवता थी। कभी-कभी एकांत पक्षी का गूंजता स्वर कालेज के लाल पत्थरों से टकरा जाता था और उसकी गूँज फिर शून्य में झूलकर पेंगें मारने लगती थी। उसके बाद वे बरबादी के निशान, बियाबान की आबादी के सलोने खेल जो हरम से लेकर युद्धक्षेत्र तक अपनी सीमा रखते हैं, कबूतर फड़फड़ाकर छज्जों के नीचे छिप जाते थे। उनकी गुटुर-गूँ-गुटुर-गूँ तड़फड़ाती-सी ऊँचे-ऊँचे गुबदों पर लहराने लगती थी। यह सब कितना अच्छा है। साम्राज्य अच्छा नहीं, साम्राज्य का खंडहर कहीं अच्छा है जिसमें राजकुमारी के सतीत्व और आडंबर, धन और वैभव का अहंकार तो नहीं बचा, केवल बच रही है उसके कोमल सौंदर्य की याद, वे प्रेम के तड़पते गीत, और नूपुरों की झंकार पर हाहाकार करते पाषाण ··

भगवती ने आकाश की ओर देखा। ऊपर सघन पत्ते थे, वे पत्ते जो इतने छोटे हैं कि उनपर कोई मौज नहीं कर सकता, एक, दो, तीन, दस, बीस, सौ, हजार होकर उन्होंने आकाश का आच्छादन कर लिया है और वह मुलायम धूप उसे पार नहीं कर सकती। कितनी देर वह उस वृक्ष के नीचे खड़ा रहा, उसे याद नहीं, किंतु एक स्वर ने उसका ध्यान भग कर दिया। वीरेश्वर और समर उत्तेजित् से कुछ बातें करते आ रहे थे। उन्होंने भगवती को अभी तक नहीं देखा था। उन्हें देखकर भगवती पेड़ के बड़े तने की आड़ से छिप गया और उनकी बात सुनने लगा। उस समय उसे लगा, जैसे पेड़ के पीछे चंचल हव्वा छिपकर साँप की बात सुन रही हो। किंतु वे दोनों बातें करते आ रहे थे।

'तो तुम्हें बुलाया है शादी में?'

'Of course! मुझे नहीं बुलायेंगे तो फिर बुलायेंगे ही किसे?'—वीरेश्वर ने कहा।

'यार हमें तो नहीं बुलाया।' समर ने कहा और धीरे से हँस दिया।' काश हम भी हसीन होते।'

सचमुच उस बात में बड़ा दर्द था। वीरेश्वर ने कहा—बुलायेंगे तुम्हें भी। न बुलायेंगे, तो बुलाने को मजबूर किया जायगा।

'गोया वह कैसे ?'

'गोया बोया क्या ? कामेश्वर से मैं कह दूँगा। इंदिरा लायेगी कुछ निमंत्रण पत्र। फिर चलेंगे। मैं तो बस एक रोज़ ही जाऊँगा। दावत के दिन। मुझे रईसों की सोहबत ज़्यादा पसंद नहीं!'

'ख़ैर! वह तो इसलिए कि तुम कम्युनिस्ट हो। लेकिन इस बात का ख़याल ज़रूर रखना। वहाँ नहीं गये तो समझ लो कि समर ने तो अपनी ज़िंदगी में कुछ नहीं किया।

वे दोनों दूर निकल गये। भगवती के सामने एक नया पृष्ठ खुल गया। यदि उसे भी नहीं बुलाया, तो इंदिरा क्या सोचेगी ? उससे तो उसने कहा है कि लवंग का विवाह प्रायः उसी के कारण हो रहा है। वह यह क्यों समझने लगी कि बड़े आदमी वक्त पर भूल जाने के आदी होते हैं। उन्हें यह याद क्यों रहने लगी। उनकी दृष्टि में भगवती के सम्मान का क्या मूल्य है ? और इंदिरा समझेगी कि वह कुछ नहीं है। फिर विचार आया कि वास्तव में वह कुछ नहीं है। उसके मानापमान का प्रश्न व्यर्थ का प्रश्न है और उसे इस बारे में कोई मुग़ालता नहीं होना चाहिए। किंतु मनुष्य की आत्मा यदि सत्य को ही स्वीकार करके सीमा में बँधी रह जाये, तो जीवन के संघर्ष का अन्त है। व्यावहारिक सत्य को परिवर्त्तनशील जानकर प्रत्येक व्यक्ति उसे अपने सुविधानुसार कुछ बड़ा छोटा कर देना चाहता है। और यही भगवती के साथ भी हुआ।

यदि वह राजेन की ओर से कोशिश करके आता है तब वह उनकी प्रजा के रूप में आयेगा। बराबरी का दर्जा मिलना असंभव है। और लीला तब क्या कहेगी ? जानती वह क्या नहीं ? किंतु फिर भी.. किंतु फिर भी...

किस अव्यक्त भाव का अदूरदर्शी स्वार्थ है जो अब भी अपना गरल दंत चुभाकर धीरे-धीरे सब कुछ विषाक्त किये दे रहा है! क्या भगवती का मन आज कुछ चाहता है, चाहता है कि कोई उसे प्यार कर ले। और अवाक् होकर भगवती ने देखा। वह कुछ नहीं देख सका। पैरों के नीचे सड़क जीभ लपलपाती-सी पड़ी थी, जैसे वह उसे जीवित ही निगल जाना चाहती हो। वह चल पड़ा।

द्वार को दूर ही से देखकर उसे वास्तविकता का भान हुआ। यह वह कहाँ जा रहा था ? क्या लीला उससे मिल सकेगी ? क्या लीला उसे घर में बुला ले

जायगी ? इंदिरा के पास कामेश्वर नामक कवच है, लीला के पास क्या है ? कुछ नहीं ।

चाल धीमी पड़ गई । वह हताश-सा धीरे-धीरे चलने लगा । शायद लीला बाहर लान पर ही हो । आवाज़ देकर उसे बुला ले और फिर एकांत वृक्ष के नीचे उसके होठों पर अपने गर्म होंठ रख दे और बार-बार कहे कि मैं तुम्हारे बिना जीवित नहीं रह सकती । मैं तुम्हारे लिए सब कुछ छोड़ सकती हूँ । मैं तुम्हारे अतिरिक्त प्रत्येक से घृणा करती हूँ, क्योंकि वे मुझे तुम्हें स्वतंत्रता से प्यार नहीं करने देते ।

अंगरेज़ी की प्रसिद्ध कहावत है । कल्पनाएँ घोड़ा होतीं, तो भिखारी अच्छे सवार होते । भगवती को याद आते ही वह बरबस अपनी मूर्खता पर मुस्करा उठा । उसकी दृष्टि लान पर कुछ खोजने लगी । लीला बाहर ही अपने कुत्ते से खेल रही थी । कुत्ता बार-बार उसकी गोद से छूट भागता था और वह बार-बार उसे पकड़ लेती थी । और हल्के हाथ से थपकी मारकर कहती थी—शैतान ! नटखट ! और ज्योंही वह भागता था—उसके पीछे-पीछे पतली आवाज़ में कहती हुई भागती थी, जिमी, जिमी, जिमी, जिमी ! भगवती को न जाने क्यों एक कोफ्त-सा मालूम पड़ा । उसने मन ही मन कहा—'मूर्ख !' पर वह धीरे-धीरे चलता रहा । कुत्ते ने फिर ज़ोर लगाया और एक झटके में बाहर निकल गया । उसे स्त्री का आलिंगन बिल्कुल रुचिकर साबित नहीं हो रहा था । भगवती ने देखा । अचानक ही उसकी दृष्टि उठी और उसने देखा, सामने भगवती जा रहा था । हठात् चुप हो गई । जैसे झेंप गई हो । जैसे आज भगवती ने उसे बच्चों की तरह खेलते हुए देख लिया था । और भगवती ने समझा कि अब वह आकर मुझसे बात करेगी । मुझे घर में निमन्त्रित करेगी । फिर उस रात की बात याद आई । वह तो बंधनों में पड़ी थी । वह कैसे मिल सकती है ! सचमुच लीला देखती रह गई । वह बड़ी बड़ी आँखें उसकी ओर एकटक देखती रहीं और तब तक देखती रहीं जब वह आँखों से ओझल नहीं हो गया । उन आँखों में कितनी उदासी थी, कितनी थकान थी । यौवन का मोती बीच में झलमला रहा था । कितनी अथाह तृष्णा उनमें काँप रही थी जैसे शिव की हथेली में हलाहल हिल रहा हो, युगान्तर की प्रतीक्षा का वह अवसाद उन बंधनों में कैसी व्याकुल गंध की भाँति निःश्वास छोड़ उठा था । कैसी सीमाएँ बाँध रखी हैं, प्राण ! मैं तुम्हारे

बिना कैसे रात बिताऊँगी। क्या इस संसार में हम तुम कभी एक दूसरे से गा-गाकर प्रेम नहीं कर सकेंगे ? जैसे अशोककुमार और देविकारानी करते है ?

भगवती को फिर हँसी आ गई। देविकारानी का पति और कोई व्यक्ति होने के कारण ही अशोक कुमार को वह स्वतन्त्रता मिली है। और फिर अभिनय तो कला है। कला! एक खेल! एक उन्माद की भावुक उड़ान, या डूबते हुए का अपनी पूरी शक्ति से अथाह लहरों पर हाथ-पैर पटकना। कौन जाने! किंतु अभिनय में जीवन की कितनी शून्य तृष्णा, कितने अभावों का प्रत्यक्षीकरण कि मनुष्य उसी छलना में डूबा रहे और जो कुछ शेष है उसपर न हाथ रखे, न उसे कभी कार्यरूप में परिणत करे, क्योंकि एक भी ईंट हटते ही सारा ढांचा लड़खड़ाकर गिर जाने का भय है।

भगवती आगे निकल गया। मन में कहा—इसी राह लौट चलूँ। किंतु फिर सकोच बोल उठा—अभी तो उधर से आये हो।

'फिर क्या हुआ ?'

'उधर ही से लौटोगे तो क्या समझेगी ?'

'समझेगी वही जो वह स्वय समझना चाहती है।'

'किंतु किसी और ने देखा तो क्या कहेगा ?'

'यही कि अपने काम से आया होगा कहीं।'

'या यह कि चक्कर लगा रहा है।'

'अगर, अगर . यह है तो मैं उधर से जाना नहीं पसन्द करता।'

'मैंने तो इसी से कहा। कालेज के इतने लड़के चक्कर लगाते हैं उनसे कोई बोलता है ?'

'नहीं, मैं उनसे अलग हूं। लीला को यदि यह ज्ञात हो गया कि उसका प्रिय भी एक साधारण व्यक्ति है, तो फिर बात ही क्या रही ?'

भगवती सीधा चलकर दाईं ओर मुड़ गया। पीछे जाने का साहस ही नहीं हुआ।

जब वह होस्टल पहुँचा, शाम हो गई थी। चारों ओर अँधेरा छा गया था। उस समय लड़कों का गुंजार धीरे-धीरे उठने लगा। लड़के खाना खा रहे थे। उनकी वह मस्ती देखकर भगवती को एक कुढ़न-सी हुई। रहमान और सुंदरम सामने से

आ रहे थे। भगवती को देखकर रहमान ने कहा—अरे भगवती! तुम भी अजीब आदमी हो। देश की बातों में कुछ हलचल नहीं देखते? लड़ाई के कारण हिंदुस्तान में नई आफ़त पैदा हो गई है। चारों तरफ़ शोर मच रहा है। बात यह है कि जर्मनी और बर्त्तानिया का यह···

भगवती घबरा गया। उसने कहा—ठीक बात है।

रहमान ने बात काटकर पूछा—क्या ठीक है?

'यही'—भगवती ने कहा—कि जर्मनी और बर्तानिया का यह···

सुंदरम ने बीच ही में कहा—अच्छा कल हमारी मीटिंग में आना। भगवती ने जान छुड़ाने को कहा—अच्छा।

वे दोनों चले गये। कमरे का द्वार खोलकर भीतर घुसा ही था कि कामेश्वर भीतर घुस आया। उसकी आँखें लाल हो रही थीं। वह लड़खड़ा रहा था। उसके मुँह से बदबू आ रही थी। भगवती ने कहा—'कौन? तुम?'

लेकिन कामेश्वर ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह एक क़दम बढ़कर उसके पलंग पर लेट गया और उसने आँखें बंद कर लीं। वह नशे में धुत्त था। उसे शरण की खोज थी, जो उसे मिल गई थी। भगवती ने देखा और न जाने क्यों एक अनुकंपा से उसका हृदय भर आया। उसने भीतर से दरवाज़ा बंद कर लिया, ताकि कोई और न आ जाये।

---

[२६]

बंजर में गीत

उस बड़े बँगले में एक अद्भुत वैभव छा गया। राजेंद्र के ठहरने के साथ-ही-साथ ज़मींदार सर वृन्दावनसिंह के आ जाने से चारों तरफ़ लहराती हुई संगीत-ध्वनि फूट पड़ी। इधर-उधर दूर-दूर तक ख़ेमे गड़ गये। सामने ही लवंग का बँगला था। जगह-जगह रंगबिरंगे कागज़ों की डोरियाँ बाँधी गईं। द्वारों पर बड़े-बड़े केले के पेड़ बाँधे गये। सामने के बड़े दरवाज़ों पर 'स्वागत' बिजली के लट्टुओं से बनाया गया। नफ़ीरी और नौबत दिन रात बजने लगीं। एक तूफ़ान आ गया। बस नौकर ही नौकर दिखाई देते थे। सफ़ेद वर्दियों में साफे और कमरबँधों पर ज़री बांधे नौकर इधर-से-उधर घूमते थे। हर ख़ेमे में अलग रेडियो बजता सुनाई देता था। सैकड़ों लोगों की बारात थी। लड़कीवालों ने भी कुछ कोर-कसर नहीं छोड़ी। टक्कर का मामला था। बच्चे अच्छे-अच्छे कपड़े पहने इधर-उधर उत्सुकता से खेला करते। वैभव की सबसे ठोस निशानी—भिखारियों की पाँत दरवाज़ों पर सदा इकट्ठी रहती। रात को जब अंधकार छा जाता उस समय बत्तियाँ जगमगाने लगतीं। पेड़ों पर बल्ब अनेक अनेक रंगों में जलने लगते, चार बड़े-बड़े गोलों में से दूध की-सी सफ़ेद रोशनी चाँदनी की तरह सबको जगा देती और लाउड स्पीकर से गीतों की उमड़ सुनने के लिए सैकड़ों आदमियों की भीड़ राह चलते-चलते रुक जाती। ऐसा लगता था जैसे एक अच्छी खासी नुमाइश आकर ठहर गई हो। बारात में ही चार 'सर' थे। तीन लड़केवालों के, एक लड़कीवालों की ओर से। काली-काली ऊनी अचकनें, चूड़ीदार पाजामे, सिर पर रेशमी साफ़े, या काली टोपी; दूसरा सेट-सूट, टिप-टाप। और औरतों के बदन से, कपड़ों से निकली ख़ुशबू से घर तो क्या, सड़क तक महका करती थी। वे अधिकांश में गोरी थीं, उनका बदन गदबदा था और उस अंगरेज़ियत में भारतीय के दो-तीन लक्षण उनमें यह थे—अंगरेज़ी और हिंदी को

खिचड़ी बोलना, हाथों में सोने के गहने पहनना, माथे पर लाल बिंदी लगाना और साड़ी पहनना। समस्त समाज में दो उत्तरी वर्ग थे, एक प्राचीन भारतीय, दूसरा नवीन यूरोपीय। बाकी सब दक्षिण वर्ग ग़ुलामों का ढेर था।

ज़मींदार साहब अकेले नहीं आये थे। उनके साथ गाँव के अनेक संभ्रांत व्यक्ति थे। मास्टर साहब, पण्डितजी, पेंशन-याफ़्ता तहसीलदार, डाक्टर साहब आदि-आदि तथा उनके खानदान के गाँव के लोग। उनका अलग इन्तजाम था। इज्जत में उनकी कोई कमी नहीं थी। इसके अतिरिक्त बाहर के प्रायः सभी बड़े-बड़े कहे जानेवाले लोग आमन्त्रित थे।

ज़मींदार साहब स्थूल काय थे। वे सफ़ेद रेशमी कुर्त्ता और सफेद ढीला पजामा पहनते थे। पैरों में काली मखमली जूतियाँ, किंतु उनके भीतर सदैव ऊनी मोजे रहते थे। ऊनी कपड़ा एक नहीं, अनेक अनेक पहने वह रॉकिंग चेयर पर बैठे झूला करते थे। उनके पास अँगीठी रखी रहती थी। और वे अपना सिगार कभी समाप्त नहीं होने देते थे। उनके बड़े मुख में वह मोटा सिगार छोटा मालूम देता था। किंतु उनका रंग बुढ़ापा भी नहीं छीन सका था। वास्तव में वे बहुत बूढ़े नहीं थे। यह अकाल वार्द्धक्य उन्हें गठिया ने लाकर उपहारस्वरूप दे दिया। गठिया के लिए उनका कोई दोष नहीं। जैसे उनके पिता ने उनके लिए यह लाखों की ज़मींदारी छोड़ी थी, यह भी वही दे गये। ज़मींदारी स्वीकार करना, न करना इनके हाथ की बात थी, किंतु उसमें इनका कुछ भी बस नहीं चलता और काफ़ी रुपया खर्च करके भी वे अपना इलाज नहीं करवा सके। जो डाक्टर मिलता था वह खाऊ होता था। ज़मींदार साहब अक्सर गाँव के पण्डितजी से कहा करते थे—पण्डितजी! दुनिया कहती है कि मथुरा के चौबे खाऊ होते हैं, मगर इन डाक्टरों के सामने तो वे कुछ भी नहीं। क्या विचार है?

पण्डितजी का विचार कभी इधर-उधर नहीं भटका। फ़ौरन जाकर उसी पहले विचार में मिल गया और दोनों खूब हँसे। ज़मींदार साहब की भारी आवाज़ गूँजती रहती। इस समय उनके साथ शहर के दो डाक्टर थे। उनके खेमे पास ही गड़े हुए थे। घंटी बजते ही वे तुरंत हाज़िर हो जाते थे।

बाहर मोटरों की पाँति कभी खतम नहीं होगी। एक आती हैं, सट् करके खड़ी हो जाती है। उसी समय किसी का 'एक्सेलेरेटर' उठता है, चलने की भर्र भर्र

आवाज़ आती है, एक हल्की हल्की, और गाड़ी चली जाती है। जाती है औरतों की सूरत की खुशबूदार साड़ियों वाली मिठाइयाँ लिये, आती है तो नई मिठाइयाँ बिठा लाती है। शहर के ही बहुत से सेठ और पुरानी चाल के लोग दिखाई पड़ते हैं। वे खाने के, पान इलायची के सबसे ज़्यादा शौकीन होते हैं। बड़े ज़ोर से हँसते हैं। उनके साथ ऊपर से नीचे तक सोने से लदी औरतें बग्गियों और मोटरों से उतरती हैं। वे भारी पैर चौड़ाकर धीरे-धीरे चलती हैं। उनके साथ मखमल और रेशम के जरीदार कपड़े पहने बच्चे होते हैं जिनमें कोई दालमोट खाता है, कोई बिस्कुट। उन औरतों के मुँह पर लम्बे-लम्बे घूँघट होते हैं। वे ज़ोर से नहीं बोलतीं। फुस-फुसाकर बात करती हैं। जब बात करती हैं तब गंगास्नान, तीर्थयात्रा, मुंडन, शादी-ब्याह के अतिरिक्त एक बात और करती हैं जिनमें हजारों लाखों रुपयों का जिक्र होता है। और वे कुछ नहीं जानतीं। उन्हें अँगरेज़ी क़तई नहीं आती और उन्हें पराये मर्दों से बात करने के बजाय नौकरों से लड़ लड़कर, लगातार बच्चे देने का बहुत शौक होता है। दूर से देखने पर लगता है कि लालाजी की तिजोरी छूट भागी है और छनछनाती कहर बरपाने को डोल रही है।

क़हक़हों से आसमान कभी नहीं गूंज पाता, क्योंकि मैदान खुला हुआ है और वहाँ कुर्सियों पर लोग आकर बैठते हैं, एक दूसरे से मिलते हैं। पान खाते हैं, सिग-रेट पीते हैं, ताश उड़ाते हैं। बरामदे के पीछे एक कमरा है, खूब बड़ा-सा, वहाँ एक दो पेग भी चढ़ाते हैं। उनका अलग इंतजाम है। उस कमरे में एक भी देशी शराब नहीं है। वधू के मामा के हाथ में सिर्फ़ उस कमरे की जिम्मेदारी के और कोई काम नहीं छोड़ा गया। ऐसी जिम्मेदारी की जगह घर का आदमी होना चाहिए। और किसी पर भी विश्वास नहीं किया जा सकता।

लवंग के बँगले के एक बड़े कमरे में एक दूसरा ही प्रबंध है। कल शाम से शुरू हुआ-हुआ रात तक अंगरेज़ी नाच होता रहा। उसमें बड़ा लुत्फ़ आया था। बीच में दो कुर्सियाँ पड़ी थीं। एक पर वर, दूसरी पर वधू विराजमान थे और उन्हें घेर-कर युवक-युवती युवक-युवती ने नृत्य किया था जैसे कभी प्राचीनकाल में अथवा पौराणिक काल में राधाकृष्ण-राधाकृष्ण ने नृत्य किया था। वर-वधू का वेष देखने योग्य था। लवंग उस दिन देवयानी जैसी दीख रही थी। और ऊनी शाल ओढ़े राजेन का गौर शरीर दमक उठा। वास्तव में बहुत सुंदर था। उसके गालों पर

यौवन ऊधम मचाया करता था। जब वह विलायत से लौटकर आया था तब गाँव की लड़कियाँ उसे देखने को बहाने करके उसी के अहाते में बने कुएँ पर पानी खींचने आती थीं और एक लड़की तो इतनी पागल हो गई थी कि उसने एक रोज एकांत पाकर उच्छ्वसित-सी, नशीली आँखों से देखते हुए उसका हाथ पकड़ लिया था। राजेन सदा का हँसमुख है। उसने उसे निराश नहीं किया। और शायद वह लड़की ज़िंदगी भर उस दिन को याद करेगी जब वह रेशम और मखमल के गद्दे तकियों पर आराम से लेटी थी कि उठने को जी नहीं चाहता था। उसने एक धृष्टता भी की थी। बिरादरी की ही थी। कहा था—कुँवर साब! मुझसे ब्याह कर लो। तब राजेन ने उसके शरीर पर लेवेण्डर की पूरी शीशी उडेल दी थी और मुस्करा उठा था।

नृत्य न कहकर 'डांस' कहा जाये तो अधिक उपयुक्त होगा। वह ध्वनि ट्रा ला ला ला···से प्रारंभ हुई और खूब चली। 'औरगेन' बजता रहा। बीच में एकबार लवग ने भी गाया और जब यह हो ही रहा था, एक द्रिम-द्रिम का गम्भीर घोष सामने बने मच पर गूँज उठा। चारों ओर की बत्तियाँ बुझ गईं। मच पर हरा प्रकाश फैल गया। पल भर में ही सातों रंगों का प्रकाश एक दूसरे में मिल गया और तबले की हुंकार टकराकर अधर में लटक गई। उस समय किसी ने नेपथ्य में महाशिवा का आवाहन करते हुए उच्च स्वर से मन्त्र पढ़ा और दूसरे ही क्षण एक सुन्दरी का जाज्वल्यमान रूप थिरक उठा। वह दक्षिणी ढग से एक गहरी नीली रेशमी साड़ी पहने थी जिसके अंचल का आकार अद्भुत सा फैल रहा था और उसके मुखर नुपूरों का चंचल स्वर चारों ओर भरने लगा। वह इंदिरा थी। लोग विभोर होकर देखते रहे। वह सागर नृत्य था। लहरें कुलकुल करती हुई दूर से शोर मचाती हुई आती थीं और मंथर गति से काँपने लगती थीं जैसे वायु ने थपेड़ा मार दिया हो और फिर तीर पर फैल जाती थीं, उस समय उसका रुपहला अचल फेनों की भाँति बिखर कर दोलायमान हो जाता था और फिर उस तूफान का, उस ज्वार का कारण दिखाई पड़ा। अभी तक जो प्रकाश नर्त्तकी के मुख पर नहीं पड़ा था, धीरे-धीरे उधर ही केन्द्रित होने लगा और शनैः शनैः वह आत्मविमुग्ध चन्द्र उठने लगा।

नृत्य समाप्त हो गया। भारत की प्राचीन गरिमा से सबके नयन चौंधिया गये। कहाँ है विदेशी नृत्य में वह भावुकता, वह महानता। थोड़ी देर तक उन्होंने जो-जो वे भारत के विषय में जानते थे उसपर अँगरेज़ी में बहस की। लीला ने रवीन्द्रनाथ

की एक कविता भी गाकर सुनाई और सब मंत्रमुग्ध से वैसी बातें करने लगे जैसी आरंभिक ब्रह्मसमाजी किया करते थे।

इस वैभव के उन्माद को देखकर भगवती मन ही मन विक्षुब्ध हो गया था। उसको किसी ओर से भी नहीं बुलाया गया था। किंतु लीला ने इस बात को देखकर इंदिरा को भगवती को निमंत्रण-पत्र भेजने को मजबूर किया। भगवती ने उसे देखा और वह उसी साँझ इंदिरा से मिलने घर आया। इंदिरा उस समय अकेली थी।

भगवती ने कहा—इंदिरा, आज मैं तुमसे एक बात पूछने आया हूँ।

इंदिरा ने उसकी ओर देखा और वह एक दृष्टि में ही सब कुछ समझ गई। उसने बढ़कर उसका हाथ निस्संकोच पकड़ लिया और उसे एक कुर्सी पर बिठाकर कहा—पहले बैठ जाओ यहाँ पर। मैं तुम्हारे रोब में नहीं आने की। मुझसे बात करते वक्त अगर ज़रा भी शान दिखाई तो याद रखना।

भगवती सकपका गया। आँखें हार्ट चोट हो गई। इंदिरा बिना कुछ कहे-सुने भीतर चली गई और थोड़ी ही देर में लौट आई। उसके पीछे ही नौकर टी ट्रेन ढकेलकर लाया और उनके बीच में छोड़ गया। इंदिरा ने प्याले में चाय उँडेलकर प्याला उसकी ओर बढ़ा दिया और नमकीन की तश्तरी उसकी ओर बढ़ाकर कहा—खाओ!

भगवती ने हठीले बालक की भाँति कहा पहले मेरी बात सुन लो।

इंदिरा ने नज़र भरके देखा और एक बार सरलता से हँसी। कहा—

'हठीले! एक बार मुस्कराओ।'

भगवती पानी पानी हो गया। क्या करेगा वह युगों का अभिमानी बादल जब शस्यश्यामला धरणी उसे सदा देखकर पुलक से काँप उठती है। उठाकर अपने आप मुँह में समोसा भर लिया। मुँह फूल गया। इंदिरा हँस पड़ी।

भगवती का क्रोध दूर हो गया। वह नम्रता से मुस्कराया।

इंदिरा ने चाय पीते हुए कहा—आज राधा क्या कहना चाहती है? अच्छा होता, तुम लड़की होते और मैं एक लड़का होती। यह तो बीसवीं सदी बिल्कुल उल्टा हो गया। तुम इतनी जल्दी रूठ क्यों जाते हो?

भगवती फिर गंभीर हो गया। उसे यह अपना उपहास प्रतीत हुआ। उसने कहा—इंदिरा, तुमने मुझे लवंग के विवाह में क्यों बुलाया है ?

'क्योंकि लवंग मेरी दोस्त है और आप'—मुँह की ओर देखकर कुछ भांपने का प्रयत्न किया और वाक्य पूरा किया 'मेरे भैया के दोस्त हैं। यदि मुझे लवंग के विवाह में भैया को बुलाने का अधिकार था तो आपको बुलाने का क्यों नहीं ? क्या आप समझते हैं, मैं इतना भी अधिकार नहीं रखती ?'

भगवती पराजित हो गया। क्या-क्या कहने आया था और यहाँ आकर सब भूल गया। इंदिरा चुप हो गई। भगवती ने कहा—'इंदिरा ! तुम सचमुच बहुत भोली हो, तभी इन बातों को नहीं समझ पातीं। तुम्हीं सोचो, क्या मेरा वहाँ जाना ठीक होगा ?

'क्यों, ठीक क्यों न होगा ?' - इंदिरा ने बीच में ही पूछ लिया।

भगवती ने परेशान होकर इधर-उधर देखा फिर कहा --लवंग का स्वभाव तुम जानती हो। फिर राजेन मुझे भूल गया होगा। तब तुम इतना स्नेह मानकर भी क्यों मेरा अपमान करवाना चाहती हो ? मेरे पास तो उतने अच्छे-अच्छे कपड़े भी नहीं हैं, जो पहनकर सबके साथ बैठ सकूँ। उनकी तरह बहाने के लिए मेरे पास पैसे भी नहीं हैं। फिर ?'

इंदिरा उठ खड़ी हुई। उसकी कुर्सी के हाथ पर बैठ गई। सोचते हुए कहा -- 'भगवती, तुम इस वैभव को देखकर चौंकते क्यों हो ? अरे यह सब ढोल की पोल है।'

जिस समय इंदिरा यह सब कह रही थी भगवती उसे अपने ऊपर इस तरह झुका देखकर भीतर-ही-भीतर काँप रहा था। किंतु वह यह निश्चय नहीं कर सका था कि यह उसकी वासना है या निस्संकोचता। झिझक ही कलुष का प्रारंभ है। वह दृढ़ता से बैठा रहा।

इंदिरा कहती रही—'तुम किसे रईस समझते हो ? अरे यह राजेंद्र के पिता सर वृंदावनसिंह जो सर का टाइटिल लिये फिरते हैं कल कांग्रेस मंत्रिमंडल के समय में इधर से उधर जूतियाँ चटकाते फिरते थे, कभी पंत के घर, कभी संपूर्णानंद की खुशामद। आज उनकी गठिया का इतना ज़ोर है और कल वे चक्कर लगाते फिरते थे।' भगवती—उसने ज़ोर देकर कंधे पर हाथ रखकर कहा—कुछ नहीं है। सब

चलती का नाम गाड़ी है। आज तुम इतने जोरों से पढ़-लिख रहे हो। कल तुम अगर आई० सी० एस० हो गये तो? फिर तुम्हीं बताओ, इंदिरा याद रहेगी?

भगवती कुछ नहीं बोला। वह इस मधुर कल्पना पर, इस लड़की की कोमलता पर, मुस्कराया। इंदिरा कहती गई,—'और जब तुम आई० सी० एस० हो जाओगे तब इंदिरा तो गई चूल्हे में, आयेगी कोई तुम्हारे भी लवग जैसी और जब वह बन-ठनकर तुम्हारे साथ मोटर में बैठकर चलेगी तब क्या होगा? तब तुम क्या पहचानोगे?

भगवती ने हंसकर कहा—तुम क्या बातें कर रही हो? और उस हंसने में एक बार कुर्सी हिली और भगवती के विस्मय को उत्तेजित करती हुई इंदिरा उसकी गोदी में गिरी सो गिरी, गिरी रह गई, उठने का तनिक भी प्रयत्न नहीं किया।

उसी समय द्वार पर कोई आया-सा लगा और इससे पहले कि भगवती दृष्टि उठाकर देखता, वहां कोई भी नहीं था। भगवती घबरा गया। किंतु इंदिरा बिलकुल अविचलित थी। वह उसकी घबराहट देखकर एक बार मुस्कराई। कहा—तुम घबराते हो? मैं तो कोई कारण नहीं समझती। क्या तुम्हारे हृदय में कंपन हुआ है?

भगवती ने कहा—बिल्कुल नहीं।

इंदिरा उठकर खड़ी हो गई। कहा—आज ऐसी बात हुई है जिसे सुनकर संसार एकमत और निष्पक्ष रूप से इसका निर्णय कभी भी नहीं कर सकेगा। कोई कहेगा, यह असंभव है, कोई कहेगा, यह वासना है, जिसे हम दोनों ने अपने प्रबल ढोंग के पर्दे के पीछे बड़ी सरलता से छिपा लिया। मैंने हिंदी की एक किताब पढ़ी है। उसका नाम सुनीता है। वह किसी जैनेन्द्रकुमार ने लिखी है। वह इतनी खराब किताब है कि उसमें हिरोइन हीरो को खाना खिलाने और दूध पिलाने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं करती। और उसके बाद ही अपने वर्ग को बचीखुची ईमानदारी के कारण हिंदी पढ़ना छोड़ दिया है। उसी में मैंने पढ़ा था कि सुनीता अपने कपड़े उतार देती है और हरिप्रसन्न भाग जाता है। लेकिन वे कायर थे। मैं समझती हूँ, हम लोगों ने आज उससे भी ज्यादा मूर्खता की है। मुझे आशा है, तुम मुझे इसके लिए क्षमा कर दोगे।'

भगवती ने उठकर कहा—सब कुछ हुआ, लेकिन वह नहीं बताया जो मैं जानना चाहता था। मेरे प्रश्न का तुमने कोई उत्तर नहीं दिया ?

इंदिरा ने कहा—प्रश्न का उत्तर देना कठिन नहीं है। यदि तुम बुरा न मानो तो मैं एक काम कर सकती हूँ। यदि तुम्हारी जेब में सौ रुपये हैं, तो तुम्हारी ज़माने में इज्जत है। और नहीं हैं, तो फिर कुछ भी नहीं। इसलिए अगर तुम मेरी बात मान जाओ, तो मैं तुम्हें अभी इसी वक्त सौ रुपये दे सकती हूँ और फिर तुम देखना, क्या रंग आते हैं ?

भगवती ने चीखकर कहा—इंदिरा ?

'तुम जानते हो' इंदिरा ने उसके कोट का कालर पकड़कर कहा—मैं कभी तुम्हारा अपमान नहीं कर सकती। फिर तुम मुझे अपने से दूर क्यों समझते हो ? अरे यह जो तुम में शराफ़त बाकी है, रईसी दिखाने के लिए, अमीर बनने के लिए तुम्हें उसी से हाथ धोना पड़ेगा। जहाँ धन ही सब कुछ है वहाँ तुम आत्मसम्मान घुराना चाहते हो ? सेठों को, बड़े-बड़े आदमियों का कौन नहीं जानता कि शराब पीते हैं, जूआ खेलते हैं, रंडीबाजी करते हैं मगर उन्हें दुनिया शरीफ कहती है। बड़े-बड़े घूँघटों के पीछे होलियाँ जलती हैं, किन्तु कोई टोकने का साहस करता है ? पार्टियों में मर्द और औरत संग-संग नाचते हैं, लेकिन क्या वहीं अंत है ? नहीं। उसके पीछे एक घृणित पशाचिक चित्र है। धन ! धन के कारण लूट और अत्याचार भी करते हैं ! और न्यायी बन जाते हैं, फिर तुम झिझकते हो ? यह दलदल ही होती, तो इसे पार भी किया जा सकता था, किंतु यह महासागर है, इसे हम तुम कभी पार नहीं कर सकेंगे। लवंग तुम्हें नहीं बुलाती, राजेन तुम्हें नहीं बुलाता। कोई परवाह नहीं। कल आओ Grand Feast है। उसके पहले हम लोग ब्रिज खेलेंगे। मेरे पार्टनर बन जाना। और फिर देखते हैं, कौन जीतता है। सौ रुपये यह लो, कल तुम्हें मैं आठ-नौ सौ का मालिक बना हुआ देख सकूँगी, तैयार हो ?

भगवती ने मुस्कराकर कहा—लेकिन इंदिरा, यह तो जूआ हुआ न ! जुए का धन लेने को कह रही हो ?

'जूए का धन !' इंदिरा ने बढ़कर कहा—जुए का धन किसके पास नहीं है। ईमानदारी की कमाई कौन खाता है ? तुम्हारे किसान मजदूर क्या ईमानदारी की कमाई खाते हैं ? उनकी ईमानदारी की कमाई रईसों को लूट बन जाती है और वे

लोग सिर्फ़ अपनी मूर्खता को बचत खाते हैं, जिसे खाने में भी वे नहीं हिचकते। सरकार पाप का धन खाती है, इसी से तो मनुष्य, प्रत्येक मनुष्य हराम का माल खाता है। हमें इसी सरकार को मिटा देना है। और तुम? तुम इसे जुए का धन समझते हो? राजेन को आमदनी क्या है? ज़रा मुझे बताओ। समाज में उसकी इतनी कद्र है वह किस लिए।

इंदिरा हाँफ रही थी। भगवती ने स्वीकार नहीं किया। वह चुप खड़ा रहा। इंदिरा ने कहा --तुम पागल हो। या कहो, तुममें आगे बढ़ने की शक्ति नहीं है। तुम अपनी शराफ़त को लिए फिरते हो? कौन पूछता है उसे? बाजार में तुम्हें उसके दो टके भी नहीं मिलेंगे।

किंतु भगवती दृढ़ खड़ा रहा। वह उन अंगरेज़ों और यूरोपवालों में से नहीं बनना चाहता था जिन लोगों ने इंजील और ईसामसीह के उपदेश पढ़ा-पढ़ाकर बंदूकों के ज़ोर से निहत्थे अमरीका के रेडइंडियंस को जिंदा जलाकर अपना राज्य स्थापित किया था। वह उस वैभव से घृणा करता है जिसमें पाप ही शक्ति है। इंदिरा ने उद्वेग से सिर हिलाकर कहा—तब मैं तुम्हारे सम्मान के लिए कहती हूँ कि तुम वहाँ कभी भी मत आना। जब तुम अकेलेपन से ऊब जाओ तब भैया से भी वहाँ आकर न मिलना। अगर मिलना हो ही तो यहाँ आ जाना। समझे?

भगवती ने स्वीकार किया। उसने कहा—'इंदिरा! तुम इस अंधकार में एक तारे के समान हो। यदि तुम नहीं होतीं तो शायद मेरा जहाज डूब गया होता। आज तुम्हारे पवित्र स्नेह ने मेरे हृदय को धो दिया है। मुझे यह विश्वास भी नहीं होता था कि ऐसी जगह भी कोई मनुष्य रह सकता है। लेकिन आज मुझे मालूम हुआ है कि वर्गों के इस भीषण गरल में भी एक अमृत की बूंद छिपी रह सकती है।

'लेकिन' इंदिरा ने बात काटकर कहा—छिपी रहे। छिपी रहने से लाभ ही क्या है, यदि वह उस गरल को अपनी शक्ति से जला नहीं सकती। मैं उन सबकी इज्ज़त करती हूं जो मानवता को आगे बढ़ाने के लिए अपनी जान देते हैं, किंतु मैं मजबूर हूँ, क्योंकि मैं कायर हूँ।

भगवती ने उसे विस्फारित नेत्रों से देखा। वह आनतवदनी कितनी विवश दिखाई दे रही थी। भगवती उसकी कुछ भी सहायता नहीं कर सकता। वह किसी

दूसरे की सहायता क्या करेगा, जब अपनी ही सहायता नहीं कर सका। उसे लगा, उसके पाँवों के नीचे से धरती खिसक गई थी और वह निराधार खड़ा था। पता नहीं वह कब तक यों ही खड़ा रहा। जब उसका ध्यान टूटा, उसने देखा, द्वार पर लीला खड़ी थी। उसने उसे नमस्ते किया। उत्तर भी मिला। कितना वैभव था उसके शरीर पर। एकदम रेशम, और फर का कीमती ओवरकोट, जूते भी मखमल के और गले में एक बड़ा हीरा, जिसकी चमक से उसके गले में चमक आ गई थी। अकेला हीरा—सोने के काँटों ने उसे तीन ओर से पकड़ लिया था और वह उसके गले में झूल रहा था। बाल कुछ भी चिकने नहीं, किंतु न जाने क्यों जमे हुए, शायद क्रीम लगी थी, और कंधों पर जाकर फैल जाते थे। कोट के अंदर से वे गोरे-गोरे छोटे-छोटे मांसल हाथ ऐसे निकल आते थे जैसे सफेद रंग का छोटा पिल्ला अपना अगला पंजा नाखूनों को भीतर करके निकाल देता है। और पाउडर के कारण वह महाश्वेता लग रही थी। उसकी आँखों में काजल था या नहीं, यह पता नहीं चला, क्योंकि कटाक्ष वह सदा से ही करती आ रही है, सो भी भगवती पर। और आज भी उसने वही किया। अपने यौवन की और ब्रिटिश विनिर्मित टायलेट की गंध से उसने समस्त वातावरण को उद्वेलित कर दिया था। भगवती की ओर व्यंग्य से देखकर कहा—आप तो एकदम गायब हो गये। कहाँ तो आप कहते थे आप राजा के गाँव के ही रहनेवाले थे और मौके पर देखा तो कतई नदारद। ताज्जुब! आपने भी बेरुखी की हद कर दी।

भगवती बोले या न बोले इंदिरा ने पहले ही उत्तर दे दिया—'इन्हें आजकल बहुत काम है। उन्हीं से फुर्सत नहीं मिलती।'

लीला हँसी और कहा – वह तो मैं समझ सकती हूँ।

जो प्रहार प्रारंभ हुआ था वह अब भी उतना ही शक्तिशाली है। उसमें कोई भी तो परिवर्तन नहीं हुआ। पहले उसमें दारिद्र्य पर बरबस हमला करने का प्रयत्न था, किंतु अबकी जो कुछ कहा था वह और भी घृणित था, क्योंकि उसकी भयानकता पूरे समाज का विश्रामस्थल है।

लीला ने फिर भी क्षमा नहीं किया। वह लगातार चोटें करती रही। उसने कहा—मैंने सुना था आपने लवंग के विवाह में बड़ी मदद की थी, किंतु आपको वहाँ न देखकर कुछ विस्मय हुआ था। तो क्या वह अकारण ही था? फिर भी देखिए।

हम लोग तो किसी विषय में अधिक कुछ जान नहीं सकते। आप यहाँ काम में लो हैं। मालूम देता है, आप इंदिरा को पढ़ा रहे हैं।

भगवती के मुँह पर हारकर एक मुस्कराहट छा गई। अच्छा तो गोया यह मान हो रहा है। किंतु उसने एक बड़ा रूखा-सा जवाब दिया—'आदमी के अनेक काम एक दूसरे से इतने गुँथे हुए होते हैं कि उनमें से एक या दो को बाकी से अलग करके देखने से अपनी तुच्छ बुद्धि को भले ही संतोष हो जाये, किंतु उसमे बात समझ में नहीं आ सकती।'

इंदिरा ने सुना और ऐसे दिखाया जैसे उसने बिल्कुल नहीं सुना और उसे बिल्कुल दिलचस्पी नहीं है, क्योंकि इसका उसे कोई अधिकार नहीं है। लीला ने इंदिरा को एक बार तिरछी नज़र से देखा। उसके मुँह पर एक चमक थी, जिसे ऊष्मा की तरन भी कह सकते हैं। उसके गाल दमक रहे थे। और उसके शरीर में एक अलसाहट है जो तूफ़ान के बाद छाती है। विद्रोह नहीं, घृणा से लीला का हृदय तिक्त हो गया। उस असावधानी में उसके मुँह से निकल गया—'भगवती, तुम अपना ब्याह कब करोगे?'

इंदिरा ठठाकर हँस पड़ी। उसने चिल्लाकर कहा—'Excellent!'

और इससे पहले कि भगवती और लीला उसकी ओर विस्मय से मुड़कर देखें, वह हँसते-हँसते लोट-पोट हो गई। उसने उस हँसी के बीच में ही गाना शुरू कर दिया—

मेरे मुन्ने की आई सगाई...

भगवती ने डाँटकर कहा—इंदिरा! यह क्या हो रहा है?

लीला गंभीर हो गई। इंदिरा उठ खड़ी हुई और मुस्कराकर बोली—लीलाजी! लवंग के ब्याह में एक ड्रामा भी तो करना चाहिए? नल दमयंती कैसा रहेगा?

लीला ने कहा—क्या बात क्या है? आज तुम इतनी खुश क्यों हो? तुम्हारा तो ब्याह नहीं हो रहा। फिर क्या बात है?'

इंदिरा गंभीर हो गई। उसने लीला की ओर घूरकर कहा—'लीला!'

और कुछ नहीं कहा। एक घृणित सन्नाटा छा गया। उसी समय बगल के कमरे में कामेश्वर की आवाज़ सुनाई दी। वह कुछ चिल्ला-चिल्लाकर नौकर से कहता आ रहा था। उसके कमरे में घुसते ही सब कुछ बदल गया। कामेश्वर ने एक उपेक्षा

से सबको देखा और फिर कृत्रिम स्नेह से लीला को नमस्ते किया और भगवती के हाथ पकड़कर कहा—आओ! उस कमरे में बैठकर कुछ मर्दों को बातचीत करेंगे। यहाँ औरतों में मेरा दम घुटता है।

भगवती हँसकर खड़ा हो गया और उसके मुँह पर एक मुक्तिचिह्न दिखाई दिया। जब वे दोनों चल दिये, लीला ने एक बार नज़र भर कर भगवती को देखा। उस दृष्टि में इतनी शक्ति थी कि भगवती सहम गया। इंदिरा ने यह सब चुपचाप देखा और मुड़कर भी देखा, देखा तो यही कि लीला आज कुछ निडर है। वह आँखों से ही भगवती को निगल लेना चाहती है। जब वे दोनों चले गये, लीला ने हल्के स्वर मे कहा—यह कितना बनता है? जाने क्या समझता है अपने आपको।

इंदिरा ने इस बात को टाल दिया और बदलकर कहा—अभी असल में नादान है।

'हाँ, कभी सोसायटी में उठा बैठा नहीं है। अभी नया आया है, तभी, ऐसा घबरा जाता है।'

इंदिरा ने हँसकर कहा—सोसायटी! यह भी ठीक है!

घड़ी ने टन टन सुनाई। लीला ने दृष्टि उठाकर कहा—ओहो! बड़ी देर हो गई। अब तो मुझे जाना चाहिए। ड्रेस बदलकर मुझे फिर लवंग के यहाँ जाना है न? तुम कितनी देर में पहुँच जाओगी? मुझे कितनी देर लगती है? तुम चलो। एक काम करोगी?

'क्या?'

'लौटते वक्त मुझे अपनी मोटर में ले चलना।'

'ओ० के० जरूर।' लीला उठ गई। इंदिरा उसे मोटर तक पहुँचा कर लौट आई और कुछ इधर-उधर के काम में लग गई। अभी आधा घंटा हो बीता होगा कि बाहर मोटर हार्न बजने का शब्द सुनाई दिया।

बाहर से पतली आवाज़ गूँजी—इंदिरा ...

भीतर से जवाब गया, वह भी पतली आवाज़ में—कम...इंग (Coming आती हूँ।)।

अनंतर सन्नाटा। बाहर अँधेरा छा गया था। इंदिरा ने जल्दी से चलते-चलते

गालों पर पाउडर फेरा और होंठों पर लाल रंग लगाकर जल्दी से जूतों में पैर डाले और हाथ पर ओवरकोट रखकर खट खट करती हुई बाहर दौड़ गई।

लीला ने मोटर का दरवाज़ा खोलकर कहा—बैठो।

इंदिरा बैठ गई। एक बार लीला ने उसकी ओर देखा और फिर दूसरी ओर की खिड़की से बाँई तरफ बाहर देखकर मानों अंधकार से पूछा—तुम्हारे भैया गये? उन्हें चलना हो तो बुलाओ।

'अभी तो।'—कहकर इंदिरा दौड़कर फिर भीतर गई और अँदर से भगवती और कामेश्वर को बातों में मशगूल लेकर लौट आई। लीला ने कहा—बैठिए! आप लोगों को पीछे बैठने में एतराज़ तो न होगा?

कामेश्वर ने कहा—जी शुक्रिया! क्या यही आपकी काफी मेहरबानी नहीं है कि आप मुझे वहां उतार देंगी?

लीला ने भगवती की ओर देखा। कहा कुछ नहीं। जब दरवाज़े बंद हो गये तो भगवती ने हँसते हुए नमस्ते किया। इंदिरा ने ज़ोर से कहा—नमस्ते! कल आओगे?

'फ़ुर्सत मिली तो,'—भगवती ने छोटा सा उत्तर दिया।

इंदिरा को बुरा नहीं लगा। उसने कहा—'खयाल रखना।'

लीला ने मन ही मन कहा—रखेंगे और खूब रखेंगे। मुँह से व्यक्त स्वरूप में जान-बूझकर भाई बहिन को सुनाने के लिए कहा—'फ़ुर्सत!' और हँस दी।

जब गाड़ी लवग के यहाँ पहुंची गीतध्वनि से अंबर गूँज रहा था। एक हंगामा-सा मच रहा था। बाहर शामियाने के नीचे दो 'सर' आ गये थे और पैंतरेबाज़ी हो रही थी। रिटायर्ड आइ० सी० एस० रमेशचन्द्रदत्त के ऋगवेद के अंगरेज़ी अनुवाद पर बहस कर रहे थे। समाज-सुधारकों का एक ओर मत था कि शादी रजिस्ट्रेशन से होनी चाहिये। हिन्दुस्तान के आज़ाद होने की वही एक तरकीब है। कांग्रेस अगर उसे अपने कार्यक्रम में मिला लेती तो कभी की आज़ादी मिल गई होती। देखिए न? रूस के बोल्शेविकों ने यही किया और आज़ाद हो गये। एक जवान की उस दूसरी कुर्सी पर बैठे बुज़ुर्ग से ईश्वर की सत्ता पर बहस हो रही थी। वह जवान पाइथागोरस को बार बार उद्धृत कर रहा था। उसका कहना था कि हिंदुस्तान के पुराने लोग भी ढूँढ़ने पर ऐसे ज़रूर मिल जायेंगे जो यही बात कहते थे।

लेकिन जब दो और व्यक्ति वहाँ आ गये, दर्शन पर विवाद समाप्त हो गया और वे ब्रिज खेलने लगे। उनमें बातें भी होती जाती थीं—'आपने क्या फ़र्माया ?'

'मैंने ? मैंने कहा टू स्पेड्स।'

'अमा ! ज़रा कम बोला करो।

'क्लब, डायमंड कुछ नहीं, सरपट स्पेड !'

'जी नहीं, मिस्टर ख़ान ने मजबूर किया है......

और फिर यह बहस होने लगी कि अंगरेज़ों का तो जुआ भी एक ही तमीज़दार चीज़ है। और हमारे यहाँ क्या ? सट्टा !

ठठाकर हँसने की आवाज़ आई। डिप्टी कलक्टर मिस्टर आलेहुसेन का ठहाका उनके भारी शरीर को बिल्कुल डाँवाडोल कर गया।

इसी समय लवंग के भाई ने आगे बढ़कर कहा—वेल्कम !

ज़मींदार साहब आ रहे थे। उनके साथ दोनों डाक्टर, गाँव का पूरा स्टाफ़ अपनी पूर्णतया देशी पोशाक में और इधर-उधर के संबंधी, सभी मौजूद थे। उन्होंने हँसते हुए हाथ मिलाया फिर लवंग के बड़े भाई से गले मिले। विवाह हो गया था। दावत का प्रारंभ होनेवाला था। भड़ई के लिए इंतज़ाम पहले से हो गये थे। भीतर के कमरे में शराब की चुस्कियाँ उड़ रही थीं।

लीला एक दम भीतर चली गई। शाम के पाँच बजे से शुरू करके भी लवंग आज अभी तक अपना शृंगार पूरा नहीं कर पाई थी। उस समय वह अपने हाथ में लेकर तय कर रही थी कि गोल इयरिंग पहने जायें कि तिकोने ? लीला जाकर सामने बैठ गई। उसका वह वैभव देखकर एक बार लीला भी भीतर-ही-भीतर दबक गई।

कुछ इधर-उधर की बातें होने के बाद लवंग ने पूछा—तो बताओ न कौन-सा पहनूँ ?

लीला ने कहा—तुम्हारे चेहरे पर तिकोना ही अच्छा रहेगा। कटीली आँखें हैं, सभी चीज़ कटीली होनी चाहिए, नहीं तो काम कैसे चलेगा ?

लवंग हँस पड़ी। उसने वही पहन लिया। लीला ने ही बात छेड़ी—'तुम्हारा ब्याह क्या हो रहा है, इसी के साथ आजकल तो बहुतों के ब्याह हो रहे हैं।'

लवग ने कहा—'और किसका ? मुझे तो नहीं मालूम ?'—उसको चुप देखकर कहा—'बताओ न ?'

लीला ने कहा—'न बाबा ! तुम मेरा नाम बता दोगी । किसी की छिपी बातें कहकर अपने सिर पर बला क्यों लूँ ।'

'मैं किससे कहूंगी ? बता न ? कोई मजे की बात है ?'

'बिल्कुल ऐसी जिसका किसी को गुमान भी न हो ।'

'ओह ! सुनूँ तो ।'

'आज मैंने एक बात देखी ।' कान के पास मुँह ले जाकर धीरे से फुसफुसाकर कहा—आज मैंने इंदिरा को भगवती को गोद में बैठे देखा था ।

लवग को जैसे बिजली का तार छू गया, छिटककर दूर जा खड़ी हुई और घोर विस्मय में निकला—'सच ?'

'तो मैं क्या झूठ कहती हूँ ?'—लीला ने पूछा ।

'लेकिन मुझे विश्वास नहीं होता ।'

'बात ही ऐसी है । कहाँ भोज कहाँ गगू तेली । मगर जो सच है वह सच है, उसे हम तुम नहीं मिटा सकते और मुझे लगता है, काफ़ी बढ़ी हुई हालत । अजी अब तो वह कामेश्वर के सामने उसे अकेले में बुलाती है । और कामेश्वर कुछ नहीं कहता ।'

'तो क्या तुम्हारा मतलब है कि कामेश्वर को सब मालूम है ?'

'यह मैं कैसे कहूँ ?'

'शायद ! आजकल उनकी हालत ठीक नहीं है । इसी से शायद इंदिरा अभी से अपने लिए पहले ही से कुछ ठीक-ठाक कर लेना चाहती है ।'

'मगर ठीक-ठाक तो ठीक आदमी से होता है । उसके पास तो कुछ भी नहीं है । वह किसके क्या काम आ सकेगा ?'

लवग ने हँसकर कहा—इश्क तो अंधा होता है लीला ! उसके लिए कोई क्या कर सकता है । रज़िया बेगम सुल्ताना थी, मगर गुलाम के प्रेम में फँस गई । और वह तो हब्शी था, भगवती तो शक्ल सूरत का बुरा नहीं है । गेहुँआ रंग है, अच्छा ही है । इंदिरा से उसका जोड़ तो अच्छा है ।

लीला विक्षुब्ध हो गई। उसने कहा – मैं नहीं जानती वह इतना घमड किस बात पर करता है !

'क्यों ? घमड कैसा?'

'तुम्हारे विवाह में वह आया ?'

लवंग हँसी। कहा – उसे मैंने तो बुलाया ही नहीं, फिर वह कैसे आता ?

'लेकिन वह राजेन के गाँव का है। उसका फ़र्ज़ था कि वह आता। फिर इंदिरा को जो तुमने दोस्तों को बुलाने के लिए कार्ड दिये थ उनमें भगवती का भी नाम उसने अपने हाथ से मेरे सामने लिखा था। फिर उसके नहीं आने का कारण ?'

लवंग कुछ सोच नहीं सकी। उसने कहा –मैं नहीं जानती। वह क्यों नहीं आया, किंतु यदि उसे गर्व है, तो एक दिन में उसे चूर कर सकती हूँ। वह मेरे गाँव की रिआया है। उसकी मेरी कोई बराबरी नहीं।

लीला हँसी। उसने कहा—तुम क्या कर सकती हो उसका ?

लवग चुप हो रही। उसने चुप रह जाना ही सबसे अच्छा समझा। घूरकर एक बार दर्पण में अपना मुख देखा और अपने आप बाईं भौं तनिक चढ़ गई। लीला ने यह नहीं देखा। उसने कहा – एक बार कामेश्वर से पूछूँ ? मज़ा रहेगा।

लवंग ने गभीरता से कहा—व्यर्थ होगा। कामेश्वर इतनी शक्ति का आदमी नहीं कि यदि उनमें कोई बात वास्तव में हो भी तो भी उसे दाब सके। वह एक काम कर सकता है। बेकार का तूफ़ान उठाना। उससे कुछ न कहना।

और फिर सोचकर कहा—बात ही ऐसी कौन-सी बहुत बड़ी है। नया जोश है, आप ही ठंडा हो जायेगा।

लीला ने चेतकर कहा – हिंदू औरतें ऐसी नहीं होतीं, न होना चाहिए।

'हिंदू ! क्यों उनके दिल नहीं होता ?' और वह ठठाकर हँसी।

बाहर पदचाप सुनाई दी। देखा, बहुत-सी औरतें भीतर घुस आई हैं। और उन्होंने एक शोर मचा दिया है। लवग लजा गई। वह वधू थी। सर नानकचंद की बीबीजी ने अपने मोटे हाथों से उसकी सुडोल ठोड़ी छुई और बलैंया लीं। और गीत शुरू हो गये। लखनऊवाली चद्रा कहीं से ढोल पीटने बैठ गई और वे कुछ सिनेमा के गाने गाने लगीं। बीच-बीच में स्त्रियाँ नाचने लगती थीं। उस समय वहाँ पुरुषों को जाने की मनाही थी।

इंदिरा भीड़ में घुसकर खड़ी हो गई। जब उसके नाचने का वक्त आया, उसने ैर में दर्द होने का बहाना करके मना कर दिया। लवंग को यह अच्छा नहीं लगा शीला ने लवंग की ओर ताना मारती-सी रहस्यपूर्ण दृष्टि से एक बार देखा और फर दृष्टि हटा ली।

इंदिरा देर तक भीतर नहीं रही। वह बाहर लौट आई। लोग खाने-पीने में मशगूल थे। इंदिरा कामेश्वर के पास जाकर बैठ गई। उसके पास दो कुर्सियाँ थीं और उनपर वीरेश्वर और समर जमे हुए थे। उन्होंने खाते-खाते एक बार बरायेनाम बतौर तक़ल्लुफ पूछा - अरे क्यों? भगवती नहीं आया?

इंदिरा ने खाते-खाते कहा—पता नहीं, मैंने बुलाया तो था।

'अच्छा?'—समर ने चौंककर स्वर उठाते हुए कहा – बुलाया था फिर भी नही आया?

कामेश्वर ने उसका पैर अपने पैर से दबाते हुए धीरे से कहा –चुप चुप! बहुत नहीं। इस बात से वह झेंप गया था कि समर यहाँ के निमत्रण को बहुत बड़ी चीज़ समझता है और यह निमत्रण-प्राप्ति उनकी औकात से बाहर था। गोया वे सब ही कबाड़िये थे।

वीरेश्वर मुस्कराकर बोला—'फिर?' जैसे बहुत हो चुका अब नहीं।

समर ने बेवकूफ़ी से टिमटिमाकर देखा और फिर खाने में मशगूल हो गया। इन चारों में से कोई भी काँटे चम्मच से खाना पसंद नहीं करता। इन्होंने उठाकर काँटे चम्मच तश्तरियों की बगल में रख दिये थे और निस्सकोच हाथों से खा रहे थे। समर की तो इस विषय में भी अपनी एक थ्योरी थी। वह कहता था, दुनिया में सबसे पहले चीनी लोगों ने काँटे चम्मच की-सी सींकों से खाना शुरू किया था। फिर यूरोपवाले खाने लगे, क्योंकि वे गंदे रहते थे। उन्हें भी नहाने धोने की कोई सहूलियत नहीं थी। अगरेज़ चोर हैं, इसी से वे समझते हैं, वे ही इसके आदि कर्त्ता हैं। शेक्सपियर के समय में लोग हाथ से खाते थे। उसके बाद लोग चम्मच काँटे से खाने लगे। लेकिन शेक्सपियर की टक्कर का कोई पैदा नहीं हुआ। शेक्स-पियर अब भी उनके लिए बहुत बड़ी चीज़ है। सोलहवीं सदी को वे प्राचीन कहते हैं। मेरी राय में उनको क़तई टाल दिया जाये।

वीरेश्वर चुप तो नहीं था, किंतु समर की अपेक्षा उसमें अधिक कोफ़्त थी वह

ऐसे मौक़ों पर आतंकवादी अराजकवादियों की-सी बातें किया करता था, किंतु उससे बातें करने को एक कला थी, वह कला भी नहीं रही। अब वह प्रायः अकेला पड़ गया है। हरी जबसे ट्रेनिंग में गया है तबसे उसने एक पत्र तक नहीं डाला। एक बार किसी से उसने कहा था—वह सब बरबाद करनेवाले हैं, मैं उनसे कोई वास्ता नहीं रखना चाहता।

वीरेश्वर सिहर उठा। वह सब छोड़ो। यह वक्त उन चीज़ों का नहीं है। वह इधर-उधर देखने लगा। इसी समय एक अजीब बात हो गई। कामरेड रहमान ने अपने उसी फटेहाल में प्रवेश किया। उसने इधर-उधर देखा और इन्हें यहाँ देखकर निस्संकोच 'हलो कॉमरेड' कहकर इनकी ओर आ गया। एक कुर्सी खींच ली और इनके पास बैठ गया। इसकी कोई परवाह नहीं की कि उधर कुर्सी कम हो जायेगी। नौकरों को लगी लगाई तश्तरियाँ उधर से उठाकर इधर रखनी पड़ीं। उनसे रहमान ने कहा—माफ़ करना भाई, यह लोग साथी हैं, इसीसे यहाँ बैठ गया हूँ। सब लोगों ने मुँह पर रूमाल रखकर हँसी दाबी।

रहमान खाते हुए कहने लगा—माफ करना दोस्तो! ज़रा देर हो गई। आज ही मुझे सुबह निमंत्रण पत्र मिला। मैंने सोचा था चलूँगा, मगर फिर एक मीटिंग में फँस गया। देर हो गई। सोचा अब जाना ठीक नहीं होगा। लेकिन फिर सोचा, दोस्तों की ही तो बात है। चला आया। कोई हर्ज तो नहीं हुआ?

'हर्ज? बल्कि एक ही लुत्फ़ रहा'—कामेश्वर ने कहा। रहमान हँसा। फिर पूछा—सब आये होंगे न? कला, सुंदरम, विनोद और सब आये होंगे?

'सब तो नहीं',—इंदिरा ने कहा—जिनको लवग चाहती थी वे अवश्य आये हैं।

'बहुत अच्छा है, बहुत अच्छा है।' रहमान ने कहा—मुझे ज़रा देर हो गई, वर्ना मैं भी वक्त पर ही आ पहुँचता। भाई, वक्त की पाबंदी ज़्यादातर वही कर पाता है जो अपने सुखों को सबके ऊपर रखता है। पाबंदी की इन चीज़ों में कोई खास ज़रूरत नहीं समझता, मगर यह भी ठीक नहीं है, ठीक तो सचमुच इसे नहीं कह सकते।

वीरेश्वर ने रोककर पूछा—तो किस मीटिंग में रह गये थे?

रहमान ने उत्तर दिया—वह कुछ नहीं। बात यह है कि गांधीजी ने किये कराये को चौपट कर दिया। वे यह नहीं कहते हैं कि इस युद्ध में हमें कुछ लेना

देना नहीं है। वे इसी से कहते हैं कि मैं युद्ध में बाधा डालना नहीं चाहता। देखो! यह साम्राज्यवादी युद्ध है। हमें अपनी लड़ाई सामूहिक रूप से छेड़ देनी चाहिए। तभी अंगरेज़ साम्राज्यवादी इस समय घुटने टेक देंगे।

'ठीक बात है'—वीरेश्वर ने स्वीकार किया—'बिल्कुल दुरूस्त है।'

रहमान ने फिर कहा—अब व्यक्तिगत सत्याग्रह शुरू हो गये हैं। अरे बड़े-बड़े नेताओं की बात ही छोड़ो। इन छोटे लोगों को अराजनैतिक कारणों से जेल में रख देना चाहिए। अभी कल वह शहर के नागर जी हैं न? उन्होंने शहर से चार मील दूर पर सत्याग्रह किया। वहाँ कोई आदमी ही नहीं था। उन्हें पुलिस पकड़ने ही नहीं गई। आने जाने का तांगा खर्चा झेला और घर लौट आये। दोस्तों ने कहा—तुम्हें तो देशसेवा करनी थी, कर चुके। अब तुम फिर क्यों सत्याग्रह करना चाहते हो। नहीं माने। दूसरे दिन खुद थाने में जाकर कहा, तब पकड़े गये। तब बताओ, ऐसे सत्याग्रह से क्या होगा।

इंदिरा ने कहा—आखिर गांधीजी ने भी तो कुछ सोचा होगा। वह व्यर्थ ही इतने बड़े नेता मान लिये गये हैं?

रहमान ने कठोर उत्तर दिया, इसका मेरे पास कुछ जवाब नहीं है। लेकिन गांधी विनोबाभावे के कारण प्रसिद्ध नहीं हैं, वह गाँवों के अनजान रामखिलावन और भोला-राम के कारण प्रसिद्ध हैं। व्यक्तिगत-सत्याग्रह से हिंदुस्तान स्वतन्त्र नहीं होगा, बल्कि जनता राजनीति को गांधी की घरेलू वस्तु समझ बैठेगी।

'ओ हो हो' करके कामेश्वर ठठाकर हँसा। उसने चिल्लाकर कहा—'Thats a master piece!'

रहमान चौंक गया। उसने कहा—मेरी बात का आज तुम्हें विश्वास नहीं होता। किंतु अभी बड़े-बड़े तूफ़ान आनेवाले हैं। यदि उनके लिए हम आज संगठन नहीं करते तो कुछ भी नहीं हो सकेगा। कम से कम यह युद्ध हमें ऐसा तो नहीं छोड़ेगा जैसे हम दिखाई दे रहे हैं। बहुत मुमकिन है, हम बिल्कुल नंगे हो जायें। यह अत्याचारी साम्राज्यवाद···

'शश! इंदिरा ने टोककर कहा—क्या कह रहे हो? यह बातें यहाँ कहने की हैं? अगर यहाँ गिरफ़्तार हो गये तो सारे रंग में भंग हो जायेगा।

वीरेश्वर ने दाद देते हुए कहा—अगर आज की रात चूक गई तो कभी हिंदु-

स्तान आज़ाद न होगा। अगर यह बात है तो फिर कोई बात नहीं, मगर जो फिर से कल वही ढर्रा चलनेवाला है तो ज़रा कल ही बात कर लेना।

कामेश्वर ने कहा – जहाँ तक बातों का सवाल है, वह तो वक्त काटने के लिए होती हैं, कल भी हो सकती हैं।

'बात यह है'—फौरन छोर पकड़कर इंदिरा ने कहा —सरकार नहीं देखेगी कि सर के बेटे का ब्याह हो रहा है।

रहमान ने क्षमाप्रार्थना करते हुए कहा - ओह! मैं बिल्कुल भूल गया था। भूल गया था कि बोर्जुआ सोसायटी में बैठा हूँ। तभी यह सब मुँह से निकल गया।

'मगर यहाँ पुलिसवाले भी बैठे हैं।'—इंदिरा ने कहा।

'लेकिन बहुत से पुलिसवाले भी हिंदुस्तान की अन्य जनता की तरह हमारी बात सुनना चाहते हैं। वे जानते हैं और क़तई पसंद नहीं करते कि हमेशा ही टुकड़े तोड़ते कुत्ते बने रहें।'

'या अल्लाह'—कामेश्वर ने कहा। बकरी की मा!! आज तो ईद मनके रहेगी।

वीरेश्वर बड़ी ज़ोर से हँसा। कामरेड ने फिर टिमटिमाकर देखा।

जब दावत समाप्त हो गई और लोग उठ-उठकर जाने लगे, इंदिरा वीरेश्वर और कामेश्वर को रुकने के लिए कहकर लवंग की तलाश में निकली। कुछ देर दोनों बैठे रहे। फिर बीच में लगी भीड़ की ओर चल दिये। वहाँ बीच में राजेन और लवंग बैठे थे और चारों ओर भीड़ लगाकर कई लोग बैठे थे—लीला, समर और दो कोई अँगरेज़। सब लोग करीब सात आठ थे। इन्होंने पहुँचते ही सुना कि बधाइयाँ दी जा रही हैं, सौगातें दी जा रही हैं और अभी-अभी किसी साहब ने बड़े ज़ोर-शोर से अपनी ग़ज़ल सुनाकर समाप्त की है।

'अब आप लोग कब जायेंगे?' किसी ने पूछा।

'हम कल चल देंगे यहाँ से।'

एक अँगरेज़ ने कहा—मिस्टर राजेन! हम आपके गाँव चलना चाहते हैं। वह भी देखेंगे। सच, हमने कभी गाँव पास से नहीं देखा।

लीला ने आँखें भींचकर कहा—Thats lovely! गाँव न हो, तो हिंदुस्तान में कवि न हों। पुराने कवि गाँव में रहते थे, तभी इतनी अच्छी कविता करते थे।

अब के कवि शहरों में रहते हैं, तभी उन्हें कोई नहीं पूछता। वर्ड्सवर्थ की कविता देखिए—

'Nature said a Covier flower'...क्या है उसके आगे? अरे, मैं कितनी जल्दी भूल जाती हूँ।

राजेन के गाँव के एक थोड़ी-बहुत अँगरेज़ी जाननेवाले मगनराम, जिसने प्राइवेट बैठकर इन्टरमीजियेट पास कर लिया था, कहा—सर! वहाँ आपको शिकार मिल जायेगा!

'शिकार!' अंगरेज़ ने साथी से कहा—विन्टर्टन! शिकार! ओह! मिस्टर राजेन। आप अपने पिता से कहिए, वे हमें शिकार के लिए ज़रूर ले जायेंगे।

मगनराम इस बात से बहुत प्रसन्न हुआ। अभी वह एक तारीफ़ के पुल बाँधते-बाँधते ही नहीं थका था कि साहबों ने हाथों से ही पूरियाँ कचौड़ियाँ खाईं। उन्होंने ही मना कर दिया था कि अँगरेज़ी खाना नहीं खायेंगे। ऐसे-ऐसे लोग भी मौजूद हैं। अब उसे एक नया मौका मिल गया। इससे पहले कि राजेन जवाब दे वह बोल उठा—सर! सरकार से न कहकर हमसे ही ऐसे छोटे मोटे काम कहिए।

बात तय हो गई। लवंग ने कहा—मगनराम! कल हम सब लोग मोटरों में चलेंगे।

'जी सरकार!'—फिर सुधारकर कहा—'बहुत अच्छा बीबीजी!' बहूरानी कहकर थोड़ी देर पहले ही एक डाँट खा चुका था।

उठते समय लीला ने कहा—कौन-कौन चलेगा?

लवंग ने कहा सब चलेंगे। कामेश्वर, समर, वीरेश्वर, तुम, इंदिरा...

'इंदिरा!'—लीला ने विस्मय से पूछा।

'तुम देखे चलो। बोलने की कोई ज़रूरत नहीं।' लवंग एक अजीब तरह से मुस्कराई। लीला अवाक् देखती रही।

उसने हठात् पूछा—वह चलो चलेगी?

लवंग ने दृढ़ स्वर से उत्तर दिया—मेरा नाम लवंग है। इसे भूल जाना ही सारी भूलों की जड़ है।

'और भगवती?'—लीला ने काँपते स्वर से पूछा।

किंतु लवंग ने कोई उत्तर नहीं दिया। राजेन आ रहा था। वह उसे देखने में मग्न थी।

———

[१७]

साम्राज्य पर हमला

सर वृन्दावन को गाँव लौटते ही फिर से गठिया उभड़ आई। डाक्टरों ने अपना काम जोरों से शुरू कर दिया। उस बड़े कमरे में ही नहीं, जिसमें ज़मींदार साहब थे, बगल के कमरे में भी दवाओं की महक फैल गई थी। घर में दोनों समाँ एक साथ छा गये। एक तरफ़ राजेन की पार्टी थी, दूसरी तरफ़ पिता। एक तरफ़ जशन, दूसरी तरफ़ गम से भरी सूरत। घुटनों में दर्द बहुत बढ़ गया। पानी पीने को देर थी कि मालूम होता कि घुटने में तीर की तरह उतरकर जमा हो गया। और फिर इतनी ठंड लगती, इतनी ठंड लगती कि कोई कुछ नहीं कर पाता। डाक्टर पसीने-पसीने हो जाते; उस ठंड में भी उन्हें एकदम गर्मी से पसीना आ जाता। किंतु ज़मींदार को अपने पूर्वजों के शौर्य का गर्व था। दीवालों पर उनके पिता और पितामह के बड़े-बड़े तैलचित्र लटकते थे। दो वर्षों से ज़मींदार साहब उनपर फूल चढ़वाते थे तथा संध्या समय अगरु-धूम की उलझी हुई लहरियाँ वातावरण में झूलने लगती थीं। किताबों के बड़े-बड़े शेल्फ थे, जिनमें गिबन की इतिहास पुस्तकें, महारानी विक्टोरिया का जीवन-चरित और पुरानी एनसाईक्लोपीडिया ब्रिटैनिका आदि रखे रहते थे। कमरों के फर्श पर क़ीमती गलीचे बिछे रहते थे। रेशम के बहुमूल्य पर्दे झूलते रहते थे। बड़े हाल का मीनाकारी से भरी छत से बड़े-बड़े झाड़फानूस लटके रहते थे। रात को जब उनमें बत्तियाँ जल जाती थीं तब कमरों के द्वारों से जगह-जगह लगे बड़े-बड़े शीशों में उनका प्रतिबिंब उज्ज्वल-सा फैल जाता था। ज़मींदार साहब को अपनी भारतीयता का गर्व था। वे आज से दस वर्ष पहले अपने यहाँ आर्यसमाज के भजनीक और प्रचारकों को पाला करते थे। उनकी कीर्त्ति चारों ओर फैली हुई थी। राजेन से उन्हें संतोष था। वह जानते थे कि बड़े आदमियों के लड़के सदा अच्छे नहीं निकलते। किंतु राजेन ठीक उनके पैरों पर चल रहा था। इसका उन्हें

अभिमान था। उन्हें पूर्ण आशा थी कि वह बड़ा होकर उनकी ही भाँति प्रसिद्ध हो जायेगा। उनकी ज़मींदारी अंगरेज़ों की भेंट नहीं है। उससे भी पहले उनके पास ज़मीन थी और वही अब इतनी बढ़ गई है।

उस बड़े घर में एक ही आराम नहीं था। ज़माने की सबसे बड़ी माँग वहाँ अप्राप्य थी—बिजली। गर्मियों में पखे खींचे जाते थे। बरसात में निवासस्थान बदल जाता था। वे बागीचे की छोटी कोठी में चले जाते थे। उनका ध्येय शांति से जीवन व्यतीत करना था।

राजेन की पार्टी ख़ूब मस्त हो रही थी। वीरेश्वर, समर, कामेश्वर और इंदिरा को लवंग बड़ी सरलता से घेर लाई थी। साथ ही वे दोनों अगरेज थे। लीला अपने आप ही आ गई थी। राजेन के हँसमुख स्वभाव से सब लोग प्रसन्न बने रहते थे। उसके कारण कोई कभी तनिक भी नहीं ऊबता था। सब लोगों का इन्तज़ाम इतना अच्छा हुआ था, कि सब उनके आतिथ्य के आगे क़ायल हो गये थे। नौकरों ने ऐसा कभी नहीं किया कि उन्होंने एक भी बात टाली हो। बाहर गुरखे खड़े रहते थे। हर घंटे के बाद गजर बजता था। ज़मींदार साहब की कृपा से तो वे लोग पहले ही अभिभूत हो चुके थे।

दूसरे दिन शाम को लीला ने लवंग के कमरे में प्रवेश किया। राजेन सो रहा था। लीला ने बैठते हुए कहा—क्या पढ़ रही हो?

'उमर खय्याम की रुबाइयात्। फ़िट्ज़ जेरल्ड ने Wonderful translation किया है।'

'बहुत ख़ूब! मगर अब शिकार को हम लोग कब चलेंगे? कालेज भी तो लौटना है।'

'नहीं, अब मैं नहीं पढ़ूँगी।'

'तो क्या हम लोग भी पढ़ना छोड़ दें?'

'ऐसा क्यों?'

'तुम तो यहाँ लाकर हमें बिल्कुल भूल ही गई हो।'

'किसने कहा तुमसे?'—लवंग ने विस्मय से पूछा—'कोई बात हुई है?'

लीला हँसी। कहा—नहीं, बात तो कोई नहीं हुई। मगर सब लोग जानना चाहते हैं।

'एक बात है लीला ! एक तो शादी की थकान दूसरे गाँववालों की रीत-रस्म का भी तो खयाल रखना ही पड़ता है। तुम्हारे लिए तो लवंग की शादी हुई है, मगर गाँव-वालों के तो राजा के बेटे की बहू आई है। अब यह हिंदुस्तान है, इसे तो तुम मना नहीं कर सकतीं? भेंट भी लेनी होती है, मुँह दिखलाना भी पड़ता ही है। सभी काम होते हैं। और फिर मैंने इतना सब होते हुए भी देर नहीं की। शिकारी तो काम पर लग गये हैं। अब उनके आकर सूचना देने भर की देर है, लीला ! उसने स्वर बदल कर कहा—तुम यक़ीन भी नहीं कर सकतीं। कल सचमुच मुझे पहली बार ज़िंदगी में लाज लगी। मुझे जब घूँघट काढ़कर बिठाया गया तब तुम समझ भी नहीं सकतीं, कितना अजीब-अजीब सा लगता रहा।

'वह औरत कौन थी?'

'वह?'—लवंग ने मुस्कराकर कहा—'वह भगवती की मा थी।'

'भगवती की मा?'—लीला ने विस्मय से कहा—'वह तो इतनी बड़ी नहीं मालूम देती थी। अभी तक इतनी सुंदर है?'

'ग़रीब औरत है। मेहनत करती है, चक्की पीसती है। हम लोगों की तरह हरामख़ोरी नहीं करती।'

'तुमसे यह सब किसने कहा?'

'वह स्वयं मुझसे कहती थी कि बहूरानी ! तुम्हारे आने से घर भर गया है। बहुत दिनों से राजेन भैया के पिता की हवेली सूनी हो गई थी। आज घर की लक्ष्मी फिर लौट आई है।'

'कौन ज़ात है?'

'कायस्थ है।'

लीला जाने क्यों सिहर उठी। वह भी तो कायस्थ है।

'पिताजी ने घर में कोई स्त्री न होने के कारण उस मौक़े पर उसे बुला भेजा था। बिचारी बड़ी ख़ुशी-ख़ुशी आ गई। पंडितजी कहते थे कि और कोई औरत आती तो घर का-सा सम्मान नहीं बचा पाती। पैसे पर तो उसका कोई ध्यान ही नहीं है?'

लीला कुछ चौंक गई। उसने कहा—तो तुम्हें यहाँ एक अच्छी साथिन मिल गई। तुम उसके दिन फेर सकती हो। उसे अपने पास क्यों नहीं रख लेतीं?

'मैंने कल ही पिताजी से कहा था। उन्होंने कहा कि वह बड़ी स्वाभिमान-वाली स्त्री है। नौकरी नहीं करेगी। और वह उसके बाद चुप हो गये। कुछ रुककर उन्होंने कहा—वह सदा ही से ऐसी मेहनत करके खाती कमाती रही है। कभी उसने सिर नहीं झुकाया। लेकिन सिर्फ़ अपने बेटे के लिए उसने मुझसे हर महीने रुपया लिया है और साथ ही कहा है कि अगर वह शर्मदार होगा तो पढ़-लिखकर जब कमाने लगेगा तब पाई-पाई चुका देगा।'

'हूँ!' लीला को ऐसा लगा जैसे किसी ने मुँह पर तमाचा मार दिया हो। उसने बात बदलकर कहा—अब जीजाजी तमाम काम सँभालेंगे। क्यों न तुम एक मैनेजर रख लेतीं जो तुम्हारा सब काम कर दिया करे और महीने के महीने अपनी तनख़्वाह ले लिया करे?

'तुम्हारा मतलब?' – लवंग ने भौं चढ़ाकर पूछा।

'मैं तो उसी के भले के लिए कहती हूँ, भगवती को रख लो।'

लीला को यह कहते हुए लगा जैसे उसने अपने स्वार्थ के लिए, अपने अभिमान की घृणा के लिए किसी लहलहाते हुए खेत पर बिजली का प्रहार कर दिया हो। किंतु उस उत्तेजना को घोर प्रयत्न करके पी गई।

लवंग ने सोचते हुए कहा - मैं उससे कोफ्त करती हूँ। उसे बुलाना नहीं चाहती। लेकिन एक बार इंदिरा को याद हो जायेगा कि उसका प्रेमी मेरा नौकर रह चुका था। राजेन से कहकर मैं उसे कल ही बुलवा लूँगी।

'तो क्या रात को ही मोटर भेजोगी?'

'रात तो अभी दूर है। मैं अभी भेजे देती हूँ। उसकी मा को भी बुलवाकर कहे देती हूँ। चार सौ रुपये का खर्च है।'

लीला जब लौटकर अपने साथियों में पहुँची, मेज़ पर सोडा और ह्विस्की लिये वे सब बातें कर रहे थे। इस समाज में दो अंगरेज़ों का आना एक विशेष रौनक की बात थी। विन्टर्टन का दृढ़ विचार था कि जर्मनी इस युद्ध में हार जायेगा। यही सोचकर गांधी ने भी इस समय युद्ध में बाधा डालने से मना कर दिया है। आदमी में अंगरेज़ होने की ख़राबी के अतिरिक्त और कोई ख़राबी नहीं थी। बस वह अड़ियल ज़रूर था। बात-बात पर भूल जाता था और उसकी बात को जरा-सी बात

करके भुला दिया जा सकता था। सब बात तो मानने में उसे कोई हानि नहीं है, किंतु अपने परिणाम से इधर-उधर डिग जाना उसके लिए असह्य है।

दूसरा सिट्वैल साम्यवादी है। फौज में भारत चला आया है। उसे अक्सर एक बात का जवाब देने में हिचक होती थी कि वह भारत आने के पहले क्या था। यहाँ वह शासक वर्ग का था अतः यहाँ उसे अपनी वह पुरानी हीनता स्वीकार करने में हिचकिचाहट होती थी। वह सदा झूठ बोल जाता था कि वह ऑक्सफ़ोर्ड में अर्थशास्त्र का विद्यार्थी था, किंतु जब वीरेश्वर ने उससे पूछा कि मार्क्स ने जो आडम स्मिथ से अपनी थ्योरी के लिए मदद ली है, क्या आप लोग भी उसके बारे में वही सोचते हैं जो बाद में प्रोफ़ेसर ड्यूरिंग ने व्यंग्य से प्रकट की है? तो उसने कहा था—हम ऐसी बातें कभी नहीं सोचते। और इंदिरा इसपर ठठा कर हँस पड़ी थी। सिट्वैल ने यही सोचा था कि उसका मज़ाक कमाल का रहा था।

बातें सब अंगरेज़ी में हो रही थीं। विंटर्टन बता रहा था कि जब वह चीन में था तब उसने देखा था, चीन आपस में बराबर लड़ रहा था।

वीरेश्वर ने टोककर कहा—लेकिन लड़ाई के बाद जापान की हार होने पर हांग-कांग पर झगड़ा जरूर मचेगा।

विटर्टन ने बीच ही में कहा—लेकिन हांगकांग हमारा है, उसे वह हमसे कैसे ले सकता है। बात पलटकर भारत पर चल पड़ी। विटर्टन ने कामेश्वर से कहा—गांवों में क्या अच्छा है? यह तो आप बता सकेंगे? दुनिया की जितनी उन्नति हुई है, उसमें से तो यहाँ कुछ भी नहीं है?

कामेश्वर ने सिर हिलाकर कहा—हमारे हिंदुस्तान में भौतिक उन्नति को इतना महत्त्व नहीं दिया गया, जितना आध्यात्मिक उन्नति को।

सिट्वैल ने बात काटकर पूछा—तो क्या आपका मतलब यह है कि गांव में ज़्यादातर संत और महात्मा बसते हैं?

समर ने चूहे के दांत दिखा दिये। वह इस उत्तर से प्रसन्न हुआ।

'नहीं'—कामेश्वर ने कहा—इन गांवों में उन्नति होने की आवश्यकता है। और यह अवनति एक ही वजह से है।

सिट्वैल—वह क्या?

कामेश्वर—यही कि देश में विदेशी सरकार है जो यहाँ से लूट-खसोटकर सब कुछ बाहर ले जाती है।

विंटर्टन ने एक दम गंभीर होते हुए कहा—विदेशी सरकार का दोष है? नहीं, यह सब हिंदुस्तानियों की आपस की फूट का परिणाम है। यूरोप के किसी भी देश में आदमी ग़ुलाम रहकर ज़िंदा नहीं रह सकता।

समर ने नक़ली ढग से खाँसकर कहा—जर्मनी एक छोटा-सा मुल्क है। उसने फ्रांस को नहीं जीता। फ्रांस अब भी आज़ाद है। महा सम्राज्यवादी फ्रांस का कोई आदमी ग़ुलाम नहीं है। सहारा रेगिस्तान के अधिपति को वास्तव में अब भी स्वतंत्र ही कहना चाहिए।

सबके सब ठठाकर हँस पड़े। विंटर्टन विक्षुब्ध हो गया। वह ज़ोर से बोल उठा—लेकिन इंगलैंड ऐसा नहीं है। उसने पारसाल न्याय के लिए शस्त्र उठाया था और इस साल जितनी बममारी उसपर हुई है, दुनिया के किसी मुल्क पर नहीं हुई। सवाल तो दूसरा है। यदि हिंदुस्तान को आज़ाद कर दिया जाये, तो क्या हिंदुस्तानी अपने राज्य को सभाल सकेंगे? इस गाँव में ही लीजिए। आप दो चार के अतिरिक्त आधुनिक सभ्यता के साथ क़दम उठाकर चलने की योग्यता किसमें है?

समर ने तड़पकर कहा - जिन अपढ़ और गँवारों ने आज ब्रिटिश सरकार को इतनी मज़बूती से चलाया है, वे अपनी सरकार को कहीं ज़्यादा चला सकेंगे।

सिट्वैल ने कहा - भारत में अंगरेज़ों के रहने से ही ज़मींदार अत्याचार नहीं कर पाते, अछूत कुचले नहीं जाते।

वीरेश्वर हँसा और उसकी हँसी के व्यंग्य से सिट्वैल विक्षुब्ध हो गया। उसने कहा—माना कि इंगलैंड इन दोषों से मुक्त नहीं है, किंतु क्या साम्यवाद इन दोषों को मिटा नहीं देगा।

'तुम'—वीरेश्वर ने कहा—पहले कहा करते थे, अमरीका भी आज़ादी के योग्य नहीं है। मगर उसने लड़कर अब तुम्हें दिखा दिया कि तुम उसकी सहायता के बिना जीवित नहीं रह सकते। बात करने के पहले तुम्हें सदा अपने को मनुष्य मानकर चलने मात्र की आदत है। भारतीयों से तुम घृणा करते हो। तुम समझते हो कि तुम यहाँ के राजा महाराजाओं के बराबर हो···लेकिन हिंदुस्तान अब ज़्यादा ग़ुलाम नहीं रहेगा। वह लड़ने के लिए तैयार है, हर एक ज़वान तैयार है।

विंटर्टन हँसा। उसने कहा—हर एक ज़वान वाक़ई तैयार है। तुम जो हमारे साथ शराब पी रहे हो, यह भी शायद तुम्हारे गांधी का सत्याग्रह है।

और अंगरेज़ के प्रति वीरेश्वर को इतनी अधिक घृणा हो गई कि अगर विंटर्टन अधिक बलिष्ट न होता तो वह उसे फिर क्या वहीं मार बैठता। किंतु एकाएक उसे ध्यान आया, यदि वह मार बैठा तो ! अंगरेज़ कभी हिंदुस्तान में एक व्यक्ति नहीं हैं। रोमन साम्राज्य में रोमन सर्वेसर्वा होता था, ब्रिटिश साम्राज्य में अंगरेज़ सर्वेसर्वा है। उसका अपराध हो या न हो, वह सदा ठीक है। अंगरेज़ के खिलाफ़ हिंदुस्तान में कभी कोई बात नहीं सुनी जाती। वीरेश्वर भविष्य के भय से क्रुद्ध हो उठा। किंतु वह जानता था कि यह 'सर' का मुकुट भी इनके पैरों की धूल है। कल सर हरीसिंह गौड़ को होटल में नहीं घुसने दिया गया। बमबारी में वह मर जाता तो भी कोई बड़ी बात नहीं थी। काला आदमी और कुत्ता एक-सा माना जाता है।

इसी समय राजेन और लवंग ने प्रवेश किया। राजेन ने आगे बढ़कर कहा—शिकारी लौट आये हैं। उन्होंने खबर दी है, शिकार दूर नहीं है, परसों हम रवाना होंगे। आप लोग तैयार हो जायँ। मिस इंदिरा, आप तो चलेंगी ?

'ज़रूर !'—इंदिरा ने गालों पर हाथ फेरकर कहा।

लवंग को देखकर वे सब खड़े हो गये। समर को कुछ अजीब-अजीब-सा लग रहा था, जैसे शीतोष्ण कटिबंधों में अँगरेज़ या यूरोपीय लोग अपनी Holiday छुट्टी मनाने आ गये हों। अब कल अफ़्रीका के अनेक हब्शी दासों की तरह इनके पास अनेक हिंदुस्तानी आ जायेंगे और इनको 'साहब' के अतिरिक्त संबोधित करने को उनके पास और कोई शब्द नहीं होगा और तब इनका यह गर्व और भी ठोस हो जायेगा कि वे मालिक हैं और हम इनके गुलाम।

समर को ऐसा लगा जैसे गुलामी से उसका दम घुट रहा था और उसके पास कोई चारा नहीं था। ये लोग बड़ी से बड़ी झूठ साफ़ बोल जाते हैं और अपने स्वार्थ की कसौटी पर हमारे अच्छे बुरे को जाँचते हैं। हम कुछ नहीं कह सकते, क्योंकि ताक़त सब इन्हीं के हाथ में है। इनकी भाषा भी ऐसी है कि गंदी से गंदी बात कोई भी बिना हिचक के उसमें बोल जाता है। इनका कमीनापन इतने हद दर्जे का है कि उसे बताने में लाज आती है। इनके लिए वास्तव में गांधी से बढ़के उस्ताद और कोई नहीं हो सकता। यह ईसा के अनुयायी बनते हैं, वह ईसा का पहला अनुयायी

बनता है। यह हिंदुस्तान को हिंदुस्तान के भले के लिए गुलाम रखते हैं। वह अँगरेज़ों के भले के लिए हिंदुस्तान को आज़ाद कराने के लिए मरता है। लोहे पर लोहा टकराया है। जीत हमारी ही होगी। समर अपने विचारों में बह रहा था। उधर वे लोग बैठकर फिर पी रहे थे। लीला और इंदिरा अभी तक चुप बैठी थीं। अब वे लवंग के साथ उठ आईं। उन्होंने तनिक भी नहीं छुई थी, अतः वे उन शराबियों से ऊब गई थीं। इस कमरे में आकर लवंग ने बैठते हुए कहा—कल सुबह तक भगवती आ जायेगा। फिर परसों सभी शिकार पर चलेंगे।

लवंग ने एक अंगड़ाई ली। इंदिरा ने देखा, उसमें पुरुष संसर्ग की छाया थी। वह अलसाई हुई थी। जैसे अब भी उसके मांसल शरीर में एक हल्की हल्की सहलाहट मच रही थी। वह हाथों में चूड़े पहन रही थी। वह कहती थी, बड़े घरानों का यह रिवाज़ मुझे बहुत पसंद है। इंदिरा देखती रही। जहाँ तक वह है, वह कितनी हर्षित है, कितनी तृप्त है। किंतु उसकी तृप्ति कितनों का असंतोष है, हाहाकार है, जो यह नहीं जानते कि उनके हाहाकार का केंद्र वहीं, न कि आकाश में रहनेवाला परमात्मा।

लवंग ने देखा, इंदिरा तनिक भी उत्सुक नहीं थी। अंत में उसने उसे चिढ़ाने का निश्चय किया। कहा—मैंने भगवती को बुलवा लिया है।

इंदिरा ने मन ही मन कहा—वह नहीं आयेगा। किंतु कौन जाने। शायद आ जाये। उसकी मा तो यहीं कहीं है न?

उसने कहा—उसकी मा भी यहीं हैं न? एक रोज़ उनसे मुलाकात नहीं करवा सकोगी?

'बुलवा दूँगी कल। उसके घर जाना तो शोभा नहीं देगा! आखिर उसकी हैसियत ही क्या है?' लवंग ने चिढ़ाने का तीव्र प्रयत्न किया। बात इंदिरा के हृदय को आरपार छेद गई, किंतु उसने धीरे से सिर हिलाकर पूछा—कल बुला दोगी?

'कल तो वह स्वयं भगवती को यहाँ नौकर करवाने आयेगी।'

'लवंग!'—इंदिरा के मुँह से चीख़ निकली। 'तुम! तुमने यह क्या किया!'

लवंग ने अपने भावों को प्रकट न करते हुए कहा, जैसे कोई बहुत साधारण बात थी,—'राजेन को जरूरत थी न?'

इंदिरा ने लीला की ओर देखा। लीला बिल्कुल शांत निस्पंद बैठी थी। उसका मुख केतकी की तरह पीला पड़ गया था।

रात आ गई। इंदिरा ने देखा, लीला की आँखें सूजी हुई थीं जैसे वह अभी-अभी उस कमरे से रोकर आई हो, किंतु उसने उससे कुछ भी नहीं कहा।

रात बड़ी बेचैनी-सी कटी। इंदिरा पल भर भी नहीं सो सकी।

भोर होते ही बाहर कंपाउंड में एकाएक मोटर रुकने की आवाज़ आई। इंदिरा बिना कुछ ओढ़े ही बाहर ठंड में निकलकर नीचे झाँक उठी। सच, भगवती उतरकर भीतरी फाटक की ओर आ रहा था।

[२८]

अंतर्राष्ट्रीय छल

मा का नाम भगवती के लिए कोई विशेषता नहीं रखता, क्योंकि उसके लिए 'मा' शब्द ही काफी है। यदि वे लोग धनी होते तो 'मा' शब्द ही सबके लिए काफी होता, किंतु अब ऐसा नहीं रहा। अतः आवश्यक हो गया कि उनका नाम प्रकट हो जाये। ज़मींदार साहब कभी उसे 'भगवती की मा' कहते हैं कभी 'सुंदर।'

सुंदर खाट पर बैठी थी। भगवती सामने बैठा खौल रहा था—तुमने सुना मा!

'क्या बेटा ?'—मा ने उदासीनता से पूछा।

भगवती एकाएक नहीं कह सका। मा से वह अधिक दिन दूर नहीं रहकर भी इतना पास नहीं रहा है। वह स्वयं इस परिवर्तन का कारण नहीं बता सकता। मा एक सादी सफ़ेद धोती पहने है। उनके भाल पर एक शुभ्र ज्योति है। किंतु भगवती उसे नहीं देख पाया।

'मा! तुम जानती हो ? मुझे यहाँ क्यों बुलाया गया है ?'

मा ने कहा—क्यों नहीं सुना बेटा ? बहुत दिनों से जो घर सूना पड़ा था, आज उसमें लक्ष्मी आई है। राजेन के पिता बहुत दिनों से इसी दिन के लिए जी रहे थे। मैं कभी आशा नहीं करती थी कि लवंग इतनी अच्छी लड़की निकलेगी। इतना वैभव है, इतना धन है, यदि उसके लिए एक स्त्री नहीं हो सकती तो वह सब नहीं बचाया जा सकता। अकेला पुरुष आकाश के नीचे खड़ा रहता है, और जब उसे स्त्री मिल जाती है तो सारे घमंड को छोड़कर वह फिर घर बसाने की सोचता है। इसी का फल मिला है। आज प्रभु किसकी नहीं सुनते ? तू नहीं जानता बेटा मैंने, तेरे लिए कैसे-कैसे कष्ट उठाये हैं। अहसान नहीं जताती तुझपर भगवती! क्योंकि तुझे अलग समझकर मैंने कभी तेरा कोई काम नहीं किया। तुझे अपने हृदय का टुकड़ा समझती रही हूँ। अरे तू मेरी कोख में नौ महीने रहा है। तू तो मेरा खून है, तू तू तो नहीं,

तू तो मैं खुद ही हूँ। बाल-बच्चे जिसके अपने नहीं हैं वह संसार में रहने के ही योग्य नहीं है।

मा की उस सौम्य मूर्त्ति को देखकर भगवती निस्तब्ध-सा हो गया। वह मा की सरलता है। उसके मूल में उनका व्यक्ति मात्र को अच्छा समझने की प्रवृत्ति है। कैसी भूल की है इन्होंने? लवंग को इतना अच्छा इन्होंने कैसे समझ लिया? उसने धीरे से कहा—अम्मा! तू इस बात को नहीं समझ सकती।

मा हँसी। पुत्र कह रहा है कि मा उसके भले की बात नहीं समझ सकती। उसने कहा - भगवती! तू पहले तो समझदार था, अब तुझे क्या हो गया? चार सौ रुपया क्या कोई थोड़ी रक़म है? घर आई लक्ष्मी कौन दुतकारता है बेटा?

भगवती ने कहा - मा! नौकरी अच्छी है, बुरी नहीं। मैं जानता हूँ, उससे हमारे दिन फिर जायेंगे। लेकिन क्या इसी गाँव में उनका नमक खाना ठीक होगा?'

मा फिर हँसी। उसने स्नेह से उत्तर दिया—बेटा! वे सब क्या कोई गैर हैं? अरे, इस गाँव की प्रजा में से कौन है जो उनसे उऋण हो सके? इस गाँव का बड़े से बड़ा घर उनके घर नौकर रह चुका है। तू अपनी उनसे बराबरी कर रहा है? यदि राजेन के पिता न होते तो क्या तू पढ़ पाता?

भगवती भीतर ही भीतर कुढ़ गया। मा अपने उसी पुराने ढर्रे से बोल रही है। राजा प्रजा, राजा प्रजा। अरे यह राजा का जमाना नहीं, जनता का समय है। किंतु यह सब व्यर्थ है। इससे कुछ भी नहीं होगा। वह नहीं जानती कि वह उनके साथ कालेज में बराबर रहकर पढ़ा है, जहाँ बड़े से बड़ा और छोटे से छोटा कक्षा में एक साथ जाकर बैठता है। लेकिन यहाँ वही नमक का चक्कर है। किंतु फिर विचार आया, बात की सचाई वही है जो मा ने कही है। सचमुच में तो वह उनकी बराबरी का नहीं है।

आँख घुमाकर देखा। कच्ची भीतें, सिर पर छान, और घर में वही पुरानी चक्की जिसमें से पिस-पिसकर उसका जीवन जो एक मांस के लौंदे में बद्ध था आज वह एक विशाल चट्टान की तरह खड़ा हो गया है। चार सौ रुपये? उसके एक घर होगा, उसमें समृद्धि होगी। इतना दुस्साहस किस लिए कि वह उनकी समता करने का प्रयत्न करे? जहाँ है वहीं जाकर खड़ा रहे। मा ने अपने जीवन को जो उसके लिए गेहूँ की तरह पीसा है, अपना सब कुछ उसके लिए त्याग दिया है, किस लिए?

क्या भगवती का काम उसके बुढ़ापे को सरल बनाना नहीं है ? क्या वह सदा ऐसी ही कठोर तपस्या करती रहे और कभी भी उसके जीवन को शांति नहीं मिले ?

भगवती कुछ निश्चित नहीं कर सका। उसने धीरे से कहा—मा! वहाँ मेरा अपमान होगा। लवंग मेरे साथ कालेज में पढ़ती है। वहाँ हम सब बराबर हैं। अतः उसने मुझपर अपना अहंकार दिखाने के लिए ही मुझपर यह करुणा दिखाने का प्रयत्न किया है। क्या तुम समझती हो, सचमुच वह इतनी दयालु है ?

मा सिहर उठीं। उनके नयनों ने घूरकर देखा और एक अज्ञातभय से उनकी आत्मा काँप उठी। तो क्या उनका पुत्र भी उन्हीं का-सा अभिमानी है ! उन्होंने कहा—मैं कुछ नहीं जानती ! तू चाहे तो कर, न चाहे तो न कर। किंतु यदि वे लोग नाराज हो गये, तो इस गाँव में हमारा कोई सहायक नहीं है। मैं तो केवल एक बात चाहती हूँ, तेरा घर बने, और मैं तेरी बहू का मुँह अपने जीते जी एक बार देख लूँ। मैं कभी नहीं चाहती कि तू मेरा खयाल करके कभी अपने आप को कष्ट दे। रोटी के लिए सिर झुकाना कितना दुखःदायी, कितनी अपमान भरी विषैली छाया है यही मैंने अपने इस जीवन में अभी तक सीखा है। मैं और कुछ नहीं कहूँगी।

भगवती को लगा जैसे डोरा गाँठ आने के कारण खोला नहीं गया, वरन हठात् किसी अज्ञात झटके से तोड़ दिया गया है।

जिस समय भगवती वहाँ पहुँचा इंदिरा अकेली कमरे में बैठी कुछ सोच रही थी। भगवती उसके सामने जाकर खड़ा हो गया। इंदिरा ने आँखें उठाकर देखा। कहना चाहा, पर कुछ कहा नहीं। भगवती अभिभूत-सा खड़ा रहा। हृदय भीतर ही भीतर काठ की तरह जैसे जल रहा है। ऐसी यातना किस जीवन का नरक-चक्र है जो ममतामयी इंदिरा के सामने इस वज्राहत रूप में खड़ा है! क्यों नहीं फट जाती यह धरती और वह उसमें समा जाता। जैसे उसने उसी के प्रति घोर अपराध किया है जिसने स्नेह से ही नहीं, अपनी सामाजिक परिस्थित का कुटिल जाल तोड़कर शक्ति से उसे अपना हाथ थमा देने का प्रयत्न किया था। भगवती ने देखा, अचानक ही इंदिरा की आँखों में पानी भर आया। इंदिरा ने उससे छिपाने को अपना मुँह फेर लिया। भगवती कातर-सा खड़ा ही रहा। इंदिरा ने वैसे ही कहा—बैठ जाओ! बैठते क्यों नहीं ! और एकाएक वह बाँध टूट गया। वह फूट-फूटकर रो उठी।

भगवती ने उसके कंधे पर हाथ रखकर कहा—क्या हुआ इंदिरा ! रो क्यों रही हो ! एक बारगी उसका गल भर्रा गया और वह चुपचाप देखता रहा।

इंदिरा ने बल करके अपने आँसू रोक लिये, किंतु अपने मुख पर छाये विषाद को वह नहीं छिपा सकी। उसने उसकी ओर देखा और देखती रही। इंदिरा की उस दृष्टि में अथाह वेदना थी; जैसे बलिपशु को देखकर किसी समय गौतम बुद्ध के रही होगी।

भगवती अपनी परिस्थित को समझकर उसे छिपाना चाहता था और इंदिरा के पास प्रारम्भ करने को कोई शब्द नहीं थे। उसने धीरे से कहा—तुम आ ही गये भगवती !

भगवती का मन करता है कि फट जाये। जिस मर्यादा को वह लिये फिरती है वह साधनहीनों के लिए नहीं, उनके लिए भी नहीं; है ही उनको जो साधनों को गठरी बनाकर उनके ऊपर बैठे रहते हैं। यह क्या जाने कि मनुष्य का अपमान, सबसे बड़ा अपमान भूखा रहना है, मा को चक्की पीसते देखकर अपने झूठे अभिमान को न छोड़कर काम न करके उसे पानी बिन मीन को तरह तड़पाना है। यह क्या जाने कि इन गरीब छातियों में भी अरमानों की भट्टी धधकती है। इस समाज में बड़ा वही बनता है जो अपने मानवी अभिमान को अपनी आत्मप्रतारणा की ठोकरों मे पहले ही चूर कर देता है। आदमी की शान अपने से नीचों को दबाने में है। इसके लिए उसे अपने से ऊँचे, अपने से शक्तिशाली के सामने सर झुकाना आवश्यक है। सर वृन्दावन सिंह ब्रिटिश शासन के कुत्ते हैं, इंदिरा का पूरा घर गुलाम है, फिर क्या वही एक है जिसे इतनी उपेक्षा से देखा जायेगा ! चालीस करोड़ आदमी जानवरों को तरह अपमानित जीवन व्यतीत कर रहे हैं, अँगरेजों की लातें खा रहे हैं, फिर एक वही उस अपमान का बदला चुकाने के लिए पैदा हुआ है ? यह लोग अपनी परिस्थितियों से बाहर नहीं निकलना चाहते। जो कुछ है उसका अपने भीतर ही सामजस्य करके बड़े आदमी बनते हैं। कभी अनुभव तक नहीं करते कि मोतियों के रूप में नरकंकाल इनके गलों में पड़े हैं। वे और कुछ नहीं. इतिहास युग-युग साक्षी बनकर खड़ा रहेगा, मानवता पुकार-पुकार कर चिल्ला-चिल्लाकर कहती रहेगी, शर्म हया खोये हुए ऐसे पतित हैं जिनकी सत्ता में एक सड़ाँध है, पाप ही जिनका आभूषण है, कभी भी जिनकी सभ्यता का ढोंग अब मानवता को पीछे नहीं खींच सकेगा।

भगवती की आँखों में उसका विद्रोह धधक उठा। उसने उसके कंधों पर हाथ जोर से दाबकर कहा—घृणा करती हो! कर सकती हो मुझसे घृणा! यदि चाहती हो तो तुम ऐसा करने के लिए पूर्ण रूप से स्वतन्त्र हो, लेकिन जब मैं चाँदी पर खड़ा हो जाऊँगा, मेरे पाप भी, मेरी कायर गुलामी भी ऐसे ही सभ्यता, संस्कृति और साहित्य की ओट में छिप जायेगी जैसे तुम सब लोगों की छिपी हुई है।

'भगवती!' – इंदिरा ने रोककर कहा—'हम कितने पतित हैं? मैं यह जानना चाहती हूं कि क्या यह कमीनापन भी हमारे समाज की देन है?'—फिर सोचकर कहा—'अयोग्य व्यक्तियों के हाथ में अधिकार दे देने से और क्या होगा? भगवती! यह क्या हुआ?'

किंतु भगवती का उत्तर उसके कंठ में ही रह गया। सब लोग उसी समय कमरे में आ गये। वे लोग इंदिरा को बुलाने आये थे। कल तक प्रतीक्षा करने की आवश्यकता? आज ही शिकार के लिए क्यों न चला जाये? रात को जंगल में पहुँचकर शिकार करना चाहिए। विंटर्टन की तब से यही ज़िद है कि ख़तरे तो जितने ज़्यादा मोल लिये जायें बेहतर हैं। उनसे क्या डरना? अंगरेज़ के यह कहने की देर थी कि भारतीय रक्त हिलोर मारने लगा और फ़ौरन सब तैयार हो गये। शिकारी दौड़ा दिये गये। लेकिन इंदिरा कहाँ है आज? किसी को सुबह से खाना खाने के समय के अतिरिक्त और दिखाई नहीं दी। क्या हो गया है उसे? और अब यह चित्र देखकर वे स्तंभित रह गये। भगवती उसके कंधों पर हाथ रखे कुछ कह रहा था और वह रो रही थी?

लीला का हृदय भीतर ही-भीतर धड़क उठा। यह क्या हुआ? क्या सचमुच वे दोनों इतनी सीमा तक पहुँच चुके हैं? तो क्या उसने यह अपराध किया है? किंतु सोचने-समझने का समय अब अधिक नहीं था।

कामेश्वर का मुँह स्याह पड़ गया था। समर वैसे भी शेर से डर रहा था। हठात् यह देखकर सबसे पहले उसी के मुँह से निकला—'अरे!'—वीरेश्वर ने उसके कुहनी मारी। वह चुप हो गया। और उसने ऐसे देखा जैसे हाय री क़िस्मत!

विंटर्टन और सिट्वेल की समझ में कुछ नहीं आया।

विंटर्टन ने कहा—हलो! क्या हुआ?

पर उन दोनों में आतुरता का कोई चिह्न दिखाई नहीं दिया। भगवती ने भयहीन

रूप से अपने हाथ हटा लिये। इंदिरा ने आँखें पोंछ लीं और निर्दोष नयनों से मुपइकर देखा और मुस्कराने का प्रयत्न किया। लीला जल उठी। लवंग ने गंभीरता से कहा— आप लोग तैयार हों। हम आ रहे हैं।

कामेश्वर, समर, वीरेश्वर, विन्टर्टन, सिटवैल चलने लगे। लीला ने लवग की ओर देखा और वह भी चली गई। जब एकांत हो गया, लवंग ने भगवती की ओर बढ़कर कहा—भगवती, तुमने मेरे मेहमानों का अपमान किया है, तुमने मेरा अपमान किया है। आज जो तुम कर रहे थे, क्या तुम उसके योग्य हो? कामेश्वर ने क्या सोचा होगा? यही न कि यह सब कुछ नहीं था। इंदिरा को लवग ने अपने प्रेमी से मिलाने के लिए इतनी साजिश की थी।

भगवती ने दृढ़ता से कहा—लेकिन मिसेज राजेन! क्या आप यह बता सकती हैं कि मैं ऐसा क्या कर रहा था?

लवंग क्रोध से तिलमिला उठी। उसने गंभीरतर स्वर से कहा—तुम यह भूल गये कि तुम एक बौने हो, तुमने आकाश के तारों को छूकर गंदा करने का प्रयत्न किया। तुमने बंजर की लू बनकर ओसिस के फूलों को सुखा देने की कोशिश की। तुमने अपने मालिक के दोस्तों से नौकरों की तरह पेश न आकर बराबरी का दर्जा पाने की कोशिश की। लवंग जानती है कि तुम कितने अभिमानी हो। किंतु याद रखना कि ऐसे अभिमान को मैं अपनी जूती की नोक के नीचे रखती हूँ। समझे? इंदिरा अभी नादान है। तभी वह भले बुरे का ज्ञान नहीं रखती। किंतु तुम उसे फुसला कर अपने षडयंत्र में जकड़ना चाहते थे? तुम्हें मैंने इसलिए नौकर रखा है कि तुम नौकरों की तरह रहो, सामने बैठने का दुस्साहस न करके खड़े रहो। अगर यह नहीं होगा तो तुम ही नहीं, तुम्हारी मा भी, राह की भिखारिन बनकर दर-दर ठोकर खायगी ··

भगवती चीख़ उठा—लवंग! इस भूल में मत रहना कि तुम्ही सब कुछ हो। यदि मैं चाहूँ तो अभी तुम्हारी उठी हुई नाक को अपने जूते से कुचल सकता हूँ। मुझे तुम क्या, तुम्हारी सात पीढ़ी में इतनी हैसियत नहीं कि मुझे नौकर रख सकें। तुम लोग इतने कमीने हो कि अपने आप अपने पापों को पुण्य कहकर उसे पूजा का नाम देते हो। मैं तुमसे घृणा करता हूँ, क्योंकि तुम जो बड़े घरानों का ढांचा बनकर खड़ो हो, तुम्हारे यहाँ स्त्रियाँ नहीं होती, वेश्या होती हैं···

चटाक ! एक ध्वनि हुई। लवंग ने भगवती के गाल पर तड़ाक से चाँटा जड़ दिया। इंदिरा ने झपटकर उसका हाथ पकड़ लिया। भगवती ने किटकिटाकर कहा—अगर राजेन ने यही काम किया होता तो मैं आज उसका खून पी जाता, लेकिन तुम एक मादा हो, तुमपर हाथ उठाकर कीचड़ उछालने से बेहतर है, आक थू...

और भगवती ने अतीव घृणा से थूक दिया।

इंदिरा ने लवंग को और भी कसकर पकड़ते हुए रोते रोते कहा—यह तुमने क्या किया लवंग ? इससे पहले कि इंदिरा अपनी बात समाप्त करे, भगवती वेग से उस कमरे से चला गया। इसी समय नीचे से मोटर का हार्न सुनाई दिया। लवंग का ध्यान टूट गया। उसने कठोरता से कहा—चलोगी ?

इंदिरा ने कहा—नहीं।

लवग झटका देकर कमरे से बाहर चली गई। इंदिरा के शब्द मुँह के मुँह में ही रह गये।

मोटर में जाकर उसने देखा, राजेन ड्राइव पर बैठा था। विंटर्टन और सिट्वैल पीछे बैठे थे। साथ में वीरेश्वर था। आगे लीला बैठी थी। वह भी उसी की बगल में बैठ गई। पूछा—कामेश्वर और समर कहाँ हैं ?

राजेन ने कहा—समर तो ख़ुद हिरन का बच्चा है। उसे तो गोली खा जाने का डर था। लिहाज़ नहीं आया।

लीला ने कहा—कामेश्वर की तबियत ठीक नहीं रही। कुछ मन मिचला रहा था। लवग चुप हो गई। उसने एक दृष्टि में ही पहचान लिया कि राजेन को किसी विषय में भी कुछ नहीं मालूम था। दोनों गोरों को अपने काम से काम और वीरेश्वर है भी और नहीं भी। वह उनका मित्र है, इनका मेहमान।

मोटर चल पड़ी। गाँव के कच्चे रास्ते पर धूल उड़ने लगी। राह पर मिलनेवाले गाँववाले राम-राम सा'ब, और जुहार करते हुए मुड़-मुड़कर देखते और कच्चे घरों के बाहर चबूतरों पर बैठे लोग मोटर को देखकर सहसा उठ खड़े होते। विंटर्टन ने रूमाल को नाक पर रखते हुए कहा—बड़ी धूल है।

सिट्वैल ने कहा—जब आजकल इतनी धूल है तो बरसात में क्या होता होगा! कितनी कीचड़ हो जाती होगी ?' उसने बिज्जू की तरह देखा।

रांजेन ने मोटर चलाते हुए मुड़कर कहा—कीचड़ का क्या पूछना !

वीरेश्वर ने कहा—हिंदुस्तान की ज़्यादातर आबादी गाँवों में फैली हुई है। इसी से गाँवों की सड़कें हर जगह प्रायः ऐसी ही हैं।

सिट्वैल ने कहा—मिस्टर राजेन ! आप तो इस गाँव के ज़मींदार हैं !

लीला ने कहा—क्यों !

'आप यहाँ की सड़कें क्यों नहीं बनवा देते ?'

राजेन चुप हो गया। सचमुच इसकी ओर उसका ध्यान कभी नहीं गया था। वीरेश्वर मन-ही-मन प्रसन्न हुआ। ठीक कहा—इन्हें क्या पड़ी। दूसरों के माल से इनका घर भरता जाये। यह तो मोटर में चढ़ते हैं। इन्हें क्या पड़ी पैदल चलनेवालों का क्या परिणाम होता है ? किंतु उसने इस बात को पूरी तरह से स्वीकार नहीं किया। उसने सिट्वैल की ओर रुख करके कहा—जब ब्रिटिश पूँजीवादी संसार के अन्य पूँजीवादियों के सामने अपना बाजार खोने लगेंगे तब Imperial preference के बूते पर हिंदुस्तान के हर गाँव तक अपना माल पहुँचाने का प्रयत्न करेंगे। उस समय भले ही यह सड़कें बन जायें, ऐसे ही जैसे एक बार अपने फायदे के लिए रेलें बनाई थीं।

सिट्वैल ने उत्तर दिया—तो गोया मिस्टर राजेन यहाँ के ज़मींदार किस लिए हैं !

मन में आया, कह दे कि यह भी अंगरेजी सरकार के करामाती खंभे हैं, किंतु उसी की मोटर में बैठकर कैसे कह देता ! अतः बदलकर कहा · यह बातें एक व्यक्ति की नहीं। इन्हें तो सरकार ही सुलझा सकती है। बात यह है कि ··

विंटर्टन चीख उठा—वह देखो दूर, रोको राजेन ! रोको गाड़ी ज़रा। अच्छा रहा।

राजेन ने गाड़ी रोक दी। सब उतर गये। विंटर्टन ने कहा—वह देखो, हिरनों का झुंड है। देखो मैं अभी मारता हूँ।

लीला को न जाने क्यों एक करुणा ने घेर लिया। निरीह हत्या। नहीं, किंतु यह जानवर आदमी की खेती खा डालते हैं। यह खूबसूरती में छिपे भी बड़े खतरनाक हैं। बेचारा किसान लू और पानी में दिन-रात काम करके खेत बढ़ाता है, और यह बदमाश बिना मेहनत किये ऐश से इनकी खेती को चर जाते हैं। ज़रूर इनको मारना

चाहिए। फिर विचार टूट गया। इनकी खाल अच्छी होती है, आदमी की खाल किसी काम में नहीं आती। कितना विवश है यह आदमी। उधर एक ज़ोर का धड़ाका हुआ। लीला चौंक गई। झुंड ने एक बार मुड़कर देखा और यह गया, वह गया। कुछ देर सबों ने प्रतीक्षा की कि एक आध तो गिरेगा ही मगर हिरन ठहरे, हिरन हो गये, जैसे अब वे भी टाटास्टील वर्क्स के उगले हुए थे कि गोली भी उन-पर से फिसल गई। और धुआँ बंदूक से निकलकर अब थोड़ा ऊपर उठ गया था जैसे कोई टोपीदार बंदूक चला दी हो।

'यह क्या है ?' वीरेश्वर ने टोककर पूछा—'यह इतना धुआँ क्यों ?'

खोलकर देखा। शादी के लिए बदूकों में सिर्फ़ बारूद भर दी गई थी। विर्टटन ने जोश में वही चला दी थी। लीला और लवंग ठठाकर हँस पड़ीं। वह लज्जित हो गया।

गाड़ी फिर चल दी। वीरेश्वर ने कहा—हिरन भी बड़ा चालाक जानवर है ? विंर्टटन ने कहा— पहली बार क़रीब दस ग्यारह साल पहले जब कोल्हापुर के दंगे का दमन करके मैं छुट्टी पर गया था तब पटियाला जाने का मौका आया। वहाँ हमने शिकार खेला था। प्रिंस था और दो राजघराने के और थे। बड़े मस्त थे। राजा हमारे साथ नहीं आ सका। फिर वीरेश्वर से मुड़कर कहा— गांधी तो शायद बंदूक भी नहीं उठा सकता।

वीरेश्वर ने कहा—वह दूसरों की उठी बंदूक झुका सकता है। उसके सामने साम्राज्य की तोपों में गोले नहीं रहते, तुम्हारे बादशाह का हाथ रहता है।

लीला ने तुनुककर कहा— मिस्टर विर्टटन ! आपने हिंदुस्तान के बारे में क्या पढ़ा है ?

'रडयार्ड किपलिंग'

'तभी।' वीरेश्वर ने कहा।

'मैंने खुद देखा है।' विंटर्टन ने फिर कहा।

'बँगलों से, राजा-महाराजा, जमींदार, पुलिस, फ़ौज और मोटर से, फर्स्ट क्लास रेल यात्रा से ही न ?'

विंटर्टन ने कहा—और किसी तरह से देखना मना है। हम मामूली आद-मियों से मिल भी नहीं सकते। देशी लोग डरते हैं।

'फ्रांसवाले अब जर्मनों से भी डरने लगे हैं।'

लवेग ने बात काटकर कहा—मिस्टर विंटर्टन! वह देखो! शिकारी खड़े हैं। जंगल की हद शुरू हो गई।

मोटर रुक गई। अभी उजाला बाकी था। सब लोग नीचे उतर गये। एकाएक विंटर्टन ने एक शिकारी से कहा—कुछ है?

शिकारी ने अल्प शब्दों का उत्तर दिया—रात को साहब, रात को।

विंटर्टन ने कहा—ज़रा घूम आना चाहता हूँ। मुझे जंगल में एक शिकारी के साथ घूमना बहुत पसंद है।'

बाकी लोग बैठ गये, क्योंकि विंटर्टन और एक शिकारी चले गये थे। बीच में खाना रखकर खाना शुरू कर दिया।

विंटर्टन ने कुछ दूर जाकर पेड़ों की आड़ के पीछे देखा, एक फ़ाख्ता बैठी है।

'शश...' विंटर्टन ने कहा दबे स्वर से—वह देखो! मैं निशाना लगाता हूँ। देखो उड़ न जाये।

शिकारी ने भी बंदूक तान ली। दोनों एक साथ छूटीं। धाँय की गरज से पेड़ काँप उठे। फ़ाख्ता नीचे आ गिरी। विंटर्टन ने क्रोध से कहा—बेवकूफ़! तुमने गोली क्यों चलाई?

शिकारी ने डरकर उसके पैर पकड़ लिये। विंटर्टन ने उसे ठोकर से हटा दिया और लपककर फाख्ता उठा ली।

'एक ही गोली लगी थी। ज़रूर मेरी ही है'—विंटर्टन ने कहा—काला आदमी शिकार क्या जाने?

गर्व से लाकर फाख्ता उनके सामने पटक दी।

'शाबाश!'—लीला ने कहा।

शिकारी ने कहा—साहब ने उड़ती चिड़िया मारदी।

'बहुत अच्छे!'—राजेन ने कहा और वह हँस दिया। विंटर्टन ने झट से एक प्याला चाय उठा लिया और एक सैंडविच अपनी कर्री और खुरदुरी उँगलियों में पकड़कर खाने लगा। उसके दाँत अधिकांश अँगरेज़ों की भाँति पीले रंग के थे।

वीरेश्वर ने देखा कि यदि इन दोनों का रंग साफ़ न होता, तो यह दोनों कितने बदसूरत मालूम देते। हिंदुस्तानियों का रंग साफ़ नहीं होता, आकृति कहीं अच्छी

होती है। अँगरेज़ों का अंतर्बाहर सब ही एक सफ़ेद झूठ है। अपनी इस विजय पर वीरेश्वर मन ही मन प्रसन्न हो उठा। इतिहास किसी का अभिमान बहुत दिन तक नहीं रहने देता। वह बड़े से बड़े को उखाड़कर फेंक देता है। करोड़ों में जो चेतना गरज रही है इसे वे लोग क्या दाबेंगे ?

अँधेरा छाने लगा। खाना पीना समाप्त हो गया। नौकरों की हेड़ ने उनके उठ जाने पर बाकी का काम जल्दी-जल्दी समाप्त किया। दूसरी मोटर में वह सब सामान लाद दिया गया।

मगनराम ने आकर कहा—सरकार, चलिए, अब मचानों पर बैठिये।

एक मचान पर राजेन, लवंग, विंटर्टन और मगनराम एक शिकारी के साथ चढ़ गये, दूसरी ओर बाईं तरफ़ करीब बीस या पच्चीस गज़ के फासले पर एक और पेड़ पर बँधी मचान पर लीला, वीरेश्वर और सिट्वैल एक शिकारी के साथ तैयार हो गये।

चारों ओर अँधेरा छा गया था। कोई भैंसा या बकरा नहीं बाँधा गया था। जंगल में एकाएक शोर मचने लगा। शिकारी लोग और अनाम गाँववाले ढोल, ताशे, कनस्तर और अनेक चीजें बजाकर जगार करने लगे।

एकाएक दूर कहीं एक गुर्राहट सुनाई दी।

लवंग ने कहा—इसकी आवाज़ कितनी डरावनी है। सचमुच यह जंगल का राजा है।

सिट्वैल ने उधर अपनी मचान पर कहा—वक्त आ गया।

वीरेश्वर ने सोचा, यह अफरीका की लड़ाई है। हिंदुस्तानी मैदान जोतते हैं, अँगरेजों का नाम होता है। सारा जोखिम का काम गाँववाले और शिकारी कर रह हैं, दो फिटफिटाती गोलियाँ चलाकर यह लोग मशहूर हो जायेंगे।

लीला ने वीरेश्वर की बाँह थाम ली। कहा - मेरे पास कुछ नहीं है। उसके स्वर में भय की छाया थी। कितनी भी घृणित हो, ज़िंदगी फिर भी ज़िंदगी है। जब वह ही नहीं है, तो कुछ भी नहीं है।

वीरेश्वर मुस्कराकर उसके कान में फुसफुसाया—शेर की क्या मजाल जो आप पर हाथ उठाये।

और मुस्कराया। लीला ने कहा—धीरे से कान में फुसफुसाकर—शेर तुम्हारी तरह मज़ाकिया नहीं होता।

जंगल में शोर बराबर बढ़ता गया। आस्मान में धुँधला-सा चाँद निकल आया

था। पत्तियों के पीछे उसका पतला-दुबला क्षीण रूप दिखाई दे रहा था। अंधकार उसके कारण कुछ सूना-सूना-सा दिखाई दे रहा था। लवंग चौंक गई। पीछे के पेड़ पर कोई कठोरता से एक डरावनी हँसी हँसा।

'कौन है?' विंटर्टन ने कहा--कौन है? बदमाश, इधर आओ। वर्ना मैं तुमको जेल भिजवा दूँगा।

उत्तर नहीं मिला।

विंटर्टन के मुँह से अस्फुट ध्वनि निकल गई--कांग्रेस...!

किंतु भारतरक्षा कानून के दावेदार की अंगरेज़ी व्यर्थ हो गई। लवंग ने राजेन को झकझोरकर कहा--बोलते क्यों नहीं? वह देखो न कौन है?

राजेन ने उपेक्षा से कहा--उल्लू है। कभी जंगल तुम लोगों ने देखा नहीं?

लवंग ने कहा—उल्लू आदमियों की तरह हँसता है?

विंटर्टन हँसा। राजेन्द्र फिर अँधेरे की ओर घूरने लगा। विंटर्टन ने कहा—आप डर गईं मिसेज़ राजेन?

लवंग ने कहा—आप भी तो घबरा गये। दमन किये थे, इतने शिकार किये थे, फिर भी?

विंटर्टन ने कहा—मैं आपकी परीक्षा ले रहा था।

लवंग क्षुब्ध हो गई। कैसे कमीने होते हैं। हिंदुस्तान में तो इन्हें सिवाय झूठ, मक्कारी, दगाबाज़ी के कुछ आता ही नहीं।

इसी समय शेर की दहाड़ सुनाई दी और चारों तरफ़ का शोर उसकी पास आती दहाड़ के साथ-साथ उनके निकट आने लगा। शिकारी ने कहा—तैयार! साहब बंदूक उठाइए।

राजेन और विंटर्टन बंदूक लेकर तैयार हो गये। लवंग के हाथ में पिस्तौल थी। मगनराम खाली हाथ और शिकारी के पास उसकी पुरानी राइफ़ल थी। लवंग ने कहा—मिस्टर विंटर्टन! आपका हाथ काँप क्यों रहा है?

विंटर्टन ने मुड़कर कहा—निशाना लगा रहा था।

मगनराम ने कहा—सर! शेर तो आ जाने दीजिए।

और दहाड़ के भयानक उन्माद से सारा जंगल थरथरा कर काँप उठा।

---

[२९]

ताश का खेल

रात के आठ बजे थे। चारों ओर सघन अंधकार छा गया था। बाहर एक धुआँ-सा फैल गया था। कमरे में रोशनी जल रही थी। उसमें से धुँधला प्रकाश निकल-निकलकर फैल रहा था। ज़मींदार सर वृंदावनसिंह आराम कुर्सी पर कंबल ओढ़े पड़े थे।

उस सन्नाटे में पंडितजी ने धीरे से प्रवेश किया।

'राम-राम सा'ब' पंडितजी ने अपने पोपले मुँह से कहा।

ज़मींदार साहब ने कहा—कौन पंडित? आओ भैया।

पंडितजी आकर बगल में जमीन पर बैठ गये। उन्होंने धीरे से इधर-उधर देखा और कहा—सरकार! एक बात अरज करनी है।

ज़मींदार साहब चौंके। कहा—क्यों? क्या हुआ?

पंडितजी ने कान पकड़कर कहा—सरकार खता माफ़ हो।

ज़मींदार साहब ने अधीरता से पूछा—क्या हुआ? कहते क्यों नहीं?

पंडितजी ने कहा—सरकार गजब हो रहा है! कल साँझ छोटे सरकार के जाने के बाद सुंदर का बेटा आया था और कोठी के नौकरों को भड़का रहा था। कलुआ चमार को, जिसे उन लोगों ने पीटने के लिए बाँधा था, भगवती ने डाँट डपटकर छुड़वा दिया। उसने लोगों से कहा—क्यों मारते हो उसे? अरे तुम गरीब लोग आपस में एका नहीं कर सकते! यह लोग जो मोटरों में बैठकर ऐश उड़ाते हैं, आखिर किसकी कमाई खाते हैं? हराम का खा-खाकर जो तुम लोगों को हड्डी-हड्डी चूस रहे हैं, क्या तुम सदा इन लोगों की गुलामी करने के लिए पैदा हुए हो?

ज़मींदार साहब गरज उठे—'पंडित!' पंडित चुटिया से एँडी तक काँप उठे। उन्होंने कहा—मालिक, अगर मैं झूठ बोलता हूँ तो मेरे मुँह में गाय की हड्डी, आज

मैंने अगर झूठ कहा है तो वैतरिणी में मेरे हाथ से गौ की पूँछ छूट जाये और मैं जनम-जनम तक नरक की आग में लोहे के काँटों पर छेदा जाऊँ। लेकिन सरकार! सात पुश्तों ने आपका नमक खाया है। आपके परबाबा और मेरे परबाबा इस गाँव में साथ-साथ आये थे और उन्होंने कभी एक दूसरे का साथ न छोड़ा। इस घर में काम करके मैंने कभी यह नहीं सोचा कि मैं एक नौकर हूँ। यह आप ही की दया है कि मेरे बदन में हड्डी और मांस है, यह आप ही की दया है कि मगनराम ने अपने बाप की नाक रख ली है, क्योंकि उसने छोटे सरकार को मालिक कहा है। मैं कभी नमकहरामी नहीं कर सकता। पडित की जात है, मेरे पिता कभी मेरे हाथ का पानी नहीं पियेंगे, अगर मैंने आपसे दगा की। लेकिन अधरम हो रहा है महाराज, मैं कैसे चुप रह सकता हूँ?

ज़मींदार साहब सोच रहे थे। यह तो हिंदुस्तान की सभ्यता के विरुद्ध है। मालिक मालिक है, प्रजा प्रजा है, जायसवाल ने लिखा है कि पहले गण होते थे, किंतु उनमें भी बराबरी केवल आर्य्यों में होती थी। यह तो उन रूसी कम्युनिस्टों का प्रचार है। हिदुस्तान में यह कभी नहीं हो सकता। वे गरीब किसान जो अपनी टूटी-फूटी झोंपड़ियों में खुश हैं उन्हें लोभ दिखाया जा रहा है कि वे भी महलों में रहें? यदि सब ही राजा बन जायेंगे तो प्रजा कौन रहेगी? सब बराबर हो जायेंगे तो इन्सान को उन्नति करने की प्रेरणा कहाँ से मिलेगी? नहीं, यह तो धर्म पर चोट है। इसका मतलब हुआ भाग्य कोई चीज ही नहीं?

'और नौकरों ने उस लड़के की बात मान कैसे ली?' जमीदार साहब ने उत्सुकता से पूछा।

पंडितजी ने धीरे से कहा—मालिक! डरता हूँ कि धड़ पर गर्दन नहीं रहेगी, लेकिन कहे बिना नहीं रह जाता। आज तक जो नहीं हुआ वही हो रहा है। मालिक! लोग पहले कहते थे, विलायत जाकर धरम नहीं रखा जाता। आपने उसे ग़लत साबित कर दिया। क्या आप जाकर विलायत नहीं रहे? लेकिन जब आप लौटे, आपने कौन-सी रीत नहीं निभाई। मालकिन नहीं रहीं। पंडित का गला रुँध गया। वर्ना आप जो बेटे के प्यार में उन्हें इतनी आज़ादी दे रहे हैं वह उनकी हुकूमत में कभी नहीं मिलती। कल बहू आई है, आज फ़िरंगियों के साथ शिकार पर गई है? क्या यहाँ कोई मरजाद नहीं रही? मैंने आपका आपकी सात पुश्तों से नमक खाया

है। पंडित सब कुछ सह सकता है, लेकिन मालिक का नुकसान नहीं सह सकता। गाँववालों की मजाल है कि सिर उठा जायें? जैसा राजा होगा वैसी प्रजा होगी। मालिक रीति-रिवाज तोड़ेंगे तो उन गधों का क्या होगा?

पंडित हाँफ गये।

ज़मींदार साहब ने पूछा—है कहाँ वह लड़का?

पंडित ने हाथ जोड़कर कहा—अभय दान हो, लड़का कोठी में बंद है।

'बंद है?' ज़मींदार साहब के मुँह से निकला—'वह किसने किया?'

'मालिक! मैं तो उसे पुलिस में दे देता। लेकिन मैंने उसे छोड़ दिया। छोड़ दिया, क्योंकि डरता था, क्योंकि नई मालकिन ने उसे शहर से मोटर भेजकर बुलवाया था।

'क्यों?'—ज़मींदार साहब ने तीव्र स्वर से पूछा।

'सुना है, उन्होंने उसे ज़मींदारी का मनीजर बनाने के लिए ४०० रुपया माहवारी पर बुलाया था।'

'बिना मेरी राय के? अभी तो मैं ही मालिक हूँ।' और उनको एक हल्के से चक्कर ने कुर्सी पर पीछे की ओर लिटा दिया।

पंडितजी ने कुछ नहीं कहा। वे चुप हो गये। थोड़ी देर बाद ज़मींदार साहब ने कहा--पंडित! ज़माना बदल गया है। सारी दुनिया ने एक चीज़ भुला दी है, वह है वफ़ादारी।

पंडित ने टोककर जोर से कहा—मालिक! जनेऊ की सौगंध है, मैं यह सुन नहीं रहा हूँ, ब्रह्महत्या कर रहा हूँ।

ज़मींदार साहब ने धीमे से कहा- पंडित! आज जीवन के सारे पाप-पुण्य का फल दाँव पर लग गया है। आज तुमसे एक काम कराना चाहता हूँ।

पंडितजी ने सिर उठाकर देखा। ज़मींदार साहब ने कहा--आज मेरी इज्जत मेरी मर्यादा तुम्हारे पैरों पर है पंडित!

'मालिक!!'—पंडित फिर चिल्ला उठा।—'मैं फाँसी लगाकर मर जाऊँगा। मगन से कहिए कि वह मेरा कर्म भी न करे और मैं प्रेत बनकर प्यासा प्यासा बियाबानों में चिल्लाता फिरूँ, क्योंकि मैंने ऐसी बात सुना है।

ज़मींदार साहब ने रुँधे हुए कंठ से कहा—पंडित, यह लो, उन्होंने उतारकर

एक चाँदी का छल्ला पंडित की ओर बढ़ाकर कहा—इसे ले जाकर सुंदर को दे देना, अभी इसी समय !

पडितजी ने काँपते हुए हाथ से छल्ला पकड़ लिया और उसे डरते हुए जोर से मुट्ठी में भींच लिया, जैसे वह उस साँप के बच्चे को दमघोटकर मार देना चाहते थे। पंडित को लगा जैसे उनके पैरों के नीचे से धरती खिसक गई, आस्मान के तारे शायद अब पल भर में ही टूट-टूटकर पृथ्वी पर आ गिरेंगे और उसके बाद सारा ब्रह्माण्ड खड खंड हो जायेगा और पंडित···

ज़मींदार साहब अर्द्ध-मूर्छित से अपनी कुर्सी पर पड़े थे। पंडित ने एक बार तनिक विक्षोभ से उनकी ओर देखा और बाहर चले गये।

रात का घना अँधेरा, बाहर सनसनाती चुभीली वायु साँय-साँय कर रहा था। किसी टूटे-फूटे जहाजी बेड़े की तरह गाँव का गाँव उस नीरव अंधकार-सिंधु के अतल में जाकर डूब गया था और पानी के भीतर की काई के क्षीण स्पंदन की भाँति लोग साँस ले रहे थे। रास्ते की धूल ठंडी हो गई थी। पंडितजी चल पड़े।

जिस समय उन्होंने वह द्वार खटखटाया, सुन्दर के घर में एक मद्धिम दिया जल रहा था। सुंदर ने द्वार खोलकर देखा, पडित खड़ा था। उसे कुछ विस्मय हुआ। उसने कहा—क्या बात है पंडितजी ?

पंडित गंभीर था। उसने कोई उत्तर नहीं दिया। भीतर घुस आया और दृढ़ता से हाथ बढ़ा दिया। सुंदर ने उसे हाथ में ले लिया और काँप उठी। विश्वास नहीं हुआ। जाकर दिये के प्रकाश में देखा। उसके मुँह से अर्द्धस्वर फूटा—'पंडित...' और दीवाल से जाकर उसकी पीठ टिक गई। उसकी फटी आँखों को देखकर पडित का दिल सहम गया। थोड़ी देर बाद कुछ स्वस्थ होने पर सुंदर ने धीरे से फुसफुसाकर पूछा—यह तुम्हें किसने दी ?

पंडित ने हौले से, किंतु निश्चित स्वर में उत्तर दिया – मालिक ने।

'क्या अभी दी है ?'—सुंदर ने पूछा—जैसे डूबते में आदमी बोलने का प्रयत्न करता है, किंतु कुछ बोल नहीं पाता।

पंडित ने उदास दृष्टि से देखते हुए सिर हिलाकर स्वीकार किया। सुंदर विभोर-सी खड़ी रही। पंडित भी प्रतीक्षा करता रहा।

पंडित ने कहा—रात के बारह बज रहे हैं। जल्द चलो, वर्ना सुबह हो जायगी। छोटे सरकार लौट आयेंगे।

सुंदर ने कहा—'चलो!' उतारकर अरगनी पर से वह पुरानी जर्जर चादर ओढ़ ली और उसके साथ-साथ चल दी। बाहर ड्योढ़ी पर किसी ने भी प्रश्न नहीं किया। पंडित नीचे ही रुक गया।

सुंदर ने कमरे में धीरे से प्रवेश किया। उस समय घर में एकदम सन्नाटा छा रहा था। प्रायः सभी नौकर-चाकर सो रहे थे। जमींदार साहब ने आँखें खोलकर देखा और दोनों एक दूसरे की ओर घूरकर देखते रहे। उन आँखों में क्या था यह किसने नहीं समझा? दोनों फिर भी देखते रहे, देखते रहे, आज जैसे इन आँखों में दर्द नहीं होगा, क्योंकि दिल का दर्द कहीं अधिक है; न एक भी आँसू छल-छलायेगा, क्योंकि आज है किसके भीतर इतना रस? जो कुछ है वह एक उन्माद का हाहाकार मात्र बनकर रह गया है, जैसे कल तक जो पहाड़ अपने अट्टहासों की प्रति-ध्वनि करता था आज वह अपने सिर पर गिरने को वेग से अलग होकर घिरता चला आ रहा है।

और कमरे में धुँधला प्रकाश फैल रहा था।

सुंदर ने गद्गद कंठ से कहा—तुमने मुझे बुलाया है?

ज़मींदार साहब ने सिर हिलाया। वे बिल्कुल निराश-से बैठे थे। सुंदर ने उजाले में छल्ला उठाकर कहा—जानते हो, इसका मतलब क्या है?

ज़मींदार ने फिर सिर हिलाकर स्वीकार किया। शायद आज उनके पास शब्द नहीं हैं। सुंदर ने फिर कहा—वृन्दावन! एक दिन जो पाप किया था उसे प्रेम के बल पर पवित्र पुण्य बना देने के लिए हमने आपस में छल्ले बदले थे। भयानक से भयानक ग़रीबी में, भूखे मरते समय, जब मेरा बच्चा भूख से बिलख-बिलख कर रो रहा था, मैंने ऐसे ही छल्ले को अभी तक बेचा नहीं, छिपाये रखा है। आज तुमने वही छल्ला मुझे लौटा दिया है, तो फिर मेरे पास तुम्हारा छल्ला रहकर क्या करेगा? लो उसे भी ले लो। और सुंदर ने अपनी उँगली पर से वैसा ही दूसरा छल्ला उतारकर उनकी ओर बढ़ा दिया। वह कहती गई—एक दिन तुमने यह दोनों एक साथ बनवाये थे कि हम तुम सारी रुकावटों को ठोकर मारकर एक साथ जीवन बितायेंगे। लेकिन धन और अधिकार के कारण तुमने अपने आपको बेच

दिया और वे छल्ले, प्रेम के वे बंधन निर्बल रह गये। किंतु फिर भी एक दिन तुमने कहा था कि सुंदर, यदि यह सब भी हो गया तो भी कुछ नहीं, मैं तुम्हें अब भी प्यार करता हूँ। जब हम तुम कभी एक भी विपत्ति में पड़ेंगे तब यही छल्ला लौटा दिया जायेगा। और आज तुमने मेरे प्रेम की थाती लौटा दी है!

सुंदर ने दो क़दम पीछे हटकर हाथ फैला कर कहा—मालकिन इस बात को भी नहीं जान सकीं। गाँव में कुछ दुश्मनों ने संदेह अवश्य किया, किंतु कभी कुछ नहीं कह सके। आज तुम भी उसको झूठा बना देना चाहते हो? बोलो! तुम गाँव के मालिक हो, राजा हो, क्या अपनी प्रजा से न्याय ऐसे ही होता है?

ज़मींदार साहब ने घिघियाते स्वर में कहा—मैं कुछ नहीं हूँ सुंदर! मैं एक घोर पापी हूँ, किंतु आज मेरी मर्यादा का प्रश्न है, आज सब कुछ डूब रहा है। मैं नहीं जानता मैं क्या करूँ?

'क्या हुआ?'—सुंदर ने उत्सुकता से पूछा।

ज़मींदार साहब ने साँस जोड़कर कहा—भगवती मेरे खिलाफ़ बग़ावत कर रहा है। वह गाँववालों को भड़का रहा है। मेरी जिस इज्जत को तुमने सब कुछ त्याग कर बनाया है, उसे आज वह जड़ से उखाड़कर फेंक देना चाहता है।

सुंदर हँस दी। उसने कहा—बड़े अभिमानी बनते थे। तुम अभिमानी हो सकते हो? वह नहीं हो सकता?' उसने हँसते हुए ऊपर देखकर कहा—'हे प्रभु! सब कहते हैं, तू किसी की नहीं सुनता, किंतु आज मैंने जाना कि तू सबकी सुनता है।'

ज़मींदार सर वृंदावनसिंह विक्षुब्ध हो गये। उन्होंने खड़े होकर कहा—सुंदर!

सुंदर चुप हो गई। ज़मींदार साहब ने हाथ पसारकर कहा—ले जाओ यह सब। क्यों न उस दिन मुझे बदनाम कर दिया था? क्यों न तुमने मुझे ज़हर देकर मार डाला जो आज तुम मेरे हृदय के घावों पर नमक छोड़ने आ गई हो। क्या यही इस प्रेम का अंत है? मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? जहाँ मैं विवश था वहीं मैंने सिर झुकाया था। तुम्हीं बताओ क्या मैंने तुम्हें कभी दुतकारा? क्या मैंने तुमसे नहीं कहा कि तुम्हें जब आवश्यकता हो, मुझसे कहो? क्या मैंने स्वयं तुम्हारे पुत्र की शिक्षा का प्रबंध नहीं किया? बोलो सुंदर?

सुंदर ने गर्व से कहा—तुम इतने अभिमानी हो तो क्या मुझे भी तुम्हारी

प्रेमिका होने के नाते अभिमान करने का अधिकार नहीं है ? लेकिन मैं जानना चाहती हूँ कि मैंने किया क्या है ?

ज़मींदार ठिठक गये। उन्होंने उसके पास जाकर कहा—तुम भगवती की मा हो। और वह सबकी जड़ है।

सुंदर ने कहा—और तुम उसके पिता हो।

ज़मींदार साहब को चक्कर आ गया। सर वृंदावनसिंह वहीं फर्श पर निःशक्त-से बैठ गये। शायद पैरों की गठिया फिर उभड़ आई। सुंदर ने कोई चिंता नहीं की। वह तीखे स्वर से बोल उठी—अभिमानी का बेटा यदि अभिमानी है तो उसे कोई नहीं रोक सकता। आज राजेन का उठा हुआ सिर देखकर तुम्हारा अंतःकरण हर्ष से पुलक उठता है, किंतु यदि तुम्हारा दूसरा पुत्र यही करता है, तो तुम उसे कुचल देना चाहते हो ! लेकिन मत भूलो कि जिस वंश का तुम्हें इतना गर्व है, जिस रक्त का तुम्हें इतना घमंड है, उसकी रगों में वही लहू बह रहा है। आज तक मैं एक पाप नहीं, अनेक पाप करती रही हूँ। मैंने एक बेटे को, अपने पेट के जाये बेटे को उसके असली पिता का नाम नहीं बताया है। मैंने उससे विश्वासघात किया है। अरे वह एक दरिद्र का बेटा नहीं। दरिद्र को धर्म ने दिया था, मा के जीवन की काली चादर पर ओढ़ा देने के लिए, क्योंकि वह आदमी जिसने उससे ब्याह करने का वचन दिया था, अपनी बात को पूरा नहीं कर सका। उसे उसकी मा से प्रेम नहीं था, अपनी गद्दी, अपने धन और अपने अधिकार के पीछे उसकी इंसानियत चकनाचूर हो गई थी। जिसकी मा ने एक दिन रानी बनने का सुपना देखा था, मगर जिसने खून पसीना कर दिया, पर कभी भीख के लिए हाथ नहीं पसारा, आज वह फिर रानी बनकर खड़ी है, और राजापन के बोझ को ढोनेवाला उसके सामने भिखारी बनकर खड़ा है। आज भगवती ने पढ़-लिखकर उन बातों को कहा है जो मैं कहना चाहती थी, पर सोच नहीं पाती थी। उसने उस पाप पर चोट की है जिसके कारण आदमी-आदमी नहीं रहता।

ज़मींदार साहब ने कहा—तो तुम भी यदि उसे ठीक समझती हो तो मैं कुछ नहीं कहना चाहता। किंतु अब मेरा तुम्हारा तो जो होना था, बीत गया। अब राजेन ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ?

सुंदर नमित हो गई। वह किसी चिंता में पड़ गई। ज़मींदार साहब ने कहा—

मैं उसे पुलिस में दे सकता था, जेल भिजवा सकता था, पर मैंने तो यह सब नहीं किया। इसी लिए कि वह मेरा बेटा है, वह प्रेम की उपज है, राजेन तो प्रणाली का भी हो सकता है। फिर राजेन से तुम्हारी कोई सहानुभूति नहीं है ? क्या तुम चाहती हो कि उसके सुख का स्वप्न इसलिए चूर-चूर हो जाये कि उसके पिता ने एक घोर अपराध किया था ? सुंदर, अपराध मैंने किया था। जीवन भर मैंने तुम्हें दंड दिया है, तुम्हारे हृदय पर धधकती हुई चिताएँ जलाई है, तुम्हारे अरमानों को चकनाचूर किया है, किंतु क्या इसका बदला यही है कि अनजान बनकर दो भाई आपस में लड़ते रहें, और एक जिसके पास अधिकार हैं, दूसरे को कुचल दे ? यह तो कोई न्याय नहीं सुंदर। आओ ! तुम मुझे जो चाहो दंड दे लो। जब देने का समय था तभी तुमने मुझे क्षमा कर दिया था। फिर आज तुममें इतनी स्पर्धा कैसे जाग उठी ? बिना मेरी राय के ही राजेन की बहू ने, मैंने सुना है, भगवती को शहर से मोटर भेजकर बुलाया था कि उसे तमाम जायदाद का मनीजर बना दिया जाये। राजेन भगवती से केवल एक वर्ष छोटा है। किंतु उसका पालन आराम से हुआ है। वह भगवती से बड़ा मालूम देता है। मैं पूछता हूँ, उन्होंने उसे क्यों बुलाया ? क्या यह रगों में दौड़नेवाले खून का अनजान खिचाव था ? क्या वे एक दूसरे की ओर आकर्षित हो सकते हैं ? मैं नहीं जानता, फिर उनमें लड़ाई क्यों हो गई ? किंतु मुझे बताओ यदि वे साथ-साथ रहते हैं तो कोई हर्ज है ?

सुंदर ने कहा—यह मुझे मालूम है। सुबह भगवती इसके लिए मना कर रहा था। उसने मुझसे कहा था कि वह उनका नौकर नहीं बनना चाहता। वह उनके बराबर है। सच कहती हूँ मालिक, उस समय लगा था, जैसे एक तूफान आ रहा था। अरे, इसे कैसे मालूम हो गया कि यह उनसे नीचा नहीं है ? उस समय एक खुशी हुई थी, किंतु फिर परिस्थिति देखकर मैंने कहा था—तू नौकरी कर ले। उन्हें अपना ही समझ। वे पराये नहीं हैं।

ज़मींदार ने कहा—सुंदर, एक बात तुमसे पूछना चाहता हूँ। इस इस्टेट का मालिक मैं हूँ। यदि लवंग ने बिना मुझसे राय लिये किसी और को रखा होता, तो तुम समझती हो, मैं उसे रहने देता ? किंतु नहीं; भगवती अपना है। सब कुछ सोच चुका हूँ। बस के बाहर सब बात चली गई है। यही सोचकर तुम्हें बुलाया है। याद है, तुमने उस दिन प्रतिज्ञा की थी कि जब विपत्ति पड़ेगी, तुम मुझे बचाओगी ? मैं

तुम्हारे मुँह पर नहीं बताना चाहता कि मेरे जीवन का कितना बड़ा दुःख मेरे हृदय के भीतर छिपा है। क्या मैं नहीं जानता कि तुमने मेरे लिए अपने आपको तिल-तिल करके मिटा दिया है……।

सुंदर ने बीच ही में कहा – मैंने क्या किया है? कुछ तो नहीं। यदि यह नहीं करती तो करती ही क्या! जहाँ मेरा सबसे बड़ा स्वार्थ था वहाँ तो तुम्हीं जीत गये। भगवती क्या तुम्हारी मदद के बिना पढ़ पाता? मैं गरीब हूँ, किंतु मैंने अपनी जवानी को एक भूल माना है। मैंने असंभव को संभव करना चाहा था, किंतु वह नहीं हो सका। मुझे तुम गर्व का भार न दो मालिक! तुम मेरे सबसे अधिक निकट हो। आज जब हमने आपस में मनुष्यों की तरह बात की है, तुमने मुझे उसी नाम से पुकारा है सुंदर, और मेरे सामने तुम कुछ भी नहीं, केवल वृन्दावन हो। जब तुम कुछ भी और हो तब तुम मेरे नहीं हो। तुमने उस और कुछ को ही सब कुछ समझा, तुममें वह हिम्मत नहीं थी कि सब कुछ कर डालते। सच बताओ! भगवती ने कुछ झूठ कहा – पिता का पुत्र होने से ही तो मनुष्य को सम्मान नहीं मिल जाता? जो सम्मान राजेन को मिला है वह क्या उसके भाई को नहीं मिलना चाहिये था?

'किंतु वह क़ानूनन बेटा नहीं है।'

सुंदर ने विक्षुब्ध होकर कहा——कौन-सा कानून है जिससे बाप बेटे का बाप नहीं है, बेटा बाप का बेटा नहीं है, मा बेटे की मा नहीं है। यह कानूनों की आड़ बनानेवाले पापी आदमियत का गला पहले घोंटते हैं। सुंदर भिखारी की बेटी नहीं थी। उसका बाप भी गाँव का एक सम्मानित व्यक्ति था, कानूनगो था। भाग्य ने नहीं, उसकी निर्बलता ने उसे भिखारिन बना दिया था। उसका बेटा दूध की जगह पानी पिया करता था। जब एक बेटे का बचा हुआ दूध कुत्ते पिया करते थे, दूसरा अपना अँगूठा चूसा करता था। जब एक के पास रेशम और मखमल के कपड़ों के ढेर थे, दूसरा धूल में नगा लोटा करता था। लेकिन कौन सुने? गरीबों की कोई नहीं सुनता। दो रोटी देकर सोचा जाता है कि उनकी पीर हट गई। किंतु उन रोटियों के पीछे मजबूरियाँ कितनी रोया करती हैं, बाल नोच-नोचकर सिर पीटा करती हैं। उनके दिल में सदा यह बात कचोटा करती है कि यह उसके टुकड़ों पर पलता है। कितना घृणित है यह संसार! रोटी को आदमी खाने के लिए नहीं रखता, रोटी के बलपर आदमी आदमी को दबाता है। अमीरों ने गरीबों को कुत्ता बनाकर रखा है। मैं नहीं

जानती, आदमी इस पाप से बचने के लिए क्या कर सकता है ? किंतु मालिक ! भगवती पढ़ा लिखा है। यदि वह अपने बाप और भाई से सच कहकर उन्हें छुड़ाना चाहता है, उन्हें उस अँधेरे में से बाहर निकालना चाहता है तो क्या वह बुरा है ?

जमींदार साहब ने दोनों हाथों से अपने दोनों घुटने दबाते हुए कहा --पागलों की-सी बातें न करो सुंदर ! वह मेरा है इसी ममता से मैं उसे जेल भिजवाना नहीं चाहता। मालूम है, आजकल वे रूस के एजेण्ट छोकरे ऐसी बातें करते फिरते हैं और वह भी उनकी हाँ में हाँ कह रहा है। अगर सरकार को जरा भी भनक पड़ गई तो उठाकर जेल में ठूँस देगी। क्या तुम चाहती हो वह जेल जाये ? जानती हो इस वक्त तरह दे जाने से उसके लिए और कोई परिणाम नहीं है। यह सरकार संदेह पर भी ज़िंदगी भर को सजा दे सकती है। यह आत्मरक्षा के प्रयत्न का हत्या भी करार दे सकती है। जेल में वह कैसे रहेगा ?

उनका स्वर काँप उठा। उन्होंने फिर कहा--यदि मैं उसे छोड़ देता तो आज इस वक्त वह जेल में होता।

सुंदर चौंक गई। उसने कहा--क्या मतलब ? वह कहाँ है ?

'उसको पंडित ने नीचे बंदकर रखा है।'

घृणा से काला होकर सुंदर का मुँह विकृत हो गया और उसके होंठों से फूट निकला--कायर। यही है तुम्हारा स्नेह ? यही है तुम्हारी ममता। तुमने मेरे बेटे को बंद कर रखा है। जैसे वह कोई मामूली चोर हो। तुम्हें शर्म नहीं आती ?

जमींदार साहब ने दोनों हाथों में अपना मुँह छिपा लिया। उन्होंने कहा -- और क्या कर सकता था मैं,...सुंदर !

'सुख देने के वक्त कुछ नहीं तुम्हारे पास। दे सकते हो सजा ! किस मुँह से तुम उसे सजा दे सकते हो ?'

जमींदार साहब ने पुकारकर कहा—'पंडित !'

पंडित का कठोर चेहरा द्वार में से झाँक उठा। जमींदार ने कहा --पंडित ! भगवती को ले आओ।

सुंदर उसके जाने के बाद फिर फुफकार उठी—एक दिन गोद में नहीं खिलाया गया, एक दिन प्यार नहीं किया गया। क्योंकि वह कुलटा का बेटा है, क्योंकि तुम आज एक प्रसिद्ध धर्मात्मा हो।

उसने देखा ज़मींदार सिर झुकाये बैठे थे।

नीचे जाकर पंडितजी ने भगवती के कमरे का द्वार खोल दिया। भगवती ने कुर्सी पर बैठे-बैठे देखा। पूछा—ले आये पुलिस?

पंडित ने अदब से सिर झुकाकर कहा—आपको मालिक ने पधारने को कहा है।

उस पंडिताऊ भाषा को सुनकर, उस इज़्ज़त देने के प्रयत्न को देखकर भगवती को आश्चर्य हुआ। व्यंग्यसे उसके होंठ टेढ़े हो गये। उसने कठोर स्वर में कहा—कहाँ हैं तेरे मालिक?

'हुजूर! ऊपर हैं।'

भगवती आगे-आगे, पीछे-पीछे पंडितजी। अभी यह लोग ऊपर के कमरे के द्वार पर पहुँचे ही थे कि एकाएक नीचे बड़ी जोर का कोलाहल मच उठा। यह क्या! मोटर रुकने की देर नहीं और यह कैसा हाहाकार!

गठियावाले ज़मींदार सुंदर के कंधे पर हाथ रखकर जल्दी-जल्दी नीचे उतरने लगे। भगवती स्तंभित हो गया। पंडितजी ने उसका हाथ पकड़ लिया और उसे अपने साथ उनके पीछे-पीछे खींच ले चले। उन्होंने नीचे पहुँचकर देखा, कमरे में शोर हो रहा था। लवंग जार जार रो रही थी. सबके चेहरे लटके हुए थे और सबके बीच में से गाँव का डाक्टर कुर्सी पर से निराशा से सिर हिलाता हुआ खड़ा हो रहा था। बगल मे पलंग पर खून से भींगा राजेन्द्र का शव पड़ा था।

ज़मींदार साहब ने देखा और उनका स्थूल शरीर अचेतन होकर सुंदर पर लुढ़क गया। भगवती किंकर्त्तव्य विमूढ़-सा खड़ा रहा।

सबने बढ़कर उन्हें संभाल लिया। जब वे उन्हें पलंग पर लिटाने लगे तब सुंदर ने गरजकर कहा—खबरदार! जवान-जवान बेटा आज सदा के लिए जमीन पर सो गया और बाप आज भी खाट पर सोयेगा? यह हम लोगों के पापों का फल नहीं तो क्या है कि जिनको हमारी आँखों के सामने फलना-फूलना चाहिए, आज हमसे पहले वह डोरी तोड़ गये।

उसका गला रुँध गया। सबकी आँखों में एक आर्द्रता काँप उठी।

लोगों ने ज़मीन पर ही केवल दरी बिछा दी और उन्हें उसी पर लिटा दिया गया। वीरेश्वर ने दौड़कर आवाज़ दी। गाँव का फटा-टूटा डाक्टर फिर भीतर आ गया और आते ही घबरा गया।

कामेश्वर अपनी अवाक् आकृति को लिये देखता रहा। यह क्या से क्या हो गया? क्या यह सच है कि राजेन अब नहीं रहा?

उसने पास जाकर देखा। दिल पर सीधो मार पड़ी थी पंजे की। पूरा सीना फट गया था! सचमुच वह मर गया था। उसे कोई नहीं जिला सकता। आदमी का भी क्या जीवन है? अभी तो सब कुछ था, अब नहीं है तो कुछ भी नहीं रहा।

सभर एक बार अपने आप काँप उठा। उसने देखा, सुंदर और लीला धीरे-धीरे ज़मींदार साहब के पंखा झल रही थीं। उनके मुंह पर दो बार ठंडे पानी के छींटे भी दिये।

और विर्डन और सिट्वेल दोनों स्तब्ध थे। कमरे में एक दहशत भरा सन्नाटा हाय-हाय करता हुआ मन को भींचकर मसल देना चाहता है। उस शव को देखते हुए आगे बढ़कर पडित ने हाथ जोड़कर कहा—मालिक! तुमने पंडित के वंश को सबसे बड़ा दण्ड दिया है। तुम चले गये हो, हम सब तो अधिक दिन के नहीं रहे, लेकिन तुमने मगन को जो निराधार छोड़ दिया है, उसके लिए अब मैं किससे कहूँ? और उसका और कोई आसरा नहीं। अब वह किसको ओर देखकर जियेगा?

पडित का गला रुँध गया। उसने काँपते हाथों से शव को सफेद चादर ओढ़ा दी। और डगमगाते पेरों को लेकर बाहर चला गया।

भगवती देर तक उस शव को देखता रहा और न जाने क्यों, न जाने किस स्नेह के भावातिशय में वह रो पड़ा। उसके रुदन को देखकर आश्चर्य से लीला ने उसकी ओर देखा। सच, भगवती ही था। वही तो रोया है अभी। किंतु पुरुष होने के नाते भगवती ने शीघ्र ही अपने ऊपर संयम कर लिया।

लवग फूट-फूटकर रो रही थी। उसके काले चिकने बाल इस समय रूखे-रूखे-से फैल गये थे। घर में एक भी नहीं जो उसी के शब्दों में उसी की व्यथा को माप सके। यह किस जीवन का पाप है? कल माथे में सेंदुर था, आज वह सदा के लिए मिट गया। पुरुष कभी स्त्री के वैधव्य की व्यथा की अथाह गभीरता नहीं समझ पाता, किंतु नारी का हृदय उस समय इतना व्याकुल हो जाता है कि वह कुछ भी नहीं सोच पाती। आज तक का भूतकाल इसी परिणाम की प्राप्ति का एकमात्र साधन था। वही तो उसका सब, सब कुछ था। आज वह गया, अपने साथ भविष्य और वर्तमान सबको अपने पदचिन्हों के साथ मिटाकर चला गया। क्या होगा? पहाड़ हो गई है

यह क्षण-क्षण की बहती हवा, जम गई हैं बर्फ़-सी यह छोटी-छोटी कोमल लहरियाँ। आत्मा नहीं चाहती कि वह उसे स्वीकार करे। काश वह जाग उठे। अरे, लगता है, अभी साँस चल रही है, उसका शरीर भीतर हिल रहा है, देखो न कपड़ों में, चादर में कैसी एक सिरहन अभी-अभी दौड़ी है।

व्यर्थ है लवंग यह भी व्यर्थ है। और फिर सन्नाटे पर घहराता हुआ वह लवंग का हृदयवेधी रुदन, जैसे कोई मरणयंत्रणा से कराह रहा हो, जैसे कोई कह रहा हो - पानी! पानी! और कोई नहीं, उसपर केवल मरु की भीषण लू ठहाका मारकर हँस उठती है···

वह तो गया। अब वह क्या लौट सकता है? जो गया वह सदा दूसरों को रोता छोड़कर ही गया।

गरीब हो, अमीर हो, सबका यही अंत है। किंतु वह हँसमुख आकार, वह चंचल गरिमा, वह स्निग्ध त्वचा और लाग! वह मधुर उष्ण आलिंगन, वे प्यार भरी आँखें······

टूट जाओ रे हृदय, चटक जाओ यह दीवार! आज सोहागिन का वैधव्य तुम्हें ललकार रहा है। आज एक हताश बन्दी की हथकड़ियाँ झनझना उठी हैं। फटफटा रहा है यह आतुर पक्षी, पिंजरे में से कैसा हृदयवेधक क्रंदन आ रहा है; जैसे मरते हुए हिरन के दो नेत्र देख रहे हैं। देखो यह जीवन की पुकार आज मृत्यु को चुनौती देना चाहती है।

किंतु कोई क्या करे? राजेन कितना नीरस है। क्या वह इतना निष्ठुर है? आज उसे अपनी प्रिया की एक भी पुकार नहीं सुनाई दी।

एकाएक लवंग ने ऊपर देखा—उसने दोनों हाथ फैलाकर कहा—मैंने तुमपर कभी विश्वास नहीं किया, किंतु आज तुम मेरे स्वार्थ का बदला दे सकोगे भगवान्?

कोई उत्तर नहीं मिला। निराकार के सामने इस घटना का कोई मूल्य नहीं। वह तो न कभी बोला है, न बोलेगा। लवंग ने मुड़कर देखा। विंटर्टन उदास-सा बैठा था। लवंग उसे देखकर चिल्ला उठी—कायर! शासक बनते हो! तुम्हें शर्म नहीं आती? चुल्लू भर पानी में डूब मरना चाहिए तुम्हें। ले जाओ इसे, यह मेरा सुहाग है, तुमने मुझे विधवा बना दिया है······

किंतु क्या होगा कहकर। विंटर्टन ने तो सिर झुका लिया है। वह बात सब

ऊपर से निकल जायेगी जैसे चावल की खड़ी फसल पर से हवा। हिंदुस्तानियों की मौत का उसके वर्ग में कोई महत्त्व नहीं। आते हैं, मर जाते हैं। आने-जानेवालों से लाभ नहीं है, लाभ तो स्थिर हिंदुस्तान से है···

लवंग के मन में आया कि उसका गला घोंट दे, किंतु फिर जाने क्यों साहस नहीं हुआ और वह चारों ओर से निराश होकर पृथ्वीपर लेटकर रोने लगी। इंदिरा अभी तक चुप थी, किंतु अब उसका सिर उठाकर अपनी गोद में रख लिया और उसे अपने हाथ से धीरे-धीरे सहलाने लगी। लवंग ने कोई विरोध नहीं किया। उस स्पर्श में उसे ऐसी कोमलता, इतना संवेदन मिला कि उसके घाव पर जैसे किसी ने शीतल लेप कर दिया हो। इंदिरा की आँखें भींग गईं। उसके हृदय में विचार आया—क्या भगवान् ने भगवती के प्रति किये गये अत्याचार का बदला लिया है? किंतु यदि यही है, तो भगवान् ने भीषण अत्याचार किया है। मर्ज़ मिटाने का मतलब यह तो नहीं कि एकदम मरीज़ को ही खत्म कर दिया जाये कि न रहे बाँस न बजे बाँसुरी···और फिर राजेन का दोष !!!

घर के नौकर कमरे के बाहर ग़मगीन से इकट्ठे हो गये थे। जगह-जगह सूचना देने दो नाई दौड़ गये थे।

और लवंग ! अभागे बालक ! तू हँस रहा था कि तेरा गुब्बारा कितना रंगीन है, कितना स्निग्ध है—आस्मान में उमड़ता चला जा रहा है···ले यह चिथड़े, यही है उसका अंत, यही है तेरे धर्म, दर्शन, मर्य्यादा, अभिमान, रक्त, सबका अंत; बसा ले साम्राज्य, किंतु उनका ढहना आवश्यक है। गर्व न कर कि तू हँसा है, तेरी इस दुनिया में हँसना रोना समान है······

इंदिरा ने स्नेह से कहा—बहिन?

इस एक शब्द के कारण लीला की आँखें खुल गईं और एक घोर श्रद्धा से मुख झुक गया। फिर अपनी याद आते ही उसपर एक स्याही फैल गई।

भोर हो गया था। मगनराम इंतज़ाम करता फिर रहा था। किंतु कुल की रीति तो पंडितजी ही जानते हैं। उन्होंने गंभीर स्वर से बुलाकर कहा—मगन !

मगन ने उनके सामने आकर कहा—दादा?

'क्या हुआ रात को?'

मगन ने कहा—जिस मचान पर मालिक थे, बीबीजी, मैं और वह लंबा साहब

तथा एक शिकारी भी बैठे थे। जब जगार हुई तो शेर निकलकर आया। छोटे सरकार ने ज्योंही वह करीब सौ गज़ पर दिखाई दिया, उसके गोली मारी। गोली खानी थी कि शेर दहाड़कर ही झपटा। गोली उसके पुट्ठे पर से फिसल गई थी। हम खाली हाथ थे। उसका उस भयकरता से दहाड़ना सुनना था कि विंटर्टन इतनी ज़ोर से काँप उठा कि सारी मचान हिल गई और छोटे सरकार, जो गोली का निशाना साधने में लगे थे, फिसल गये और एकदम नीचे गिर गये। अब शेर में और उनमें करीब पचीस गज़ का फ़ासला था। शिकारी धड़ाम से नीचे कूद पड़ा। धाँय की आवाज़ हुई। वीरेश्वर बाबू ने ताक कर गोली चलाई मगर चूक गई। दूसरे पुट्ठे पर लगी और उछल गई। शेर उस वेग को नहीं सह सका। क्षण भर के लिए उसकी पिछली टाँगें झुक गईं। छोटे सरकार बदूक लेकर खड़े हो गये थे, उसी समय लीला ज़ोर से चिल्लाकर बेहोश हो गई। दूसरे साहब ने उसे एक हाथ से थाम लिया। वीरेश्वर ने गोली चलाई, पर मचान हिल रही थी। वह निशाना नहीं लगा सका। शेर ने झपटकर छोटे सरकार पर प्रहार किया। उस समय बीबीजी ने उसपर पिस्तौल चलाई। और शिकारियों ने अपनी-अपनी राइफ़लें दाग दीं। शेर मर गया।

पंडित ने कहा—शेर तो पहले ही मर गया था।

मगनराम ने कहा—दादा! लवंग बीबी का दिल पत्थर का है।

पंडित ने कहा—वह उसका सुहाग था।

पंडितजी के होंठ काँप रहे थे। जैसे आज तक जो विवशता नहीं आई थी उसने आज शेर का आकार ग्रहण करके उनपर प्रहार किया था। अब क्या होगा? वह स्वयं कुछ भी निश्चित नहीं कर सके। वे दाह-संस्कार का प्रबंध करने लगे। गाँव भर बाहर इकट्ठा हो गया था। सबके मुख पर शोक दिखाई दे रहा था। बड़े-बूढ़े राजेन की प्रशंसा के पुल बाँध रहे थे। कई गाँव की लड़कियों की आँखों में इस सुहाग के टूटने पर आँसू भर आये। राजेन सुंदर था। आकर्षण में लवंग भी कम नहीं थी।

भीतर ज़मींदार साहब अभी तक अचेतन पड़े थे। गाँव का डाक्टर सर्दी में भी पसीने से तर था। पंडितजी ने दो मोटरें, एक के बाद एक, शहर की ओर डाक्टरों के लिए दौड़ा दी थीं। अब एक-आध घंटे में वे लोग भी आ ही जायेंगे।

किंतु फिर क्या होगा? क्या ज़मींदार की यह मूर्छा उनकी चेतनावस्था से कहीं अधिक ठीक नहीं है? बाहर संबंधियों की भीड़ हो गई थी।

लीला ज़मींदार साहब के पास सुंदर के साथ सेवा कर रही थी। वीरेश्वर, कामेश्वर, समर और दोनों अंगरेज़ शव के पास सिर झुकाये बैठे थे। भगवती अब भी आँखों में आँसू भरकर उन्हें टकटकी लगाकर देख रहा था। उस नीरवता में एकमात्र लवग का रुदन कभी-कभी फूट उठता था। वह आर्त्त-सी दिखाई दे रही थी। इस समय भी उसे इंदिरा अपनी छाती से चिपकाये सांत्वना दे रही थी। लवग कभी रोष से विंटर्टन की ओर देखती जैसे कच्चा चबा जायेगी, कभी रोने लगती किंतु कमरे की हवा इतनी भारी हो गई थी कि सबका दम घुट रहा था। विंटर्टन एक सिगरेट और दो पेग ह्विस्की के चढ़ाकर अपने आपको दुरुस्त करना चाहता था। दुःख के समय वे लोग ऐसा ही किया करते हैं, वर्ना मनुष्य के भावुक हो जाने का भय बना रहता है और भावुक मनुष्य अपना काम नहीं कर पाता।

कामेश्वर अब भी चुप हो बैठा था। उसने एक बार भी कुछ नहीं कहा।

एकाएक ज़मींदार साहब ने आँखें खोल दीं और कुछ बड़बड़ा उठे। उनके होठों से अस्फुट शब्द निकले—राजेन! राजेन!

फिर बंद कर लीं आँखें। सुंदर ने पानी पिलाया। ज़मींदार साहब तनिक चैतन्य हुए। उन्होंने कहा—'सुंदर! मुझे उठा दो।'

सुंदर ने उन्हें पीछे से सहारा देकर बिठा दिया। ज़मींदार साहब ने व्याकुल कंठ से पुकारा—राजेन! राजेन! कहाँ चले गये तुम राजेन! बेटा···!

उनकी आवाज़ शून्य में लय हो गई। आज राजेन कहाँ है जो उन्हें उत्तर दे? अब नहीं है वह यौवन की मादक उच्छृंखलता जो धमनियों में कुलकुल करती पुकार उठती थी। वह दीपक बुझ गया है जो इतने बड़े अंधकार में एकमात्र आशा का प्रकाश था। अब चारों ओर वही सूनापन, हृदय को खा जानेवाला सूनापन छा रहा है।

एकाएक उनकी दृष्टि सामने खड़े भगवती पर पड़ी। ममता के आवेश में वे चिल्ला उठे—बेटा! भगवती बेटा! वह तो सचमुच बड़ा निर्मोही था। मौका न देकर चला गया। हाय परमात्मा, मेरे पापों का तूने उससे बदला क्यों लिया। उसने तेरा

क्या बिगाड़ा था। आह ! मेरा दिल डूबा जा रहा है। भगवती ! भगवती !! कहाँ हो बेटा ? इधर आओ, अपने बूढ़े बाप को सहारा दो। आज उसके जीवन की नाव पतवार टूट जाने से डाँवाडोल हो गई है।

भगवती चौंक उठा। सब ही चौंक उठे। ज़मींदार साहब क्या कह रहे थे ? सुंदर का सिर झुक गया था। वह नीचे ज़मीन की ओर देख रही थी।

ज़मींदार साहब ने कहा—बेटा मैंने तुमपर बहुत अत्याचार किया है। तभी परमात्मा ने मुझे बुढ़ापे में लँगड़ा कर दिया है। मैंने तुझे छोड़कर सब कुछ राजेन पर सौंप दिया था। लेकिन परमात्मा के दरबार में अन्याय नहीं चल सकता। बड़ा फिर भी बड़ा ही है।

तो क्या भगवती इसी रक्त के बंधन के कारण रोया था ? क्या इसी लिए इतनी घृणा करके भी उसके हृदय में एकदम करुणा भर गई थी ? यह वह क्या सुन रहा है ? माँ ! मा शांत बैठी है ! उसे कोई विरोध नहीं ? तो क्या यह सत्य है ? क्या यह सौम्य दिखाई देनेवाली ममतामयी मा भीतर ही भीतर इतनी कुटिल है ! क्या वह स्वय एक अनाचार का परिणाम है। व्यभिचार की उत्पत्ति है ? समाज की दृष्टि में वह गैरकानूनी है, एक रखेल का लड़का है। क्या इसी स्त्री ने अपने दरिद्र और सीधे-साधे पति को इतने दिन तक छला था...

ज़मींदार साहब ने फिर कहा—मान न कर हठीले ! तेरे छोटे भाई की लाश आज तेरे क़दमों में पड़ी है। तेरे बाप का दिल आज बिल्कुल टूट गया है, क्योंकि धन, वैभव, धर्म, अधिकार और अभिमान सब, सब लड़खड़ा गये हैं। आज तो अपना यह मान छोड़ दे बेटा···

भगवती सोच रहा था ..वह एक रखेल का लड़का है, अभी तक वह दरिद्र था, किंतु आज वह जन्म के पहले से ही पापी है ? नहीं, नहीं, किंतु मा ! मा चुप बैठी है ? साँपिन ? और···और वह दुराचार की संतान है···

भगवती ने देखा और उसका चेहरा स्याह पड़ गया। उसने तड़पकर कहा—यह झूठ है, यह मुझे बदनाम करने की नई रीत है। मा ! उसने सुंदर की ओर हाथ करके कहा—तुमने मुझे दरिद्र पैदा किया था। रूखी-सूखी खिलाई, मैंने कभी उफ़ नहीं की, मैंने कभी तुम्हारी तपस्या के सामने अपनी निर्बलता का प्रदर्शन नहीं

किया, किंतु यह मैं क्या सुन रहा हूँ ? क्या यह सच है मा ? नहीं मा ! मुझसे नहीं इन सबसे खोलकर कह दो कि तुम्हें धन ने कभी पराजित नहीं किया। तुम कभी इनके छल में नहीं फँसीं ? तुमने कभी दरिद्र, मेहनती और अपने पर विश्वास करने-वाले पति को धोखा नहीं दिया। कहो कि मेरी इन धमनियों में इस वैभव के अहंकार के विष से गंदला रक्त नहीं है, मैं उसी का पुत्र हूँ जिसने अपने रक्त का पानी बाहर बहा-बहाकर अपने आपको श्रम के द्वारा पवित्र कर दिया था।

किंतु सुंदर का सिर और भी झुक गया। स्नेह से ज़मींदार साहब ने दोनों हाथ खोलकर पुकारा—बेटा...!

किंतु भगवती चिल्ला उठा—मा ! मन करता है कि तुम्हारा गला घोंटकर आत्महत्या कर लूँ। पवित्र है राजेन जो अपनी आँखों से यह घोर पाप न देख सका। क्यों नहीं तुमने पैदा होते ही मेरा गला घोंट दिया। और आज यह मुझे सब कुछ देना चाहते हैं ? घृणा करता हूँ इस सबसे, नहीं चाहिए मुझे यह सब, मैं अंतःकरण से इस सबसे घृणा करता हूँ। मा ! तुमने मेरे जीवन के ऊपर अंतिम प्रहार किया है। तुम जो मुझे अब तक ममता की मृगतृष्णा दिखाती रहीं, तुमने मुझे रेगिस्तान में प्यासा तड़प-तड़पकर मर जाने के लिए त्याग दिया है। तुम, जिनसे मुझे मृत्यु की भयानकता में भी अमृत की आशा थी, तुमने मेरा इन सबकी अपेक्षा सबसे अधिक अपमान किया है। यह लोग हसते थे कि मैं दरिद्र था, लेकिन तुमने मुझे कहीं का नहीं रखा, आज ससार में भगवती कहीं भी मुँह दिखाने के काबिल नहीं रहा।

सुंदर ने कुछ नहीं कहा। ज़मींदार साहब ने कहा—बेटा .....यह सब तुम्हारा है . ...

और लवग के मुँह से निकल गया—पिताजी···!!!

शब्द हथौड़ों की चोट की तरह टकराकर अट्टहास कर उठा। भगवती ने सुना और वह तीर की तरह उस कमरे से बाहर निकल गया। गाँव की औरतें रोने के लिए आ गई थीं। पंडित उन्हें भीतर ला रहा था।

और उसके बाद उस जगह ऐसा भयानक रुदन उठ खड़ा हुआ कि सबकी आँखें छलछला आईं। ज़मींदार साहब अर्द्धचेतन-से अब भी सुंदर का सहारा लिये पड़े

थे, और लीला ने निष्प्रभ मुख से देखा सुंदर ऐसे बैठी थी जैसे वह भूमि में जड़ी हुई थी। सूखे-सूखे मुँह से वीरेश्वर, समर और कामेश्वर चुपचाप खड़े थे। लवंग के बोल पड़ने से लीला का हृदय विक्षत हो गया। क्या यह स्त्री सचमुच इतनी नीच है? किंतु अन्यथा भी वह क्या करती?

इंदिरा अब भी लवंग को सांत्वना दे रही थी। और लीला ने देखा पंडित की आँखों से चिनगारियाँ निकल रही थीं।

'हाय यह क्या हुआ? परमात्मा! तुझे दया नहीं आई। हाय मेरा फूल-सा कुँवर! मत उठाओ निर्दयी, उसे बाँस पर न रखो, फूल सी देह को कष्ट होगा...'

और पंडित की फिर भी एक तत्परता कि यह भी करना है, हृदय वज्र हो जा, आज फट जायेगा तो सब बह निकलेगा···

और उस कोलाहल में लीला ने देखा—भगवती चला गया था...वह रो उठी।

५

पाँचवाँ दस्ता

[३०]

डंकर्क

पेड़ों की सघन छाया में वे दोनों बातें करते-करते बैठ गये। ऊपर एक छोटी तारिका निकल आई थी। पेड़ों के उस पार धुँधलके में अभी कैंप के सफ़ेद-सफ़ेद डेरे दिखाई दे रहे थे। साँझ की बेला में धीरे-धीरे कहीं-कहीं से धुआँ उठ रहा था और कोई-कोई गीत आकाश में पंख फैलाकर उड़ रहा था, जैसे बजारों की कोमल मर्मर हो अथवा सागर की लहरों का संकुल स्वर थिरक रहा हो।

कालेज के ईसाइयों का यह एक बड़ा कैंप लगता था। इस काम के लिए यह पार्वत्य स्थान ही चुना गया था।

रानी ने अपने क्रम को जारी रखते हुए कहा — विनोद ! कैंप धर्म के नाम पर लगा है। बड़े-बड़े गोरे पादरी आये हैं, नित्य दुःखी मनुष्यों के लिए प्रार्थना माँगी जाती है, किंतु वास्तव में लड़के और लड़कियाँ क्या करते हैं ? मैं तो देखती हूँ कि उन्हें यह सुंदर स्थान, यह जंगल अपनी वासनाओं को तृप्त करने को ही मिले हैं। जहाँ वे, आजीवन जिसने नारी को छुआ भी नहीं उस ईसा की प्रार्थना करते हैं, वहीं वे अंगरेज़ी सभ्यता की पोली ढोल बजाने में लगे रहते हैं।

विनोद ने सिर हिलाकर स्वीकार किया। रानी कहती गई— क्या यौन वासनाएँ अंत की पहली उत्तेजना हैं ? क्या इसी तृप्ति में समस्त प्रेम भरा पड़ा है ? किंतु यह लोग करते ही क्या हैं ?

विनोद उलझन में पड़ गया। वह समझ नहीं सका कि रानी ने इस एकांत में उससे एक ऐसी बात क्यों छेड़ दी जिसपर कोई भी स्त्री अकेले तो क्या सबके बीच में भी बात नहीं करती। पुरुष की वही प्राचीन मूर्खता ऐसे समयों पर काम आने लगती है। सहज ही उसने अपनी सिद्धि के उपकरणों को दैवी समझ लिया। उसे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे वह अत्यंत संकोची था। तभी रानी उसे कचोट रही थी।

चारों ओर अनंत सौंदर्य है, मनुष्य का हृदय यदि यहाँ भी प्यार नहीं कर सका तो फिर उसमें अनुभूति की चेतना व्यर्थ है ।

रानी ने प्रश्नसूचक दृष्टि से विनोद की ओर देखा । विनोद ने कहा—रानी ! मनुष्य जब प्रकृति की गोद में आता है तब उसके बंधन, उसका कलुष स्वयं पीछे छूट जाता है ।

रानी हँसी । उसने कहा—तो यह सब अब प्रकृति के पुजारी हो गये हैं ? मैंने तो ऐसे-ऐसे लोगों को न जाने क्या-क्या करते देखा है, सच बड़ी घृणा होती है ।

विनोद हँस दिया । उसने तरल आँखों से उसे घूरते हुए कहा—तुम तो पागल हो । संसार में अनेक पुरुष हैं, अनेक स्त्रियाँ हैं । कहाँ तक तुम उन सबको ठीक और ग़लत सिखा सकोगी । वे सब अपने को सुखी बनाने का प्रयत्न करते हैं ।

'सुखी ?' विद्रूप से रानी के अधर फड़क उठे । उसने कहा—तो क्या यही सुख है ?

'सुख तो यही है रानी, आनंद वास्तव में कुछ और है ।'

रानी ने दृढ़ता से कहा—किंतु हम ग़ुलाम हैं...

'वह तो ठीक है', विनोद ने बात काटकर कहा—किंतु वह तो अंतिम उत्तर नहीं । चाहे मनुष्य स्वतंत्र हो चाहे ग़ुलाम, जहाँ उसकी शारीरिक वासनाओं का प्रश्न है वहाँ वह समान है । अगर शासक प्यास लगने पर पानी नहीं पिये तो वही हाल उसका होगा जो प्यासे शासित का । शरीर तो दोनों का एक है । यदि दैहिक कार्य रोक दिये जायें तो ग़ुलाम क्षण भर भी जीवित नहीं रह सकता !

रानी निरुत्तर हो गई । विनोद ने बिल्कुल ठीक कहा था । यदि ग़ुलाम को भूख लगनेवाली चेतना है तो मनुष्य शरीर में होनेवाली समस्त चेतना का वह उत्तराधिकारी है, यदि यह न होता, वह फिर...फिर वह किस एकता और साम्य के बल पर अपने को स्वतंत्र करना चाहता !

ग़ुलामी और आज़ादी के लिए सबसे पहले एक शरीर की आवश्यकता है, मनुष्य की देह की, जिसके बिना, न कला है, न विज्ञान । उस शरीर का प्राकृतिक नियम है वासना का वेग, और फिर वह भी एक भूख है जिसे पूर्ण करना, मिटा देना, मनुष्य का सहज स्वभाव है ।

रानी ने पराजित होकर स्नेह से उसकी ओर देखा । विनोद मुस्कराया । देर

तक वे चुप बैठे रहे, चोरी-चोरी एक दूसरे को देखते रहे, और फिर दोनों ही ऐसे परिचित-से हो गये जैसे दोनों में कोई भेद न था। विनोद का हृदय भीतर ही भीतर बज उठा। हवा का ठंडा झोंका प्राणों में एक स्पंदन-सा भर गया। उसने कहा—रानी!

रानी ने कुछ नहीं कहा। केवल उसकी ओर देखा और बड़े-बड़े नयनों में एक तरल-सी मुस्कराहट छा गई। क्षण भर जैसे वह सचमुच व्याकुल हो उठी थी।

विनोद ने रानी का हाथ पकड़कर उसे धीरे-से दबा दिया। रानी के मांसल कपोलों पर एक लाल रेखा कुटिल गति से सरककर कानों के पीछे जाकर खो गई। वह कुछ उन्मन थी। विनोद इसे देखकर भी देख नहीं पाया, क्योंकि उसने उसे न देखने में ही श्रेय समझा।

रानी निर्विवाद नीरवता से खड़ी रही। फिर उसने उसकी ओर देखा। विनोद हार चुका था। एक बार रानी के मन में आया—कैसा अपमान? कैसा प्रतिशोध? क्यों यह सौंदर्य, यह प्रकृति का अरूप उच्छृंखल कोष केवल अपनी प्रतिहिंसा में खो देना होगा?

अचानक ही नारी का हाथ पुरुष के हाथ को दबा उठा—एक मांसल दबाव जिससे रोम-रोम जल उठे।

हठात् रानी चैतन्य हो गई।

विनोद को आतुर होते देखकर रानी ठठाकर हँस पड़ी। विनोद भय से दो पग पीछे हट गया। वह रानी के इस अनुचित व्यवहार को तनिक भी नहीं समझ सका। क्षण भर ठिठका सा खड़ा रहा और उसकी आँखों के नीचे एक काली छाया-सी घूम गई। वह चुपचाप खड़ा रहा। फिर रानी ने उसे स्नेह से देखा। छाया धुल गई। पेड़ों की गंध से दूर-दूर तक कानन काँप रहा था। भारालस समीर आग बन गया, झीना हो गया, उसमें दम घुटने लगा। लंबे-लंबे पेड़ों पर चिड़ियों का कलरव मदिर सुहाना, जैसे बस अनंत की क्षितिज पटी, पर यह आनंद का मनोहर उत्सव था। गूँजेगी हृदय की रागिनी कि जो मांसल उभार क्षण भर दबकर दूसरे अंतस्तल में ताप न भर दे, तो गोलाई की पूर्णता व्यर्थ व्यर्थ है, उसकी कोमलता की कठोरता बेकार है। नयन वह जो भूल जाये कि समाज है, कि संसार है, कि गलों में हाथ पड़े रहें। कि ताराएँ ताराओं में झाँकती रहें और फिर उस आलिंगन में भर जाये

प्यार, जैसे आकाश से ओस गिरती है और मृदुल दूर्वा पर मोती बनकर छा जाती है, जैसे अनंत गरिमा का प्रस्फुटित स्फटिक टूट गया हो, टुकड़े-टुकड़े करके बिखर गया हो और सूर्य के उज्ज्वल प्रकाश की अपरूप किरणें फिर आकाश की ओर उठ गई हों कि पकड़ लें, पकड़ लें और अंतराल में विस्फारित उन्माद राशि-राशि छा गया हो, फैल गया हो।

रानी भाग चली, विनोद उसके पीछे विसुध-सा दौड़ पड़ा। राह में निर्भरी कलकलनाद करती बह रही थी। रानी दौड़कर उसके किनारे उगी घास पर लेट गई और हँस उठी। एक बार विनोद भी ठठाकर हँस पड़ा जिसकी प्रतिध्वनि करता हुआ पहाड़ भी एक बार बोल उठा। वृक्षों में सलज्ज मर्मर काँप उठी, जैसे प्रियतम की बातें सुनकर प्रेमपगी सुकुमारी वधू प्राचीनकाल में अपने वस्त्रों में अपने आपको ढँकने के लिए आतुर हो जाती थी। आकाश की रंगीन आभा निर्भरी के स्वच्छ जल में बहती हुई वृक्षों की पत्तियों में चमक उठती थी। कितना महान था वह अनिर्वचनीय सौंदर्य का प्रसार! कितना नीरव था वह शांति का प्रवहमान तारतम्य कि यद्यपि वे उतना सब नहीं समझ पाये; फिर भी सब कुछ बहुत अच्छा लगा, क्योंकि उसमें इतना रूप था, कि हृदय का वेग उद्वेलित हो गया। यह नहीं अति-चिंत्य उपोद्घात का आनुशगिक उन्माद, कि न हो हृदय में व्याप्त दिशावधि मादकता का स्पर्श। भूल गये दोनों क्षण भर को सारा संसार—संसार जो घृणा का गीत है, गीत जिसमें वेदना का प्राधान्य है। रानी ने अपने जूते उतार दिये और ठंडे जल में पैर डालकर बैठ गई। हाथों से रोकने लगी उस धारा का प्रवाह जिसे पत्थर नहीं रोक पाये, जो उपलों पर भी मर्मर किये जाती है, कलकल की अविश्रांत ध्वनि से आकाश और पृथ्वी के बीच नाद का क्षीण तार जोड़ देती है, जिसपर उँगली चलाने की आवश्यकता नहीं, जो अपने आप मदिर-मदिर स्नायवित कंपन से गूँजा करता है, लहर, लहर...

विनोद घास पर लेट गया और उसने टकटकी बाँधकर रानी के मुँह को देखा! सुंदर नहीं है रानी! कौन कह सकता है?

वासना ने दिखाया—कितनी मांसल है, कितनी चिकनी है, और क्या चाहिए तुझे? उन्माद ने कहा—देखता नहीं यह यौवन है, इसका वेग महानदी है, क्षीण

निर्भरी की प्रतारणा में भूलनेवाले यह नहीं, यह कभी नहीं है। उच्छृंखलता ने कहा—पुरुष वह है जो नारी को अपने अंक में लेकर बेसुध कर दे।

रानी हँस रही थी। कितना खेल था उस किलकारी में, जैसे शैशव का अबोध लावण्य मुखरित यौवन की दोला पर आरूढ़ होकर झनझना उठा हो। हाथों के स्पर्श से लहरियों में मानों यौवन का रस बहा जा रहा था। वह कोमल हथेलियाँ, कितनी लालिमा है उनमें ? जैसे कोमल-कोमल किसलय का दल हो। घर और बाहर, कहाँ है ऐसा स्वर्ग ? यह साक्षात् हालीवुड की अभिनेत्री-सी जो आँचल की सुध-बुध भूले खेल रही है, क्या इसके.. इसके अधर उफान के लिए व्याकुल नहीं हो उठे हैं, क्या इसका यौवन अमृत बनना नहीं चाहता ?

विनोद ने रानी का हाथ पकड़कर कहा- रानी ! वह देखो ! सुदूर वह सब कितना अच्छा लगता है। क्या ऐसी ही शांति हमें कभी कैंप में भी मिली है ? वहाँ असाम्य है, घृणा है, विद्वेष है ; यह साम्य, यह स्वर्ग, यह आनंद, वहाँ कहाँ ? असभव ! ओह ! कितना उन्माद ! कितना सौंदर्य ! और क्या चाहिए मुझे रानी ! आज मेरे जीवन का सबसे बड़ा वरदान मेरे साथ है। आज मैं कुछ नहीं चाहता। सब कुछ है, किंतु मेरे लिए सबसे बड़ा सौंदर्य तुम हो, तुम मेरे लिए सबसे बड़ा आकर्षण हो।

रानी ने हँसना बंद कर दिया। आँखें तरेरकर विनोद की ओर देखा, जैसे उसे विश्वास नहीं था, वह रंग में भंग देखना नहीं चाहती थी।

विनोद समझा नहीं। उसने अकचकाकर कहा—सच कहता हूँ रानी ! तुम्हें विश्वास नहीं होता ? लेकिन तुम्हें यह नहीं भूलना चाहिए कि मैं विनोद हूँ, मक्सुअल नहीं।

'विनोद !' रानी ने गंभीरता से अधिकार के स्वर में कहा। चारों ओर जैसे विष ही विष बरस रहा था। यदि मनुष्य का अपना हृदय कलुष से भरा है, तो ससार में रूप एक मिथ्या है, प्रकाश एक धोखा ! जो आँखें आनंद देखती हैं वह अंतस्मुख है, बहिरागत नहीं।

विनोद अवाक् देखता रहा। यह पल में क्या से क्या हो गया ! वह स्थिर दृष्टि से अवरुद्ध-सा रानी की ओर देखता रहा।

'विवाह करोगे ?' रानी ने व्यंग्य से पूछा।

विनोद ने कुछ उत्तर नहीं दिया। उसका मन खट्टा हो गया।

रानी हँसी। उस हँसी में घृणा का विष था, जैसे उसकी आत्मा की परितृप्ति संसार का सबसे बड़ा अपमान था। विनोद विक्षुब्ध-सा देखता रहा। वह रानी के इस भयानक परिवर्तन को देखकर इतना अधिक अनुभव कर सका कि क्षण भर को ढूँढ़ने पर भी उसे कोई शब्द नहीं मिले। रानी ने हँसते हुए ही कहा--'ईसाई!' और वह पागलों की तरह हँस उठी। विनोद किंकर्तव्यविमूढ़-सा देखता रहा। उसकी समझ से टकराकर सब कुछ लौट गया। उसने चारों दिशाओं से वही घृणा का हास्य टकराकर लौटता हुआ सुना जिसपर उसका अपमान द्रिम-द्रिम करके थिरक रहा था...

---

[३१]

अप्सरा—न मा, न बेटी

कमरे में अँधेरा छाने लगा। नादानी ने उठकर स्विच दबा दिया। कमरा प्रकाश से जगमगा उठा। कामेश्वर ने सिगरेट को मुँह से लगाकर जला लिया और नादानी की तरफ़ बढ़ाकर कहा—'पियो।' वह चुपचाप पीने लगी। कामेश्वर को एक डर-सा लगने लगा। रुपये तो उसने दे दिये थे? और यहाँ न मनुष्य देख सकता है, न ईश्वर। रुपये की इस चहारदीवारी के भीतर भय?

कामेश्वर ने देखा। नादानी! फूल। सिर्फ़ फूल, जो रुपये का गुँजन सुनकर झूम उठती है, जो धन की किरन पाकर खिल जाती है और इन दोनों के न होने पर कठोर होकर बंद हो जाती है। यह न दाँत से कटती है, न पैरों से कुचली जाती है, क्योंकि पत्थर जिस दिन रुँद-रुँदकर धूल बन गया फिर उसपर पैर रखने में आदमी घबराने लगा।

ज़मीन पर फ़र्श वैसे ही बिछा हुआ था। कामेश्वर के दिमाग़ में विचार आया—विवाहित के पास अपनी चोरी छिपाने को एक पति होता है, वेश्या के पास रुपया। नादानी एक गंभीर व्यथा से भरकर उसे देख रही थी, लेकिन आज कामेश्वर कठोर था। वह अपना जाल फेंकने को उठी। एक पग, दो पग, छूम छननन छननन......

कामेश्वर को याद आया, एक दिन इसी तरह इंदिरा इसी अदा से कालेज में कला के लिए नाची थी। उस दिन भी नाच पर टिकट लगा था और लड़कों के दिलों पर छुरी चल गई थी, लेकिन उसकी बहिन तो कुमारी है। पवित्र!

नादानी देख रही थी, कितना सुंदर, कितना अच्छा, लेकिन अपना जीवन बरबाद कर रहा है। संसर्गमात्र से पतित समझने के लिए उस विश्वास की आवश्यकता है जो भीतर ही भीतर घुन बनकर समा जाये। कुचला हुआ फूल अपने को देवता के चरणों पर चढ़ने योग्य नहीं समझता।

थोड़ी देर तक नादानी नाचती रही। उसकी सिगरेट ऐशट्रे में रखी-रखी एक गंदी बदबू फ़ैला कर जलकर खतम हो गई। राख की ढेरी पड़ी रह गई। किंतु कामेश्वर का पुरुष आज नहीं जागा। उसने पास आकर कामेश्वर के कंधे पर हाथ रखकर उसे शकित नयनों से देखा। कामेश्वर के बदन में एक बिजली-सी दौड़ गई जैसे कीड़ों ने, गंदे कीड़ों ने उसे छू दिया। दोनों ने एक दूसरे को देखा। नादानी के मुँह पर युगांतर से पुरुष को हरानेवाला नारीत्व शकित था कि यह क्या है ? और कामेश्वर के मुँह पर असुध तन्मयता थी कि यह क्यों है ?

'नादानी !' कामेश्वर कहने लगा 'मैंने तुम्हें लूटा है, मगर मैं नहीं जानता तुम क्या हो ?'

'मैं !' उसने हँसकर कहा—वेश्या हूँ।

'तो क्या तुम स्त्री नहीं हो ?' कामेश्वर का स्वर गले में खिंच आया।

'नहीं' नादानी ने कहा - मेरे स्त्रीत्व का मतलब इतना सरल नहीं जितना घरेलू औरतों का।

'यानी !' कामेश्वर ने चौंककर पूछा।

नादानी चुप हो रही। फिर रुककर कहा—संसार की सब स्त्रियों को एक ही-सा मानते हो ?

कामेश्वर ने स्वीकृति में सिर हिलाया।

'अपनी बहिन को भी ?'

'चुप रहो !' कामेश्वर गरज उठा।

'मैं चुप रहूँ ?' वह हँस पड़ी। 'मैं तो सदा चुप ही रही हूँ। बताओ न ? तुम्हारी बहिन सुंदर है ? सज्जाद कहता था, वह बड़ा अच्छा नाचती है ?

'वह तो संगीतसम्मेलनों में।' कामेश्वर मन ही मन सज्जाद पर क्रुद्ध हुआ। नादानी कहती गई,—'सज्जाद कहता था बड़ी सुन्दर है। तुम कहोगे ये गंदी बातें हैं, मगर इस गंदगी में तुम पैदा हुए, तुम्हारी बहिन पैदा हुई। क्या तुम्हारी बहिन का कोई प्रेमी भी है ?'

कामेश्वर क्रोध से उठ खड़ा हुआ। वह उसे तीखी दृष्टि से देखता रहा।

नादानी ने कहा—सच कहो बाबू ! तुम मेरी बात से नाराज़ हुए हो ? लेकिन मैं तो वेश्या हूँ।

उसे न कोई दुःख था, न सुख ; न संकोच की पीड़ा, न अवसाद की तड़प। वह खड़ी थी कि बस वह खड़ी थी। सुंदर थी, मगर जैसे पत्थर की मूर्ति।

कामेश्वर के कंधों पर हाथ रखकर नादानी ने कहा—कामेश्वर! मैं एक रिक्शा-वाले की तरह हूँ। पैसे के लिए दौड़ लगाते-लगाते थक गई हूँ। अब मेरे फेफड़ों में दर्द होने लगा है। अब मैं सदा के लिए चली जाऊँगी।

कामेश्वर चुप नहीं रहा। उसने पूछा—कहाँ जाओगी नादानी?

ओह! अपने रुपयों को याद दिला रहे हो? नहीं, सो तो पाई पाई करके चुका-कर ही जाऊँगी। लेकिन मैं उस सज्जाद को नहीं सह सकती। वह एकदम घृणित है। नहीं नहीं, तुम्हारी पहली मुलाकात के बाद ही मेरे भीतर············

कामेश्वर समझा नहीं। वह मुस्कराया। वेश्या भी एक पति का ढोंग करती है। उसने व्यंग्य से कहा—क्यों? उसके रुपये पर क्या बादशाह की मुहर नहीं होती?

'दुनिया की हर औरत हरेक आदमी को नहीं चाहती बाबूजी', उसने नम्र होकर कहा। एकाएक वह ज़ोर से बोल उठी—बरसात में गंदी नालियों में बहते पानी को एक गड्ढे में जमा करना ज़रूरी हो जाता है, वैसे ही तुमने मुझे बना रखा है, तुमने मच्छरों की भन-भन सुनकर क़दम दूर ही दूर रखा। कामेश्वर तुम आजकल के पढ़े लिखे आदमी हो, तुम ··तुम भी मुझे नहीं उबार सकते? बोलो? जो तुम दोगे वही·खाऊँगी, जो दोगे वही पहनूँगी, मगर यह नरक मुझे जीवित में ही मुर्दा किये हुए है, मुझे इससे बाहर ले चलो?

वह क्षण भर चुप रही। कामेश्वर निश्चल-सा बैठ गया। उसका कोई अंग हिल नहीं सका। नादानी फिर कहने लगी—जवाब नहीं दिया? मैं जानती हूँ कि जिस जगह रंडी और भिखारी होते हैं वहाँ आदमी कमीना और कायर होता है। मैं विवाह नहीं चाहती। तुम मुझे रख लो।

कामेश्वर सिहर उठा। उसको देखकर नादानी हँस दी।

'रख लो इसलिए कहा कि मुझमें और विवाहित स्त्री में अधिक फ़र्क नहीं है। बताओ कामेश्वर! एक बार की चोरी उसे सदा के लिए जेल में रख देती है, मुझे बार-बार नई चोरी करनी पड़ती है। अगर तुम्हारी बहिन को डाकू पकड़कर बेइज़्ज़त करें, तो तुम क्या बहिन को कुसूरवार साबित करोगे? लेकिन तुम मुझसे नफ़रत कर सकते हो ; क्योंकि तुम्हें मज़ा जो आता है बाबू!'

वह ठठाकर हँस पड़ी। उसकी हँसी से कामेश्वर झुलसने लगा। जाने क्यों उसमें प्रतिवाद करने की शक्ति बिल्कुल नहीं बची थी।

'तुम अबोध हो कामेश्वर, मुझे तुम पर कोई गुस्सा नहीं है', नादानी ने मा की तरह कहा—तुम नदी में नहाते हो, मगर तुम तो गंदे नहीं होते, उल्टे बहनेवाली नदी गंदी हो जाती है? क्या न्याय है तुम्हारा? और पाप को दूसरों को मँढ़ने के लिए शहर भर के गंदे नालों को नदी में लाकर छोड़ने का प्रयत्न करते हो?

मगर कामेश्वर ने कुछ नहीं कहा। दोनों चुप हो रहे। आँधी आई थी। तूफ़ान उठा था। तब नदी फुंकार उठी थी और पेड़ गरज कर उखड़ गया था, मानों आने दो, जो नीचे आयेगा, दबकर मर जायेगा। और पेड़ गिर गया, पानी में झकोरे खाने लगा। फिर आँधी रुक गई, मृदुल कोमल लहरियाँ बेजान पेड़ को धीरे-धीरे सहलाने लगीं। दोनों को एक दूसरे का ज्ञान न रहा। दोनों बैठे रहे। दोनों बहुत देर तक चुपचाप बिना बोले बैठे रहे। घड़ी ने धीरे-धीरे मौत के डके की तरह ग्यारह बजा दिये। बाहर घना कोहरा गिर रहा था। दुःख-सुख की भावना की लघुता से परे वे दोनों बेमतलब-से उस घुटन में बैठे रहे। कामेश्वर ने धीरे से समंदर में डूबते-डूबते साँस लेने को सिर उठाया। नादानी की आँखों में आँसू डबडबा रहे थे।

'नादानी!' कामेश्वर चीख उठा।

'मुझे माफ़ करो कामेश्वर! कहना नहीं चाहती थी, मगर कह गई, क्योंकि मेरा तुम्हारा संबंध अब एक कारण से बहुत गहरा हो गया है। तुमने बुरा तो नहीं माना?'

'नहीं नादानी! बाढ़ कब तक रुकेगी? तुम देवी हो!'

'मैं? नहीं, नहीं', वह रोने लगी—'काश मैं भी कुछ होती···मैं कुछ नहीं हूँ। मैं···मैं सिर्फ एक घिनौना कीड़ा हूँ।'

'शश···' कामेश्वर की आत्मा विद्रोह कर उठी। 'तुम कीड़ा नहीं हो नादानी, तुम वह हो जो मैं सोच भी नहीं सकता था!'

वह उसके हाथ को सहलाने लगा। 'तुम्हें दुनिया ज़हर कहती है, मगर तुम अमृत हो। सब कहते हैं, क्या करें? दुनिया ही बुरी है। मगर उनका जीवन इतना

गंदा है कि वह उसे सह सकने को पुण्य का सुपना देखा करते हैं। आदमी पैदा होता है तब साम्य और एकरूपता लेकर, किंतु उसके माध्यम ने, उसकी बर्बरता और घमंडी सभ्यता ने उसे अधूरे द्वंद्वों में बांध दिया है।'

'तुम औरत को नहीं जानते' नादानी कहने लगी, उसकी आवाज़ दृढ़ थी— नारी की गहराई को जतानेवाली उसकी उठान होती है। जिस जवानी की औरत को शर्म होती है उसे ही वह दो बच्चे पैदा करके सबके सामने खोल देती है, नहीं तो अधेड़ होकर भी इसके लिए तैयार नहीं होती। जैसे-जैसे नारी के यौवन की गांठ कठोर होने लगती है, उसे कठोर नर के प्रति एक आकर्षण-सा हो जाता है, किंतु मा होने के बाद उसी औरत को, अधेड़ होने पर, अपने ही पुत्र के यौवन पर अविश्वास हो उठता है। नारी को बीते यौवन के प्रति एक करुणामयी भूल की अनुभूति होती है और नई लड़कियों पर संदेह, उनके यौवन से घृणा। उसे अपने बेटे से स्नेह होता है, पति के लिए एक गई-गुजरी कहानी का अल्हड़ स्पंदन, लेकिन पति के मर जाने के बाद उसे लगता है कि विवाह एक बांध था, पुरुष मायावी। और तब भी वह चाहती है कि बुराई के खजाने उसके बेटे को एक औरत मिले जो पुरुष के ही नहीं अपने यौवन से भी हारी हुई हो।

'तुम मेरी श्रद्धा चाहती हो नादानी?' कामेश्वर कह उठा,—किंतु बदले में कुछ दोगी नहीं? उलाहना यह कि तुम सब कुछ त्याग दोगी! तुम नदी के हरे-भरे एक किनारे से उठी लहर हो। दूसरे किनारे से टकराकर उसे उपजाऊ बनाती हो। नदी तुम्हारी है, किनारे तुम्हारे हैं। तुम्हारी ही मदद से प्यास बुझती है। तुम्हें एक बालक मिल जाये तो पति भी दूर हो जायेगा। तुम पुरुष को अपना खिलौना समझती हो?'

'नहीं, नहीं,' नादानी चीख उठी—'तुम स्त्री को दासी बनाना चाहते हो! हमारी चीख में तुम्हारा समाधान है, हमारी हँसती सिसक में तुम्हारी विजय। हम अपराध सहती हैं, स्वयं रो लेती हैं, इसलिए कि पाप से घृणा करती हुई भी आगे आती हैं अपराध स्वीकार करा देने किंतु होती हैं हम ही अधिक अपराधिनी। पुरुष की भूल की भांति नारी की भूल क्षणिक नहीं होती।'

कामेश्वर ने सिर हिलाकर कहा—मैं नहीं मानता।

'तब तुम समाज में गुलामों की सत्ता का न्याय देते हो। नारी संतान को प्यार

करती है, इसलिए कि उसके यौवन की क्षमता भूल नहीं पाती। नर और नारी का जो अव्यक्त और अनबूझ भाग है वही शिशु है। युगांतर से यौवन सदा निर्व्याज है। हम दोनों एक दूसरे को धोखा देने का प्रयत्न करते हैं। दोनों एक दूसरे को धोखा दे रहे हैं और अंत में दोनों दो आवारों की तरह लड़-लड़कर फिर एक दूसरे से मिल जाते हैं।

दोनों ठठाकर हँस पड़े। अब वह फिर पास-पास थे। नादानी के पास कामेश्वर, कामेश्वर के पास नादानी।

'सचमुच तुम्हें कोई बांध नहीं सकता, तुम स्वतंत्र हो, तुम मा हो · '

नादानी ने काटकर कहा—मा होने का गर्व किसलिए कामेश्वर? मैं जानती हूँ, मा क्या होती है, किंतु मुझे गर्व नहीं है। तुम कामेश्वर! तुम पिता का हृदय नहीं जानते?

कामेश्वर सोते से जाग पड़ा। वह बोला—तुम जानती हो मा का हृदय?

वह मुस्करा उठी। धीरे से वह मधुर, सुगंधित नारी बोली—मैं मा बननेवाली हूँ। तुम्हारा-सा बच्चा होगा।

कामेश्वर काँप उठा। उसका बच्चा एक वेश्या के गर्भ से? समाज उसे न जानेगा, कोई नहीं। और उस अच्छे वंश के बीज की भी ईश्वर रखवाली नहीं करेगा गुलाब जंगल में उगाना मना है, वह तो बागीचों की शोभा है। कामेश्वर इतना रुपया भी नहीं दे सकेगा कि बालक उससे पल सके। साथ वह उसे रख नहीं सकता। सिवाय खून के और कोई छींट असर नहीं करती। मगर वह पुरुष अब पिता हो जायेगा? उसे एक बच्चे का पिता होना पड़ेगा? उसके हृदय में एक गुदगुदी मच उठी। इस नारी ने मेरा बीज पकड़ लिया है और वह मुझसे घृणा होते हुए भी इतने सहज स्नेह से उसे सहेजे हुए है। वेश्या बच्चों का गर्भपात नहीं करातीं, कुलीन वर्गों की स्त्रियों का ही यह भूषण है।

उसे उस असहाय नारी के साहस पर गर्व हुआ, अपनी कमज़ोरी पर शर्म। यह नारी जो धर्म, ईश्वर, समाज, सबसे मानवता की आँखें खोलने को टक्कर लिये खड़ी है, वंश-परंपरा से अपनी बलि आदमी की घमंडी सभ्यता के सामने दे रही है...और कामेश्वर एक भूकंप के गिरते महल में फँस गया था। एक कमरे से दूसरे कमरे में जाते ही पीछे की छत गिर जाती थी।

उसकी रचना यदि लड़की हुई तो वह भी एक दिन अट्टे पर चढ़ेगी और यदि लड़का हुआ तो अवारागर्दों में पड़कर कीड़ा बन जायेगा। वह पिता होकर भी कभी उस बालक को दुलार न दे सकेगा। उसकी लड़की वेश्या बनेगी ? नहीं ..नहीं... नहीं...

उसने नादानी को देखा और जैसे जब पशुओं में मादा के गर्भ धारण करने पर नर में अपने आप एक सुहानुभूति और प्यार उपज आते हैं, वैसे ही संकोच का उसने नादानी के प्रति अनुभव किया।

इस मातृत्व में इसका हृदय सब बन्धनों से परे है। समाज इसके पैरों की धूल भी नहीं, ईश्वर इसकी छाया की झलक तक नहीं......

समाज इससे घृणा करता है, क्योंकि यह झूठ को झूठ के रूप में नहीं रख सकती।

कामेश्वर ने हठात् पूछा--नादानी! तुम्हें यह सब किसने सिखाया ? आज तक अनेक स्त्रियाँ मिली हैं, किन्तु वह सब सिर्फ मादा थीं, तुमने यह सब कहाँ से सीखा ?

नादानी ने भोली-भोली-सी आँखें उठाईं। फिर कहा—मैं एक विधवा हूँ जिसके चाचा ने धोखे से कुम्भ के मेले में छोड़ दिया था। मैं नवें दर्जे तक पढ़ी थी। उस भीड़ में ही मैं कुछ गुंडों के हाथ पड़ गई। प्रारंभ में मुझे अपने पहले के नीरस जीवन की तुलना में यह जीवन रस का स्पर्श लगने लगा। मैं उसी में बह गई। और तबसे मैं ऐसे ही जी रही हूँ। कहानी, उपन्यास पढ़ने का मुझे सदा से शौक रहा है। मैंने प्रेमचंद की सेवासदन भी पढ़ी है। एक बार मन किया, उनसे मिलकर वेश्याओं के भविष्य पर बातें करूँ, किंतु फिर नहीं गई। लेखक तो था, क्या जाने असलियत में मिलता भी या नहीं। मुमकिन है टाल देता। फिर वह हँसी और बोली— मैं जानती हूँ, वह गरीब था। बेचारा क्या करता!'

कामेश्वर ने देखा। वह एक बार मुस्कराई और फिर कह उठी —अब तो मैं सोच भी नहीं सकती कि मैं यह जीवन छोड़ सकती हूँ। क्या होगा छोड़कर ? सब ठीक है। रंडियों को शर्म कैसी ? अब तो एक ही अरमान है। तुम्हारी लड़की होने पर उसको पाल-पोस कर बड़ी करूँ और बुढ़ापे के लिए एक सहारा तैयार करूँ।

कामेश्वर ने फुत्कार किया--तुम उसे भी अपनी जैसी बना दोगी ?

'नहीं तो ?' आँखें फाड़कर नादानी ने कहा—अगर तुम ऐसा नहीं चाहते, तो पैदा होते ही तुम ले जाना, पाल लेना।

कामेश्वर फिर दुविधा में पड़ गया। नादानी हँसी। कहा--तो मैं क्या करूँ ? न इधर की बात, न उधर की। उठाकर सड़क पर फेंक दूँ ? फिर एकाएक बर्बरता से उसने कहा—रंडी किसी की रिश्तेदार नहीं होती। यह तुम्हारी लड़की नहीं होगी। वह सिर्फ मा को जान सकेगी। पंद्रह साल की तो बात है। आना फिर ! तुम्हारी लड़की भी जवान हो जायेगी। और वह कुरूपता से ठठाकर हँस पड़ी। कामेश्वर हताश-सा सिर झुकाकर सोचने लगा।

रात का एक बज रहा था। धुँधला चाँद खिड़की से बाहर कहीं दूर चमक रहा था, और घोंसले की दो चिड़ियों की तरह वे सिमटे से बैठे थे, जैसे समय बढ़ नहीं रहा था, नादानी वेश्या नहीं थी, कामेश्वर भोगी नहीं था, कहीं कुछ नहीं था, केवल अँधेरा शून्य था—निस्तब्ध शून्य, वह शून्य जिसमें सब काली गोरी समस्याओं का एकत्व होकर मुस्करा उठता है, जहाँ समाज के पाप और पुण्य, प्रकृति और पुरुष, आनन्द और सत्य को बाँध नहीं सकते, असमर्थ रह जाते हैं, जहाँ हर एक कर्मक होता है, जहाँ कोई किसी को लूट नहीं सकता..... यद्यपि सबके कंधे अपने आप मले रहते हैं—कामेश्वर.........नादानी.........बच्चो..... ...कुछ नहीं।

---

[२७]

अभी जल रही हूँ

उस समय कांग्रेस के व्यक्तिगत सत्याग्रह खूब जोरों से हो रहे थे और सरकार द्वारा लड़ाई का चंदा लोगों से बलात् इकट्ठा किया जा रहा था। रायबहादुर हीरामल ने लड़ाई का चंदा जमा करने के लिए टेनिस का मैच करवाया था। भारत चैम्पियन का आस्ट्रिया के किसी खिलाड़ी से, जो वहाँ का चैम्पियन था, आज मैच था। लेकिन लीला की तबियत नहीं लग रही थी। वह उन्मन और बेचैन थी।

अँगरेज और ऐंग्लोइंडियन उस यूरोपियन को बढ़ावा दे रहे थे, किंतु भारतीय खिलाड़ी को भारतीय ही बढ़ावा देने में हिचक रहे थे, क्योंकि उनपर अँगरेज़ों का दिया सांस्कृतिक दोगलापन लद रहा था। उस समय भारत और आस्ट्रिया में कोई भेद न था। आस्ट्रिया पर जर्मन राज कर रहे थे और वह ग़ुलाम था।

लीला देखती रही। कैप्टन राय दूर अपने साथी डाक्टरों के साथ बैठे पाइप पी रहे थे और कहकहे लगा रहे थे। वह सेना के जीवन को जानते थे, तभी उनके स्वर में वह भारीपन था।

लीला याद करने लगी। वहीं मिलेगा वह। सुनकर चौंक उठा था। पूछा था—क्यों मिलना चाहती हो ? वह स्थान तो बिल्कुल एकांत है ?

लीला ने कहा था—'इसी लिए तो।' जैसे सारी लज्जा, मर्यादा अपने आप छूट गई।

भगवती का मुख क्षण भर को आरक्त हो गया और उसने निर्जीव स्वर से कहा था—आऊँगा। लीला सिहर उठी।

उसने बियरर को बुलाकर चाय मँगवाई। चाय पीते हुए उसने देखा, भारतीय ने दो सेट ले लिये थे। गोरों के मुँह पीले पड़ने लगे थे।

लीला देखती रही, यानी कि वह नहीं देखती-सी देखती रही, क्योंकि उसकी

आँखों में कोई और ही खेल रहा था जिसे वह आज तक तनिक भी नहीं समझ पाई।

साँझ हो गई थी। अंतिम सेट होने लगा। लीला चाय पीती रही। जीवन यही है! उसने सोचा—यहाँ नारी अप्सरा मानी जाती है, क्योंकि यहाँ सभी इंद्र बनने का दावा करते हैं। लीला ने चाय समाप्त कर दी। इधर-उधर देखा और वहाँ से उठकर भटकने लगी। एक ऐंग्लोइंडियन लड़का अपनी चाची को बैठा-बैठा चिढ़ा रहा था। रायबहादुर हीरामल नोरो की तरह हंस रहे थे। उनका हँसना उपयुक्त था, क्योंकि वे अंगरेज़ी कपड़े पहनकर भी अंगरेज़ी भाषा बहुत कम समझते थे।

कैप्टन राय उठ गये थे। लीला राय ने देखा अँधेरा छा गया था। खिलाड़ी कोट पहन रहे थे। लीला 'बार' के पास पहुँच गई। देखा—ग्रैंड होटल के 'बार' में कैप्टन राय पी रहे थे और उनके पास एक ऐंग्लोइंडियन लड़की बैठी व्हिस्की से छोटा गिलास भर रही थी।

निराशा से ग्लानि खेलने लगी। लीला उधर नहीं देख सकी। आज मा होती तो क्या डैडी यह सब कर सकते थे? किंतु लवंग के भी तो मा नहीं है, मा तो सिर्फ भगवती की है।

लीला मोटर में आ बैठी और उसने गाड़ी स्टार्ट कर दी। कैंट की-सी दूकानों का-सा वैभव शहर की दूकानों में नहीं होता। वह और ही बात है जो बलिष्ठ गोरों के साथ मांसल युवतियों के अंग-अंग प्रकाशन में होती है। उनके पैर पड़ते हैं जैसे संसार उन्हीं के लिए है और भारतीय के क़दम पड़ते हैं जैसे अब और कहाँ जायें? लीला चकरा गई। गाड़ी चलती रही। दो-चार सोल्जर साइकिलों पर चले जा रहे थे। और उनके साथ दो रँगी हुईं लड़कियाँ साइकिलों पर चली जा रही थीं। लीला ने देखा उन लड़कियों की पिंडुलियाँ, कटि और वक्षःस्थल बहुत ही आकर्षक थे। उसे कोफ्त हुई। ये लड़कियाँ रुपया पाने के लिए अपनी सुंदरता को बनाये रखती हैं। कार कैंट से निकल गई। अब मोटर-आरूढ़ा ने देखा वही हिंदुस्तानी अड़ियलपन था, कोई इक्के में जा रहा है, कोई सिर पर गट्ठर रखे चला जा रहा है और इने-गिने बाबू भी अपनेपन का स्वाँग रचाकर चले जा रहे थे।

लीला के हृदय में एक चीज़ चक्कर काटने लगी। मोड़! वही मोड़!!

खट से मोटर मोड़ पर रुकी। लीला ने बत्ती बुझा दी। अंधकार गहन हो

गया। एक छायामूर्त्ति इधर-उधर घूम रही थी। वह व्यक्ति पास आ गया। लीला मोटर में से उतर आई। वह काँपते स्वर से बोल उठी—भगवती!

आगंतुक ने गंभीर स्वर से कहा—लीला!

लीला अंधकार में ही सिहर उठी।

दोनों एक पत्थर पर जा बैठे। हवा मतवाली हो रही थी। ठंड पड़ रही थी। दोनों एक पेड़ की छाया में थे। कुछ ही देर बाद कुहरे ने मोटर को धुँधला कर दिया।

लीला काँपते-काँपते बोली—तुम आ गये भगवती! मुझे तुम्हारे आने की तनिक भी आशा न थी। मैं तो समझी थी, मैं तो समझी थी···जाने दो, तुम आ गये।

उसने एक लंबी साँस ली। भगवती ने पूछा—तुम इतनी उत्तेजित क्यों हो?

'उत्तेजित नहीं हूँ। सच, मेरा हृदय आज फट जाएगा। इतने दिन उसमें केवल तुम थे और संकुचित करनेवाला अभिमान था, आज उसमें हर्ष भी अकुला उठा है। ओह! पागल!'

'पगली!' दोनों हँस पड़े, इतने धीमे कि वे ही एक दूसरे की सुन सके।

भगवती कहने लगा—लीला! आज मैं व्याकुल हुआ जा रहा हूँ। जानती हो? मैंने जीवन में सब तरह के स्वप्न देखे हैं, किंतु यह कभी नहीं देखा कि कोई मुझे प्यार करेगा, और एक दिन कोई मुझसे अभिसार करने आयेगा। ओह! कितने परिवर्त्तन! न जाने कितने तूफान झेलने हैं कि आज मैं यहाँ आ ही गया हूँ। तुम एक कप्तान की लड़की और कहाँ मैं एक ..जाने दो लीला। जीवन की विषमताएँ सदा बनी रहती हैं! तुम टूर्नामेंट हो आई? तुम कुछ जल्दी कैसे आ गई हो?

'जी नहीं लगा वहाँ', लीला ने हाँफते हुए कहा। भगवती ने देखा, लीला की आँखें जल रही थीं। मुँह पर वासना की एक मीठी हिलोर थी। शरीर जैसे ताप से फुँक रहा था। लीला ने देखा, आज भगवती अभिभूत हो रहा था। वह उसे निरंतर पलक डाले बिना देख रहा था। दोनों देर तक एक दूसरे को देखते रहे।

भगवती ने लीला का हाथ पकड़ लिया। लीला ने कुछ आपत्ति नहीं की। फिर दोनों के होंठ एक दूसरे की ओर झुकने लगे। दोनों ने अपने होंठों के ऊपरी भागों पर गर्म श्वासों का अनुभव किया। अचानक ही भगवती हट गया। लीला ने हठात्

आंखें खोल दीं। 'क्षमा करो लीला' भगवती कह उठा—'तुम मेरी कभी नहीं हो सकोगी। फिर इस क्षणिक सुख का क्या होगा? इस व्यभिचार के बाद भी समाज वैसा ही रहेगा। मुझे क्षमा करो। मैं क्षणिक आवेश में क्या से क्या कर गया होता! उफ़!'

'भगवती', लीला ने रुआँसी होकर कहा—तुम यों मेरा अपमान नहीं कर सकते।

'अपमान!' भगवती ने कहा—लीला, यदि नारीत्व के प्रति श्रद्धा प्रकट करना अपमान है तो वह वैसा ही बना रहे। क्या तुम अपने आपको मशीन समझती हो जिसे पुरुष अपने आनंद के लिए जब चाहे चला ले? नारी भूमि है, पुरुष बीज है। केवल प्रतिकृति के लिए जो प्रकृति ने अपना नियम बनाया है, मैं नहीं चाहता कि हम उसका दुरुपयोग करें।

लीला गंभीर हो गई। उसने व्यंग्य से कहा—'ब्रह्मचारी!'

भगवती कहता गया। आज मैं तुम्हारे साथ पहली बार बैठा हूं। नारी के इतने निकट मैं कभी नहीं बैठा था। आज वही पुरुष की आदिम निर्बलता मुझमें झलक उठी थी। लीला! तुम्हें विस्मय और क्रोध दोनों ही सता रहे हैं, किंतु तुम सोच भी नहीं सकतीं कि अपने ऊपर मैंने कितना वश करना सीख लिया है। एक दिन किसी को मोटर में बैठे देखकर मेरी इच्छा होती थी कि मैं भी बैठूँ। किंतु अभाव ने मुझे निराश कर दिया। उस निराशा की ग्लानि में मैंने अपनी तृष्णा के अहंकार को कुचलना प्रारंभ किया। तुम युवती हो। तुम्हारे हृदय में रोमांस है। किंतु समाज ने मुझे उससे वर्जित कर दिया है। मैं तुम्हारा अपमान नहीं करना चाहता।

'भगवती! तुम भूल करते हो। किसी भी नारी को किसी भी नर को, स्वतंत्रता से प्रेम करने का अवसर है। समाज उनके हृदयों को नहीं बाँध सकता।'

'समाज व्यभिचार की आज्ञा देता है। प्रेम को यदि समाज स्वीकार नहीं करता तो वह भी केवल व्यभिचार है। समाज ने वास्तव में हमारे हृदयों को बाँधा है, जीवन को रुद्ध कर दिया है। मैं इस समाज में स्वच्छंद प्रेम को ठीक नहीं कह सकता। यहाँ स्वच्छंदता है ही नहीं। स्वच्छंदता में कलंक का विषाद नहीं है। तुम जानती हो विवशता क्या है?'

'मैं स्त्री हूँ, इसलिए यह समझना मेरे लिए अधिक कठिन नहीं।'

'नहीं', भगवती हँसा, 'तुम नहीं जानतीं। तुम्हें सब कुछ प्राप्त है, केवल यौन वासनाएँ अतृप्त हैं! विवाह होने पर वह भी उतनी नहीं रहेंगी। लीला! तुमने··· तुमने कभी भूख के बारे में भी सोचा है?'

लीला मूक बैठी उँगली से ज़मीन कुरेदने लगी। भगवती भी चुप हो गया। वायु तेज़ी से भाग रही थी। ठंडी-ठंडी स्पंदनमयी चेतना उस अंधकार में आलोड़न-विलोड़न कर रही थी। एक ही स्वर व्याप्त हो रहा था। उस सन्-सन् की भयद ध्वनि में दोनों निस्तब्ध चिंतामय बैठे थे। दूर तारे रेंग रहे थे, धुँधले-धुँधले··· ···

लीला ने कुछ देर बाद कहा—भगवती, मैं तुम्हें समझ नहीं सकती।

भगवती ने कहा—समझ नहीं सकतीं? ऐसा अद्भुत तो मैं निश्चय ही कभी नहीं हूँ।

लीला ने उससे फिर कहा—जीवन में तुम कभी और भी इतने व्याकुल हुए हो? मैंने तुम्हें तुम्हारे सुख दुःख में देखा है, एक दम ऐसे चुप क्यों हो गये?

भगवती कराह उठा—लीला! जो मैं नहीं कहना चाहता था वह तुमने मुझे आज कहने को बाध्य किया है। मेरे जीवन में प्रेम की विवशता कभी नहीं आई थी। एक बार एक वेश्या ने मेरा नशा उतार दिया था, वह अब कहीं चली गई है। होती तो अवश्य उसका आभार स्वीकार करता।

लीला चौंक उठी—'तुम? वेश्या?' भगवती हँसा। उसने धीरे-धीरे पूरी कहानी सुना दी। लीला अवाक् सुनती रही। भगवती ने कहा—किंतु विवशता ने मुझे कोमल बना दिया है। किंतु कोमलता भी एक ऐसी जड़ता बन गई है कि तुम्हें वह निष्ठुरता लग रही है। मैंने तुम्हारी उपेक्षा की। तुम्हें भूलने का प्रयत्न किया। मा का विषाद, ग़रीबी, इंदिरा का स्नेह, और अनेक रूपों में यह बहता हुआ जीवन; न जाने क्यों घृणा करके भी तुम्हारे स्नेह के आगे मन हार गया। मैंने तुम्हें भूलने का जितना प्रयत्न किया उतनी ही तुम मेरे निकट आ गईं। मैंने हफ़्तों तुम्हें चांदनी रात में मुझे बुलाते देखा है। एक दिन रात का एक बज गया और मैं बैठा-बैठा नहर के किनारे अपने हृदय को उस विराट् शांति में डुबा रहा था। लीला! स्वप्न कितने मधुर होते हैं, किंतु जागरण कितना विषम! तुम्हारी प्रतिमा लैंप के धुँधलके में छाया बनकर मेरी आँखों के आगे नाचा करती थी। किंतु वह शीशा टूट गया है। परीक्षा आ गई है, विद्यार्थी जीवन का अभिशाप सिर पर मँडरा रहा है। एक ओर तुम थीं, ज़मींदारी

का प्रबंध था, स्वर्ग था, किंतु मेरा अपमान था, पराजय थी, घृणा थी; दूसरी ओर मेरा जीवन था नरक ! लेकिन मुझे क्षमा करो लीला ! स्वार्थ ने मेरे प्रेम को पराजित कर दिया। मैंने देखा कि यदि मेरे पास यह साफ़ कपड़े भी नहीं होते, तो तुम मेरी ओर कभी भी नहीं देखतीं। तुम लीला ! किसी आई० सी० एस० से विवाह करके पार्टियों में घूमोगी और मैं जो स्कालरशिप और ट्यूशन के बल पर पढ़ रहा हूँ, बिना निर्ममता के कुछ नहीं होऊँगा। पुरुष का सुख धन है, स्त्री का सुख धनी पुरुष। सारा प्रेम यहीं समाप्त हो गया। किंतु मेरे लिए यह एक तपस्या थी। मैंने जहाँ-जहाँ तुम्हारा नाम लिखा था वहीं से मिटा दिया। तुम्हारे नाम से घृणा करने लगा।

भगवती चौंक उठा। लीला हाथों से मुँह छिपाए सिसक रही थी। उसने रोते-रोते कहा—भगवती ! यह तुमने क्या किया ?

भगवती ने निर्विकार स्वर से कहा—मेरी अँधेरी रात मेरे लिए अधिक मूल्यवान है। किंतु तुम दूर की क्षीण तारा बनकर टिमटिमा उठी थीं। मेरा अपनेपन का स्वार्थ उतना ही उचित है जितना तुम्हारा प्रेम। लीला ! भगवती ने उसके हाथों को पकड़ लिया। वह घुटने के बल नीचे बैठ गया और उसने कहा—लीला ! मैं जानता हूँ कि धनी होने से ही तुम मानुषी नहीं हो, यह कहना ठीक नहीं। मैं जानता हूँ कि तुम में नारीत्व की वही अमोल तृष्णा है। फिर भी मेरी अवस्था देखो। तुम मुझे प्यार करती हो, क्योंकि कोई और स्त्री सचमुच इतना सब कुछ जानकर भी मुझे अपना बनाने का प्रयत्न नहीं करती। इसी लिए तुम्हारी दया चाहता हूँ। मुझे क्षमा करो।

लीला बिलख रही थी। उसने केवल एक बार कहा—भगवती !

भगवती उसके घुटनों पर सिर रखकर सिसक उठा। लीला ने देखा, वह अभिमानी जो कहीं नहीं झुका सारी विषमताओं के रहते हुए भी पराजित हो गया था, क्योंकि लीला के स्नेह को उसने स्नेह के रूप में स्वीकार कर लिया था। लीला उसके बालों को अपने हाथों से सहलाती हुई कहने लगी—तुम्हारा वास्तव में कोई दोष नहीं है। मैंने ही एक दिन अपने स्वार्थ के लिए तुम्हारी आग को भड़का दिया था और उसी के प्रति फल तुमने मुझे ठुकरा दिया है। लेकिन मेरी एक बात मानो। अंतिम प्रार्थना है। बस, एक बार, मेरी ओर देखो !

लीला ने अपने हाथों से भगवती का सिर उठा दिया और उसे देखने लगी।

उसने उसकी दृष्टि में अपने आपको खोजा। क्षण भर उसके आँसुओं में उसे अपना ही प्रतिबिंब जान पड़ा। फिर धीरे-धीरे उसने अपना मुँह झुका दिया। भगवती निर्लिप्त-सा प्रशांत, बैठा रहा। लीला के श्वासों ने भगवती के होठों को गर्म कर दिया। भगवती चौंककर हट गया। वह चीख उठा—नहीं, नहीं, लीला! अब नहीं! इसकी तृष्णा अब मुझमें नहीं है। मैं अब इतनी स्पर्धा भी नहीं कर सकता।

लीला चिल्ला उठी—भगवती SSSS ⋯⋯

भगवती हटता गया। वह कह रहा था—नहीं लीला! मुझमें इतना बल नहीं है। मुझमें इतना अभिमान भी नहीं है। नहीं, नहीं, मुझे जाने दो ⋯⋯

लीला फिर पुकार उठी - भगवती ⋯⋯उसकी आवाज़ गूँज उठी, किंतु भगवती अँधेरे में खो गया था।

लीला अपनी 'मर्सीडीज़बेन्स' के 'स्टियरिंग व्हील' पर दोनों हाथ टिकाकर उसपर सिर रखकर फूट-फूटकर रो उठी। ऐश्वर्य का अभिमान अभिशाप बनकर आँसुओं के रूप में टपटप टपककर नीचे गिर रहा था।

× × ×

लीला बेंत की कुर्सी पर लान पर बैठी थी। सामने ऊषा थी। भूमि से चार फ़ीट ऊँचा एक चमकता हुआ बिजली का स्टैंड लैंप रखा था जो अभी जला नहीं था। हरी-हरी दूब मखमल सी मुलायम थी। उस दूर्वा में यौवन था, मादकता थी; शीतल समीर बह रहा था। उदास संध्या अपने पर फैलाये आ गई थी। चारों ओर पक्षी कलरव कर रहे थे। धीरे-धीरे सूर्य अस्त हो गया और चारों ओर से अंधकार झुकने लगा।

रात की निस्तब्धता में चाँदनी धुँधली-सी उतर रही थी। पेड़, पत्ते, घास सब अँधेरे में सुनसान चुपचाप खड़े थे।

'कुछ भी नहीं मिला', लीला ने एक दीर्घ निःश्वास लेकर कहा।

'मिलता किसी को कुछ नहीं लीला। हम लोग आते हैं और इस भंवर में फँस जाते हैं। निस्सारता आडंबर बनकर ठोस धोखा दे सकती है।' ऊषा चुप हो गई। चाँद धूमिल-सा, लीला के कटाक्ष-सा आकाश में झलक रहा था। उसमें से फुहार-सी धीमी-धीमी रोशनी निकल रही थी। निर्द्वंद्व, निर्विकार, शांत, गंभीर निर्मलता से अंतराल व्याप गया था।

ऊषा ने अचानक ही कहा—लीला! बहुत दिन हो गये, तुमने मुझे गाना नहीं सुनाया। आज एक गीत ही सुना दो।

लीला ने कोई आपत्ति नहीं की। वह गाने लगी—

'कौन तुम इस जीवन में आये। जब यह जीवन ही इतना क्षणभगुर है तो उसमें यह वेदना का दीप किसने इतने यत्न से जलाया है। पतंग दीपक पर नहीं आते। इसमें से निकली करुणा की ज्योति पर अपनापन खोने आये हैं।

'रात है, तुम नहीं आये। न आओ। तुम कभी नहीं आये थे। फिर भी मेरे हृदय में यह प्रकाश का कण क्यों जगमगा उठा है। मैं आत्मविभोर हो उठी हूँ। सखी भी सो गई है। तुम इस छोटे-से नश्वर जीवन में क्यों आये?

'विषमताओं का साम्राज्य है, फूल मुरझा चुके हैं, पतझड़ ही पतझड़ है। लेकिन यह किसने अंग-अंग में नवजीवनमय मलय समीर छुला दिया है! मैं जाग उठी हूँ। संसृति हँस उठी है, अरे तुम तो मुझी में थे। मैं क्यों इतनी विह्वल थी। सहस्रों युगों की मानव की शांति मुझमें छाई है। मैं अपने आपको भूल गई हूँ। सचमुच इस छोटे जीवन को युगांतर तक गीत की लय बनाने तुम आये थे, हाँ, तुम आये थे।'

गीत थम गया। ऊषा ने भर्राई आवाज़ में कहा—'लीला।' लीला ने कुछ कहना चाहा, किंतु उसका गला रुँध गया। पास ही बेरों का जंगल था। समीर उनकी गंध से भारी-सा उमड़ता चला आता था। अंधकार उसके कारण झूम उटता था। वह यौवन की आकुलता थी, वासना का दुलार था।

ऊषा ने कहा—लीला! तुम्हारे गीत को सुनकर मुझे आज प्राचीन वैभव के प्रासादों में यौवन से अधीर तृष्णाकुल विरहिणी राजकुमारी की सुधि हो आई है।

लीला ने कहा—डूब गया ऊषा, अब तो जहाज़ ही डूब गया। अब कभी उससे नहीं मिलूँगी। उसके वैषम्यों का आदर्शवाद, उसकी सहिष्णुता का छल, मैं वह सब नहीं झेल सकी।

ऊषा ने कहा—लीला! यह सब कुछ नहीं। पल भर का खेल है। बताओ जबसे परीक्षा सिर पर आई है, कोई प्रेम करता दीखता है? कहाँ है रानी? कहाँ है कला? सब अपने-अपने काम में लग गये हैं। तुम भी पढ़ो। तुम समझती हो, भगवती नहीं पढ़ेगा? जाने दो उसे। यह संबंध बहुत क्षणिक होते हैं। आँखों से

ओझल होते ही परिचय का अंजन धुल जाता है। मध्यवर्ग के लोग जीवन भर झूठे स्वप्न देखा करते हैं। उनकी सेक्स की भूख बहुत ही अतृप्त होती है। वह यहाँ सहशिक्षा में इतना उग्र वेग धारण करती है कि सब बातें उसके सामने डूब जाती हैं।

सूनापन घना हो गया। चारों ओर फिर ठंडक में हवा की सनसनाहट अंधकार के भयद रूप में डूब गई।

ज़िंदगी कठिन है। एक ग़ुलाम क़ौम की हलचल बड़ी विषम होती है। उस विषमता को और कुछ न समझकर ईश्वर पर टेल दिया जाता है। और ईश्वर बेचारा, क्योंकि कुछ कर नहीं सकता, सब चुपचाप झेला करता है।

ऊषा चली गई। लीला उदासमना फिर गा उठी —

'यह हलचल निर्जीवता की द्योतक है, यह स्वच्छंदता ही विषमता है, यह जीवन-मरण की करवट है ··

'मेरी ही आत्मा का चेतन सबकी आत्मा का चेतन है। मुझमें ही गति और लय का उपक्रम और उपसंहार है। आओ, प्यार के गीत गाकर मुझमें खो जाओ ··

'सब विषमताओं से वह परे है। कलुष उसके पास भी नहीं है। विकार उसकी छाया भी नहीं छू पाता। तुम भी अपनी लालसा का लघुत्व छोड़कर उसमें घुल जाओ।

'वह महामानव के नयन से निकली ज्योति है। इस प्रकाश में मेरा हृदय चैतन्य हो उठा है। मैं कुछ नहीं चाहती। यदि मेरी सत्ता से उसे दुःख होता है, तो मैं अपनी अयोग्यता का उस तक प्रसार नहीं करना चाहती। मिल गया, उसने मेरा प्यार स्वीकार तो कर लिया, और क्या चाहिए, मुझे सब कुछ मिल गया है, आज मैं भिखारिन नहीं रही — मेरी स्पर्धा का भस्म भी ठंडा हो चुका है···'

लीला रोने लगी।

---

[३३]

मौत या जिंदगी ?

विद्यार्थी संघ को जब कहीं भी आज्ञा नहीं मिली, तो उसने पार्क में अपनी मीटिंग प्रारंभ कर दी। विद्यार्थी-जीवन में पानी के बुलबुले का-सा उत्साह होता है।

कामरेड रहमान ने कहा—साथियो! आज आप पहली मीटिंग की रिपोर्ट सुन लीजिए। इसके बाद वीरसिंह अपनी बेनुक़्ता आवाज़ में सर-सर करके पढ़ गया। मीटिंग में बहुत कम लोगों ने उसे सुनने और समझने का प्रयत्न किया। स्टेट्समैन का संवाददाता और दो सी० आई० डी० रिपोर्ट लिखने में मशगूल थ। तीन दारोगा सादी पोशाक में भीड़ में छिपे खड़े थे। उनके साज़िदे लाल पगड़ीवाले सिपाही चार-चार की टोली में चारों कोनों पर खड़े थे, जैसे खून से भींगी चोंचवाले गिद्ध आँखें गड़ाये टूट पड़ने की प्रतीक्षा कर रहे हों। उनके हाथों में हथियार थे जिनके दुरुपयोग को विदेशी सरकार ने क़ानूनी बना दिया था।

सभापति रहमान ने कहना प्रारभ किया—'कामरेड्स! आज आप लोगों को अपमान से जागना होगा। और यदि आप में इतना भी जीवन नहीं है, तो आपको दुनिया में रहने का अधिकार भी नहीं है। चीन के विद्यार्थियों ने अपने देश को कितना जाग्रत कर दिया है। यदि आज वे न होते, तो चीन जापान के सामने झुक चुका होता। लेकिन उन्होंने गिरती हुई इमारत में अपनी शक्ति से नये स्तंभ लगा दिये। स्पेन के विद्रोह में जब बर्बर फ़ासिस्टवाद को जर्मनी और इटली सशस्त्र सहायता दे रहे थे, इंगलैंड और फ्रांस अपने स्वार्थों की रक्षा के लिए उसे गृहयुद्ध कह रहे थे, तब केवल विद्यार्थियों ने आग भर दी थी। आप नौजवान हैं, आपके ऊपर जिम्मेदारी है। आप अपने बुनियादी हकों से दूर हट रहे हैं। आपकी सभ्यता आज अँधेरे में भटक रही है। यूरोप में हिटलर सबपर कामयाब हो रहा है। उसने फ्रांस को भी पराजित कर दिया है। सिर्फ विद्यार्थियों का एक ऐसा 'फ्रंट' रहा है जिस-

पर उसे कुछ-न-कुछ करने के लिए सदा चिंतित रहना पड़ता है। दूसरी ओर रूस को देखिए। वहाँ का विद्यार्थी एक सजीव शक्ति है। वह देश की हलचल से दूर नहीं रहता। इंगलैंड को ही लीजिए। यदि किसी ने वहाँ की सरकार का खुलेआम विरोध किया है, तो केवल विद्यार्थियों ने।

आप लोगों को चाहिए कि अपने आपका सगठन करें। करोड़ों किसान और मज़दूर आपके नेतृत्व की प्रतीक्षा कर रहे हैं।'

तालियाँ बज उठीं। सुंदरम् जोर से चिल्ला उठा—हियर! हियर!!

कामरेड रहमान ने गरजते हुए कहना शुरू किया—'आज समय आ गया है कि आप लोग अपनी सदियों की ग़ुलामी की नींद छोड़कर, पूँजीवाद और साम्राज्यवाद की जड़ों को हिलाते हुए देश के एक कोने से दूसरे कोने तक इन्कलाब का नारा गुँजा दें। आप लोगों के लिए मज़दूर भी एक रोमांटिक चीज़ हो चला है। उसे अपनी रानी की याद नहीं आती, रोटी की याद आती है। विद्यार्थी सरकारी नौकरियों की टोह में विद्रोह से डरते हैं। लेकिन सोचिए। जिन्हें नौकरी मिलती है वे कितने कम होते हैं। और आप लोग टुकड़ों के पीछे सारी जिदगी बरबाद करते हैं? इस नींद से जागना होगा। हिंदुस्तान को ख़ून चाहिए, ख़ून। खून चाहिए उनका जिन्होंने आदमी को एक कुत्ता बना रखा है, जो अपनी जूठन डालकर उसे फुसलाकर रखना चाहते हैं। क्रांति चाहिए ऐसी कि ज़मीन और आस्मान में एक ललाई छा जाये···'

कामरेड रहमान बोलता गया। उसकी आवाज़ भयकर हो गई। वह गुस्से से कांपने लगा, और उसकी मुट्ठियाँ बँध गईं। इसी समय सुंदरम् चिल्ला उठा—इन्क़लाब!

सैकड़ों विद्यार्थी चिल्ला उठे—ज़िंदाबाद।

कामरेड रहमान के नथुने फूल गये। वह बोलता गया—'कामरेड्स! जीवन संघर्ष है, अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति तुम्हें बोलने के लिए मजबूर कर रही है····'

संवाददाता और सी० आई० डी० लिख रहे थे। उन्हें फुर्सत न थी। अचानक ही सीटी बज उठी। एक वर्दीदार दारोग़ा ने आकर फ़रमान सुनाया—कलक्टर साहब के हुक्म से यह सभा बरखास्त की जाये।

लड़के हुँकार उठे। यह आग पर घी था। दारोग़ा ने कहा—आपको पाँच मिनट का वक्त दिया जाता है।

भीड़ गरज उठी। क्षण भर को पुलिस चकरा गई। इतने में सशस्त्र सिपाहियों से भरी दो लारियाँ आ पहुँचीं। तहलका मच गया। किसी में डिसिप्लिन नहीं रहा। कामरेड रहमान के होठों पर एक अद्भुत मुस्कराहट छा गई। सुंदरम् ने बढ़कर कहा—परवाह मत करो।

वीरसिंह चिल्ला उठा—इन्कलाब!

सारी भीड़ चिल्ला उठी—ज़िंदाबाद! दारोगा ने बढ़कर रहमान को हथकड़ी पहना दी।

विद्यार्थी भीषण ध्वनि से फिर चिल्ला उठे। पुलिस लड़खड़ा गई। सुंदरम् और वीरसिंह भी गिरफ्तार कर लिये गये थे। उस शोर में फिर कोई चुप नहीं रहा। साथियों को गिरफ्तार होते देखकर विद्यार्थी विक्षुब्ध हो उठे।

दारोगा ने सीटी दी। लाठी चार्ज शुरू हो गया।

यह साम्राज्यवाद का न्याय था, यह पूँजीवाद की दया थी, यह दार्शनिकों की वर्ग-सभ्यता का उपभोग था कि निहत्थों पर वार हो रहा था। किसी का सिर फूटा, किसी का हाथ उतर गया, किंतु लाठी चलती रही। आज़ादी की बत्ती नहीं बुझी, क्योंकि भारतमाता अपने बेटों के रक्त से भीग गई। बर्बर साम्राज्यवाद अपने आप अपने पाप से कराह उठा, क्योंकि उन आराम-पसंद लड़कों में से एक भी पीछे नहीं हटा; देर तक उनके नारे गूँजते रहे, क्योंकि उनमें सदियों की यातना का विक्षोभ था, आजादी की परंपरा का प्रश्न था।

हिंदुस्तान ने वार करना नहीं सीखा। लेकिन क़ातिल के वार सहकर उसे रुला देना सीखा है।

---

[३४]

ईसा और उपनिवेश

आज ईसाइयों की एक बड़ी महत्त्वपूर्ण सभा थी। इस प्रस्ताव को चर्चा प्रत्येक मुँह पर थी कि ईसाइयों के अतिरिक्त अन्यधर्मा विद्यार्थी भी विद्यार्थी-ईसाई सभा में सदस्य बन सकें। कुछ मालूम नहीं पड़ रहा था कि नतीजा क्या निकलेगा। हाल भर गया। लोगों में कुछ मज़ाक सा हो रहा था। लड़कियाँ भी बैठ गईं। प्रार्थना के बाद जब आत्माएँ पवित्र हो गईं, सभापति ने उठकर कहा—माननीय सज्जन वृंद! आप लोगों के सामने आज एक प्रस्ताव रखा गया है। इसकी प्रस्तावना करनेवाले हैं मिस्टर राजमोहन और इसका समर्थन करनेवाली हैं मिस रानी रेनाल्ड। प्रस्ताव यह है कि विद्यार्थी-ईसाई-सभा में कालेज के अन्यधर्मा विद्यार्थी भी सदस्य बन सकें, क्योंकि सांप्रदायिकता भारत में विषवृक्ष का बीज है। प्रस्ताव में कुछ कठिन बात नहीं है। इससे हानि-लाभ दोनों ही हैं। इसके लिए मैं प्रस्तावक मिस्टर राजमोहन से अपने मत के प्रतिपादन के लिए प्रार्थना करूँगा।

लोगों की निगाहें राजमोहन की ओर खिच गईं। वह उठा और झुका और फिर सीधा खड़ा होकर, पेंसिल हाथ में लेकर, उसने अँगरेज़ी में कहना शुरू किया—'माननीय बंधुगण! आज आपके सामने मैं यह प्रस्ताव रखने की धृष्टता कर सका हूँ। आशा है, आप खुले दिमाग से सुनेंगे। हम आज ऐसे कगारे पर खड़े हैं जहाँ से हमें आगे और पीछे—दोनों ही दुनियाओं का डर पड़ा है। बूढ़े पीछे खींचते हैं, और उन्हीं का ख़ून होने के कारण जवान भी आगे बढ़ने में डरते हैं। हमारे समाज में आज कई अंग बन गये हैं। पुरानी बातें नई बातों के चक्कर में पड़कर ऐसी बिगड़ गई हैं कि अब सफ़ेद और काले को शीघ्र ही अलग-अलग नहीं किया जा सकता। इस प्रकार दो सभ्यताओं में एक संघर्ष व्याप्त हो गया है। एक आम माध्यम के नष्ट होने पर एकता का ह्रास हो जाता है। मनुष्य सदा से उस ऐक्य को बनाने की चेष्टा करता

रहा है। नये-नये धर्म केवल उस आत्मिक संगठन को एकरूप करने उठे हैं और अधिक बहुरूप करके असफल हो गये हैं।

हमारी सभा एक धार्मिक बंधन पर खड़ी हुई है। लेकिन धर्ममात्र ही कितना असफल है, यह आज कौन नहीं जानता? कालेज संस्कृति का केंद्र है। यहीं जीवन का केंद्र होना चाहिए, यहीं से सब बहना चाहिए। अभाग्य से यहाँ अधिकाधिक सांप्रदायिकता फैलती जा रही है।

हम लोग ईसा के अनुयायी हैं जो अहिंसा का पुजारी था। लेकिन आज वे उपदेश केवल रूढ़ि बन गये हैं और उनके पीछे हम आँख बंद करके भटक रहे हैं। इस मशीन-युग ने हमें कल की बहुत-सी बातों से मुक्त कर दिया है। माध्यम एक ऐसी वस्तु है जो सर्वसाधारण के लिए एक हो। धर्म भी एक माध्यम है। यदि धर्म का अर्थ विश्वसमाज की सेवा है, सत्य की खोज है, तो किसी भी धर्म की बुनियाद एक ही है, क्योंकि सभी की प्रेरणा एक है, स्वरूप भिन्न, और कार्य सब उल्टे। इसी लिए मैं कहता हूँ कि भेद संस्कृति के कारण होते हैं। प्रकाश सबको एक लगता है। हमारी सभा ने इसके विपरीत एक वर्गीकरण करके एक असामजस्य का उत्पादन किया है। अन्यधर्मा इसे लड़के लड़कियों के विवाहघर के रूप में लेते हैं। हमें बंधनमुक्त हो जाना चाहिए। इसी लिए हमें अपनी राह अधिक-से-अधिक खोलनी होगी। पथिक को पथ का विश्वास चाहिए, अन्यथा पग कभी सुस्थिर नहीं होगा। पगडंडियों से चलनेवाला सदा शंकित रहता है।

प्रस्ताव तो आपने सुन ही लिया है। सांस्कृतिक ऐक्य की बुनियाद डालने का अपना अधिकार आपको याद रखना पड़ेगा। धन्यवाद।'

राजमोहन बैठ गया, लेकिन लोग नासमझ-से देखते रहे। उसे इस बात का दिल में सख़्त अफ़सोस रहा कि किसी ने ताली नहीं बजाई।

एक व्यक्ति समाज सुधारने का ठेका लेकर चुंगी के दारोग़ा को शिकायत भेजता है। दारोग़ा उसपर, उसके मकान में, खुचड़ निकालकर, जुर्माने करा देता है। तब वह व्यक्ति सेवा से घबराकर काम छोड़ देता है। यही हाल राजमोहन का हुआ। उसे अपने ऊपर कोफ़्त होने लगी। वह एकदम चुप हो गया।

सभापति ने कहा—अब आप लोगों में से किसी को यदि दूसरे पक्ष का प्रतिपादन करना हो तो बोलें।

आशाओं के विरुद्ध विनोद उठा। लोग एकदम स्तंभित हो गये। कौन, विनोद बोलेगा? मैक्सुअल में जान पड़ गई। लोगों को ऐसा ही विस्मय हुआ जैसे जगद्-विजयी सिकंदर को अंत में जंगलियों * अथवा आर्यों से पिटते देखकर हुआ था। एक फुसफुसाहट मच उठी। लेकिन विनोद उठकर बोलने लगा—'बंधुगण! मेरे मित्र मिस्टर राजमोहन ने अभी प्रस्ताव का दार्शनिक पहलू समझाया। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि तिल की ओट में पहाड़ भी छिप सकते हैं, फिर भी पहाड़ और चूहे की कहानी हमें नहीं भूलनी चाहिए।'

सब हँस पड़े और व्यंग्य से विनोद ने राजमोहन की ओर देखा। विनोद कहता गया—'जीवन के दो पक्ष सदा रहे हैं और बने रहेंगे। किंतु आपको याद रखना चाहिए कि अंधकार समय असमय नहीं देखता, वह एकदम से टूट पड़ता है। मैंने भूल से राजनीति में भाग लेने का प्रयत्न किया था, किंतु वास्तव में ईसाई के लिए धर्म ही सब कुछ है। यह धर्म उस मनुष्य की कहानी है जिसने अपने रक्त और मांस का संसार के लिए बलिदान दिया था। राजनीति क्षणिक है, कल यह इतिहास बन जायेगी। किंतु धर्म एक विशाल सुदृढ़ चट्टान की भाँति खड़ा रहेगा।'

फिर करतलध्वनि हुई। विनोद बिना मुस्कराये कहता गया—'आखिर क्या कारण है कि आज संसार में ईसाइयों का प्रभुत्व है, हमारा बादशाह ईसाई है! और सोवियत् रूस से लोग क्यों इतनी घृणा करते हैं? क्योंकि ईश्वर न्यायप्रिय है, वह सदा सत्पथ की ओर प्रेरणा देता है। अँगरेजों ने हमें आकर मनुष्य बनाया। हमें बराबरी का संदेश दिया। अभी तक मैं धर्म से दूर था, तभी भटक रहा था।'

राजमोहन टोककर खड़ा हो गया। बोला—सभापति महोदय! मैं निवेदन करता हूँ कि वे वक्ता से व्यर्थ का जीवनचरित सुनाने का निषेध करें। यहाँ मोक्ष का प्रश्न नहीं है।

समस्त समुदाय ठठाकर हँस पड़ा। सभापति ने कहा—जारी कीजिए।

राजमोहन काला पड़ गया। मैक्सुअल चिल्ला उठा—हियर! हियर!!

विनोद बोलने लगा—'बंधुओ! अभी मेरे एक मित्र ने आक्षेप किया है कि मैं व्यर्थ की बातें कर रहा हूँ। किंतु उन्होंने मुझे गलत समझा है। मेरा कहना ही यह है कि सभा एक धार्मिक संगठन है, न कि विवाहघर। अपने-अपने धर्म को अपने-

* ताकि विदेशी ऐतिहासज्ञ बुरा न मानें।

अपने लोग सँभालें। हमने सबका ठेका नहीं लिया है। यदि वे रूढ़ियों को छोड़कर ईसाई हो जायें तो हम उनकी भी चिंता किया करें। मनुष्य का जीवन उत्थान और पतन की एक धार्मिक प्रणाली है। यहाँ हम नये नये रूप लेकर ईसा के शरणागत हैं। मनुष्य अपने को उठाने के प्रयत्न में लगा रहता है, इसी में गिरता भी है। मनुष्य भावनाओं का केंद्र है। कभी अच्छे भाव उठते हैं, कभी बुरे। ईश्वर मनुष्य का भाग्य धर्म के अनुसार बनाता है, तभी हिंदू और मुसलमान आज ग़ुलाम हैं और उसी भारत में रहकर हम ईसाई स्वतंत्र हैं। किंतु सबके विचार एक-से नहीं रहते, तभी एक-न-एक भेड़ भटक जाती है।

अतः मुझे कुछ बातें आपके सामने प्रश्नों के रूप में रखनी हैं और उनके परिणाम भी बताने हैं।

हमारी सभा धार्मिक है, जब अन्यधर्मा इसमें आयेंगे, तो इसका स्वरूप क्या होगा? क्या यह बात उचित है कि सभा को गप्प मारने का क्लब बना दिया जाये? आप अन्यधर्मा को किस सिद्धांत पर निमत्रण देंगे? क्या आपको विश्वास है कि अपनी बनाई सीमा में फिर विस्तार नहीं होगा? क्या आप समझा सकते हैं कि फिर उन्नति की किस पथ पर प्रेरणा होगी?'

विनोद ने रुककर इधर-उधर देखा। सब प्रभावित थे। वह फिर कहने लगा — 'कालेज में ईसाई तथा अन्यधर्मा में शिक्षा की बात एक है, बताइए उस समय क्या होगी? धर्म के बिना हमें कला, विज्ञान, राजनीति अथवा क्या है, जो माध्यम बनाना पड़ेगा? जब कुछ नहीं होगा तो गप्पें होंगी। क्या आप इसे सह सकते हैं कि ईसा के पवित्र नाम को फेंककर कुछ अश्लील बातें हों? हम किस सिद्धांत पर एकत्रित होंगे? हमें चाहिए कोई बात जो अपने आपमें ठोस हो। आज कालेज के अन्य-धर्माओं का प्रश्न है, कल अन्य कालेजों का उठेगा, परसों नगर भर का। तब सभा कहाँ होगी? इतनी बड़ी मीटिंग हा प्रबंध कहाँ होगा?'

सब हँस पड़े। राजमोहन विक्षुब्ध-सा बैठ रहा। रानी निःस्पंद शांत थी।

'और जब हमारे पास कोई बात ही न होगी तो हमें किस पथ पर चलना होगा? किधर की ओर उन्नति करनी होगी? लेकिन मेरे पास इस सबके लिए एक प्रस्ताव है जो स्वतः सबसे बड़ा उत्तर है।'

अचानक विनोद की आवाज़ तीखी हो गई और वह कुछ उत्तेजित होकर कहने लगा—'मुझे फिर भी कोई विरोध नहीं है। मैं आप लोगों को साफ़-साफ़ समझा देना चाहता हूँ। क्षमा कीजिए। आप लोगों को स्यात् यह सत्य कचोट उठे किंतु विश्वास रखिए, उस प्रकार ही यह सभा वास्तव में विवाहघर बन जायेगी। लोगों को केवल रोमांस का आकर्षण रह जायेगा। लड़कियों के कारण इतनी भीड़ हो जायेगी कि कुछ पता नहीं चलेगा। हर-एक गुंडा अपने को भर्ती करा लेगा। उसकी जिम्मेदारी कोई भी नहीं ले सकेगा। लड़कियां बिगड़ जायेंगी। चाय उड़ेगी, सिगरेटों का धुँआं उड़ेगा और उनके साथ ही धर्म भी उड़ जायेगा। फिर सभा कई भागों में विभक्त हो जायेगी और आप बदनामियों के बोझ से दबकर लँगड़े हो जाएँगे। मैं कहता हूँ, दरवाजा खोल दो, लेकिन लड़के-लड़कियों को अलग-अलग कर दो। फिर देखें, सभा के कितने सदस्य बनते हैं।'

विनोद बैठ गया। उसके बैठते ही महान कोलाहल मच उठा। वह ऐसे बोला था जैसे मसीह कब्र में से उठकर बोला होगा। उस कोलाहल में सब अधीरता से ज़ोर-ज़ोर से बातें करने लगे। राजमोहन ग्लानि से कट रहा था, किंतु रानी प्रशांत बैठी थी। मैक्सुअल अकेला ही हियर-हियर चिल्ला रहा था। जब कोलाहल धीमा पड़ गया तब धीरे से गंभीर मुख रानी उठी। उसके उठते ही फिर शांति छा गई। उसने कहा—'सभापति महोदय! मिस्टर राजमोहन ने प्रस्ताव का दार्शनिक रूप ही दिखाया था, मैं इसका क्रियात्मक रूप दिखाती हूँ। क्या मुझे बोलने की आज्ञा है!

सभापति की आज्ञा मिलने पर रानी ने पतली, तीखी और चुभती हुई आवाज़ में कहना प्रारंभ किया—'बंधुओ! आज इस मशीन युग में मानसिक और भौतिक रूप एक केंद्र की ओर चल रहे हैं। दृष्टिभेद के अनुसार ही भेद बनते हैं और मनुष्य इन्हीं कारणों से देश, वर्ण, और धर्म में बँटता है। आधुनिक सभ्यता यह स्वीकार करने को विवश करती है कि मनुष्य का ईश्वर मनुष्य है। कोई और वस्तु नहीं। संघर्ष आज मानों एक देन होकर आया है—देन—वह देन जो बिना दिये ली जाती है, जिसके प्रारंभ और अंत में संसार की अरूप रहस्यात्मकता और दो पैर के कीड़े आदमी का इतिहास ऊँघता-सा पड़ा रहता है। सब सत्यों से ऊँचा सत्य मनुष्य है। मिस्टर विनोदसिंह ने कहा कि हमारी सभा धार्मिक है। हममें से कितने हैं जो जन्म और मतपरिवर्त्तन से नहीं, कर्म से सच्चे ईसाई हैं? हम लोग

केवल ढोंग के सिवा और करते हो क्या हैं ? जिस सिद्धांत पर—मनुष्यता के सिद्धांत पर हम मिले हैं, क्या और लोग उसी सिद्धांत पर नहीं मिल सकते? मेरा प्रश्न है — क्या प्रत्येक स्वतंत्र सभा में करोड़ों सदस्य होते हैं ? कई सौ लड़के-लड़कियाँ साथ पढ़ते हैं। वहाँ प्रबंध हो सकता है, यहाँ नहीं ? क्या कालेज में गुंडे नहीं होते ? गुंडापन दमन से दबता है। हम साम्य, प्रेम सहानुभूति और सत्य के पथ पर उन्नति करेंगे। अंतिम बात भी साफ़ कर दूँ। जब मा-बाप लड़कियों को उनके ऊपर छोड़कर विदेश में पढ़ने को भेजते हैं तब उनके चरित्र का ज़िम्मेदार कालेज नहीं होता, मिशन नहीं होता। वह स्वयं होती हैं। कालेज में क्या ईसाई लड़के ईसाई लड़कियों से प्रेम की दुश्चरित्रता नहीं दिखाते जो आज है कल नहीं है, केवल शारीरिक सुख मात्र है ? मिशन के अंगरेज़ पादरी और मेमों को ख़ुशामद किये जाओ, वजीफे लिये जाओ, अंगरेज़ी ढंग पर कोर्टशिप करके प्रेम करो, छोटी नौकरी करके मर जाओ, जीवन भर साहब के गुणगान करो, हिंदुस्तानियों से घृणा करके अंगरेज़ों को देवता समझो, ईसाई होकर भी कभी उनसे बराबरी करने का साहस न करो, यह मिशन सिखाता है। मिशन ने हमारी हड्डियों की नींव पर साम्राज्यवाद का महल खड़ा किया है। उसने हमारे ख़ून में ग़ुलामी के कीड़े भर दिये हैं जो भीतर ही भीतर हमारा ही रक्त चूसकर, हमें खाकर, मोटे हो रहे हैं। मिशन ने हमारी भारतीय परंपरा में एक ऐसा विदेशी विष मिलाया है जिसने हमें हास्यास्पद बना दिया है। कहाँ हैं हिंदू-मुसलमानों के झगड़े दुनिया को दिखाकर हिंदुस्तान को बदनाम करनेवाले ? वही क्या ईसाइयों में नहीं हैं ? मिशन ने दलितों को मनुष्य नहीं बनाया है, मनुष्यता बेचनेवाले जानवरों का एक समूह बनाया है, जो फिर भी घृणा से दबे हैं ; बस अब वे पिंजरे में नहीं चाँदी की जंज़ीर से बँधे हैं। मिशन ने धोती की जगह साहब की पुरानी पतलून पहनना सिखाया है। हमारा विश्वास हमारा नहीं रहा। हमने सत्य के लिए उठी तलवार को स्वार्थों में लिप्त होकर कलुषित विद्रोह कहा है, हमने मनुष्यता का अपमान किया है। संसार इसे कभी भी नहीं भूलेगा।

आपको अपने ऊपर विश्वास नहीं, तभी अपने घर की स्त्रियों पर अविश्वास है। आप ठीक हैं क्योंकि आपमें गुंडों का दमन करने का साहस नहीं है। आखिर आप भी तो टट्टी की आड़ में वही शिकार करते हैं ? यह समझना भूल है कि हिंदू-

मुसलमानों के रूप और धन से लड़कियाँ आकर्षित होंगी, क्योंकि ईसाइयों के पास यही नहीं है। क्या हिंदुस्तान की काली औरतें अंगरेज़ों पर मोहित हैं? हिंदू और मुसलमान अपनी रूढ़ियों के पाप से दबे हैं, हम भी वैसे ही हैं। हमारा गर्व व्यर्थ है। कुत्ते को सोफ़े पर बिठाने से साम्य नहीं हो जाता। हमारा भला करने की आड़ में जिन्होंने हमसे मनुष्यता छीन ली, मैं उनसे विद्रोह करती हूँ। यदि लड़के-लड़कियाँ अलग किये जायें, तो कालेज में सहशिक्षा रोक दी जाये, स्वयं ईसाई सभा में विभाजन हो जाये। फिर देखें कितने धार्मिक हैं। नीचे बहनेवाला हर जगह नीचे बहेगा। और यदि हो सके तो संसार में स्त्री पुरुष अलग-अलग कर दिये जायें। अविश्वास ही धर्म बने, सत्य केवल विकारमात्र रह जाये।'

रानी बैठ गई। कोई भी संतुष्ट नहीं हुआ। जब बाजी हारने पर खिलाड़ी पहुँचने लगता है, तो वह खेल उठाने की सोचता है। नैतिक सत्यवादी मूर्खों में दब जाता है। यही ईसा के साथ हुआ था। रानी के बैठते ही बातें प्रारंभ हो गईं। मैक्सुअल ने कहा—हरी ने बड़ा ज़ोर मारा। इश्क हो तो ऐसा हो। कोलाहल बहुत बढ़ गया। रानी ज्वालामुखी की भाँति फुँकार उठो। किंतु मुख पर विकार न आकर वही गांभीर्य छाया रहा। राजमोहन ने रानी के पास आकर कहा—आज तुमने इज्जत रख ली रानी बहिन! मुझे तो आशा न थी।

रानी ने धीरे से कहा—राजमोहन! विनोद के पतन के लिए मैं जिम्मेदार हूं। वह स्वतंत्र विचारों का था, किंतु मैंने उसे बेवकूफ बना दिया। मेरा काम हो गया। मैं बदला ले चुकी हूं। सांप को दूध पिलाया है। देखना चाहती हू, वह फन मारे और पत्थर पर पटककर उसमें से रक्त निकल आये। तुम तो विक्षुब्ध हो जाओगे, किंतु मैं तब हँसूँगी।

सभापति ने उठकर कहा—और कोई बोलना चाहे तो बोले। बोलने की यहाँ पूर्ण स्वतत्रता है।

कोई नहीं बोला। सभापती ने फिर कहा—तो मैं प्रस्ताव पर वोट लेता हूँ। पहले वे हाथ उठायें जो इसके पक्ष में हों।

रानी ने हाथ उठा दिया। राजमोहन ने भी कांपता हुआ हाथ उठाया, जैसे

महात्मा ईसा के दो हाथ उठे हों, आनेवाली पीढ़ियों को आशीर्वाद देते से, माता-पिता के हाथ-से ··

लेकिन और कोई हाथ नहीं उठा। प्रस्ताव रद्द कर दिया गया।

तीन ही दिन बाद रानी रेनाल्ड और राजमोहन को कालेज से डिसप्लिन खराब करने के अपराध में निकाल दिया गया। बोलने की पूर्ण स्वतन्त्रता ने उन्हें स्वतंत्र कर दिया।

———

[३५]

दूध की मक्खी

रेस्त्राँ पर वैसी ही घनी भीड़ थी जैसी कालेज में वर्ष प्रारंभ होने के समय चुनावों में होती थी। आज मास्टर की गाड़ी चली है। चलती तो सदा है, लेकिन राह में दचके लगाना आवश्यक है। नित्य साँझ को वहाँ पार्टियाँ जमती थीं। किंतु आज तो बहुत से वहाँ झाँकने तक में घबरानेवाले आ पहुँचे थे और बाक़ायदा कुर्सियों पर डटे हुए थे। भीतर के कमरे में कमल, मैक्सुअल और वीरेश्वर चाय पी रहे थे। तीनों पर असतोष की एक भारी भावना थी।

कल रात एक तूफ़ान की गड़ागड़ाहट हुई थी। पहले तो अविश्वास के वोट का 'मोशन' तैयार होने में ही कठिनाई हुई, क्योंकि विधान के अनुसार प्रेसीडेंट में कमियाँ पाना कठिन था, लेकिन उनको ढूँढ़ लेना ही अत न था। तीन चौथाई कालेज के विद्यार्थियों के हस्ताक्षर कराना भी कम कठिन नहीं था। फिर भी यह काम बहुत ही गुपचुप हुआ। वीरेश्वर ने पहले सज्जाद की ओर बोलने का प्रयत्न किया किंतु जब वह अकेला पड़ गया, कमल की ओर ही उसे अपना कल्याण दिखाई दिया। अध्यापकवर्ग को तनिक भी पत्ता नहीं खड़का। फिर सज्जाद से जैसे हवा ही कुछ कह गई। और कल रात पार्लियामेन्ट हुई। असली पार्लियामेन्ट में भी भारत और मानवता के प्रश्न पर केवल खेल होता है, यह तो उसकी भी नकल है। मिस ऊषा और मिस मुमताज बोलनेवाली थीं, इसलिए हाल में काफ़ी लोग आये थे। लिटरेरी सेक्रेटरी ने स्पीकर के आने की सूचना दी। आज सब लोगों पर एक भयकर सन्नाटा छाया हुआ था। सब लोग खड़े हो गये। सज्जाद गाऊन पहने आकर बैठ गया। सब बैठ गये। सेक्रेटरी पहली मीटिंग की कार्यवाही सुनाने लगा। उसकी आवाज काफ़ी सुनाई देने योग्य थी, किंतु कमल ने कहा—सर! आवाज़ सुनाई नहीं पड़ रही है।

सज्जाद ने कोई ध्यान नहीं दिया। वहीद वैसे ही पढ़ता गया। उसके समाप्त करने पर सज्जाद ने उठकर कहा —आप लोगों के सामने यह मिनिट्स हैं। आपमें से किसी को कुछ आपत्ति हो तो बताइये।

वह बहुत भलमनसाहत से बोला था किंतु उसकी बात में सबको अभिमान झलकता दिखाई दिया। वे चीलों की तरह उसको ओर देखते रहे। कोई बड़ा प्रोफेसर हाल में नहीं था। दो-चार रीडर अवश्य इधर-उधर देखकर चौकन्ने हो रहे थे। उन्हें आशका थी और इसी लिए वे लड़कियों के आस-पास ही घूम रहे थे।

बहुत से लड़के एक साथ खड़े हो गये और मतलब बेमतलब की बातें करने लगे। सज्जाद उठकर खड़ा हो गया। वह गरजकर बोला—बैठ जाइए आप लोग, एक-एक करके बोलिए।'

और तब कोई भी नहीं बोला--मिनिटबुक बंद करते न करते सज्जाद ने सुना कोई उठकर कह रहा था--सर! हमारे प्रस्ताव का क्या हुआ?

सज्जाद ने पूछा--कौन सा प्रस्ताव?

'आपके प्रति अविश्वास का प्रस्ताव।' उत्तर अपनी उद्दंडता से लहर उठा।

'किसपर अविश्वास?' सज्जाद की आवाज भर्रा गई। सबने उसे सुना।

लड़का बोला—आपके विरुद्ध, प्रेसीडेंट के विरुद्ध।' जनसमाज ठठाकर हँस पड़ा। उस कोलाहल के रुकने पर सज्जाद फिर कुर्सी खिसकाकर उठ खड़ा हुआ। सब चुप हो गये। सज्जाद ने गंभीर स्वर से कहा— इस समय मैं प्रेसीडेंट नहीं, स्पीकर हूँ। अतः यह बात यहाँ अनुपयुक्त है। स्पीकर को प्रेसीडेन्ट के विरुद्ध अभियोग पर राय देने का कोई अधिकार नहीं होता।

बहुत कम हँसे। कमल ने क्रोध से कहा—नहीं, तुम्हारे खिलाफ ही, स्पीकर के खिलाफ ही।' सज्जाद विचलित-सा दिखा। उसने कोट के बटन पकड़कर कहा—नोटिस मुझे तीन बजे के बाद मिला, अतः उसपर विचार नहीं हो सकता, दूसरे उसमें प्रेसीडेंट शब्द का प्रयोग है, तीसरे विधान के अनुसार आप बिना मेरे हस्ताक्षर के इसे आगे नहीं ले जा सकते। मैं हस्ताक्षर करने से इंकार करता हूँ।

उसके बैठते ही पहले लड़के ने कहा—हम लोग असहयोग करते हैं। और देखते ही देखते तीन चौथाई लड़के उठकर चले गये। भीतर रह गईं लड़कियाँ, रीडर

और कुछ लड़के जो या तो रीडरों के पिट्टू थे या सज्जाद के मित्र थे। बाहर जाते ही लड़कों ने कोलाहल और दगा मचाना शुरू कर दिया, गालियाँ बकीं, आवाज़ें कसीं। उस शोर से कोई कुछ सुन नहीं पाया। सज्जाद ने मेज़ पर से रूलिंग रौड उतारकर जमीन पर रख दी और कहा—मैं मीटिंग समाप्त करता हूँ। और वह उतरकर नीचे आ गया। वहीद ने कापी बंद कर दी। प्रधान मंत्री और विरोधी दल के नेता पहले ही चले गये थे। एक-आध ईंट हाल में घुस आई। रीडरों ने हाल के फाटक बद करवा दिये। बाहर तूफ़ान की आँधी की तरह लड़के गरजते रहे और भीतर ये लोग कमरा बद करके बिजली की चमक पर डरनेवाली युवती की भाँति निस्तब्ध खड़े रहे। जब कोलाहल धीमा पड़ा तो ये लोग बाहर चले।

बाहर प्रबध और ही हुआ था। बहुमत ने यही मत प्रतिपादित किया कि सज्जाद को पीट देना चाहिए। लेकिन जब सज्जाद बाहर निकला, तो किये कराये पर पानी फिर गया। चारों ओर रीडर थे, उनके भीतर लड़के, उनके भीतर सज्जाद और लड़कियाँ थीं। वे सब ऐसे गंभीर और चिंताहीन निर्भय-से चल रहे थे कि कोई भी उनपर हाथ उठाने का साहस न कर सका। दस कदम चलकर सज्जाद अँधेरे में गायब हो गया। लड़के लुटे हुए-से खड़े रहे।

वीरेश्वर से कमल कह उठा—कोई नहीं, कोई नहीं, सज्जाद को देख लेंगे, स्टाफ़ को भी देख लेंगे।

सब हँस पड़े।

रीडर मैथ्यूज ने जाकर रात ही को सारा किस्सा प्रोफ़ेसर मिसरा से कहा—प्रोफ़ेसर मिसरा बहुत हँसे। और अंत में बोले—मैं अभी प्रिंसिपल से जाकर कहता हूँ सब।

उस समय रात के ग्यारह बजे थे। और प्रिंसिपल उस दिन की अंतिम सिगरेट का अंतिम कश खींच रहा था।

बेचैनियों में रात गुज़र गई और ऐसी गुज़री जैसे वह रात सौ दो सौ घंटे की थी।

चाय का प्याला उठाते हुए वीरेश्वर ने कहा—रात की सब बातें प्रिंसिपल के पास पहुँच गई हैं।

मैक्सुअल ने टोककर कहा—कैसे?

कमल ने कहा—मैक्सुअल! उसे कहने दो। आज तक उसने कभी ग़लत बात नहीं की। विश्वास के बिना हम कुछ भी नहीं कर सकते।

वीरेश्वर ने पूछा—अब क्या होगा?

कमल चाय पीता रहा। दरवाज़ा बंद रहने के कारण भीतर धुँधलापन था। ऊपर के ढालुवाँ रोशनदान में से हवा और प्रकाश घुस रहे थे। नीचे गर्म फ़र्श बिछा था। साफ़ मेजपोश, पुँछी हुई कुर्सियाँ और गर्म-गर्म चाय। कमल सिगरेट पीता जाता था और राख को अपने पैरों पर ही गिराता हुआ बेसुध-सा चाय पीने लगता था। तीनों गंभीरता से सोच रहे थे। सिगरेट का धुआँ उस अँधेरे में सफ़ेद-सा चिलक रहा था। वीरेश्वर ने फिर एक बार प्याले भरे। तीनों फिर पीने लगे। तब बहुत देर बाद कमल ने कहा—आपको मालूम है, कालेज में आते ही मेरी आज प्रिंसिपल से मुलाकात हो गई।

'अरे सच!' दोनों के प्याले होठों तक जाकर ठहरे ही रह गये।

कमल हँसा—'हाँ! और वह मुझसे मिलना चाहता है, मेरे साथ दो आदमी और हैं।'

धड़कते दिल से दोनों ने एक दूसरे की तरफ़ देखा और फिर दोनों ने एक साथ कमल की तरफ देखा।

कमल ने कहा—वीरेश्वर और मैक्सुअल! और अब क्या होगा, इसी की प्रतीक्षा करनी है। रीडर मैथ्यूज सदा से कामेश्वर और सज्जाद का दोस्त रहा है। उसने सिर्फ हमारी बुराइयाँ की होंगी। इसी से प्रिंसिपल हमारी बात का कोई विश्वास नहीं करेगा।

मैक्सुअल ने भर्राई आवाज में पूछा—कै बजे चलना है?

कमल ने उठकर कहा—एक बजे।

एक बजने में सिर्फ पाँच-छः मिनट की देर थी। तीनों उठकर बाहर आ गये। बाहर लहरों के तीर से टकराने का-सा शब्द हो रहा था। लड़के बातें कर रहे थे। कोई कह रहा था—यार, उसकी क्लास खत्म होनेवाली है। एक बार दरवाजे पर मिलेंगे। जल्दी चल यार, वह तो उड़ती है···

शाम को सात बजे रेस्तराँ के बाहर बहुत भीड़ थी। सब लोग उत्सुकता से दबे जा रहे थे।

बिखरे हुए बालोंवाला कामेश्वर हाथ के टेनिस रैकेट को बगल में दबाये इधर-उधर घूमता हुआ सिगरेट फूँक रहा था। उससे कोई बोल नहीं रहा था। न वही किसी की ओर देखता था। उसे इन सबसे कोई मतलब नहीं था। कमल ने आकर अचानक ही उसके कंधे पर हाथ रखा।

'हलो भाई कमल।' कामेश्वर ने चौंक कर कहा—अरे भाई, यह क्या झगड़ा है। आखिर मुझसे तुमने पहले ही क्यों न कह दिया? सज्जाद भी तो अपना ही आदमी था?

कमल ने गंभीरता से कहा—जो आदमी चुनाव और कालेज-पालिटिक्स (राजनीति) से दूर होता है वह ज़रूर सबका दोस्त होता है।

कामेश्वर अकपका गया। कमल ने उसका हाथ पकड़कर कहा—चलो भीतर के कमरे में बैठेंगे। जहाँ दो और लोग हमारी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। तुम आज इधर कैसे भटक पड़े?

कामेश्वर ने कहा—आज मेरा जी बहुत बेचैन है। मुझे कोई बात करने को नहीं मिला। इतनी देर से यहाँ प्रतीक्षा कर रहा था कि कोई जान-पहचान का तो मिल जाये। मुझे तो अकेले खड़े-खड़े कोफ़्त होने लगी थी।

कमल मुस्कराता रहा। लेकिन यह मुस्कान एक विजयी की नहीं थी। जूए में हारकर जब अपनी खिसियान छिपाने को खिलाड़ी मुस्कराता है, वही मुस्कान उसके मुख पर लोट रही थी। आज कमल अच्छा लग रहा था। लुटे हुए पथिक से हर कोई सहानुभूति जताता है।

कामेश्वर कुछ बड़बड़ाता रहा। उसमें भी अब वह जोश नहीं रहा था ऊबकर बोला—आओ भीतर ही चलें। कौन बैठा है वहाँ?

अंदर जाते ही उन्होंने फिर दरवाज़ा बंद कर लिया। बिजली की बत्ती जल रही थी। उसका प्रकाश मेज़ पर रखे प्यालों पर पड़ रहा था और वे चमक रहे थे। लट्टू के चारों ओर झाड़-फानूस लटक रहे थे। उनमें से सतरंगी रोशनी पड़ रही थी, किंतु सिगरेट के धुएँ ने उसे प्रायः ढँक ही दिया था। कामेश्वर को देखते ही सब उत्साहित हो गये।

'यहाँ। कामेश्वर, यहाँ।' वीरेश्वर ने कुर्सी की ओर इशारा करते हुए कहा।

कामेश्वर उस कुर्सी पर बैठ गया। जब मैक्सुअल प्याले भर चुका तो उन्होंने

अपनी सिगरेटें सुलगा लीं । बाहर लड़के गुल मचा रहे थे । कई स्टोव बाहर आवाज़ करके जल रहे थे ।

कामेश्वर ने कहा—यार ! क्या ग़जब कर डाला ? और इस कमबख़्त बुढ़ापे में ?

चारों ओर धुआँ काँप उठा । किसी ने कोई जवाब नहीं दिया । जब सबने पहला प्याला समाप्त कर दिया और मैक्सुअल फिर उँडेलने लगा तब धीरे से वीरेश्वर ने कहा—मैं प्रिंसिपल से मिला था । अब क्या पूछते हो ?

कामेश्वर ने प्रश्न भरी आँखों से उसे देखा ।

मैक्सुअल बोला—देखते ही उसने मुझे बुलाया और बहुत शराफ़त से पेश आया । फिर धीरे-धीरे मतलब की बात पर आया । बोला—तुमने यह किया ? ऐसा इस कालेज में अभी तक कभी नहीं हुआ था । इसमें तो बदनामी का डर है । तुम चाहो तो पार्लियामेंट और यूनियन सभा को बंद कर दिया जाये । मगर इसका क्या मतलब कि तुम किसी को पहले तो प्रेसीडेंट बना दो और जब वह तुम्हारी गुलामी में न रहे तो तुम उसकी ज़िंदगी ही बिगाड़ने की कोशिश करो । यह तो रोना हुआ । इसमें कालेज के छात्रों का गांभीर्य कहाँ रहा ? मैं भी सुनता रहा । जब वह कह चुका तो मैंने कहा कि मैं उस पार्टी का हूँ जो सज्जाद के विरुद्ध है । हमने अपना मौक़ा ढूँढ़ा । प्रजातंत्र का अर्थ ही यह है । हमने व्यर्थ कोई बात नहीं की ।

प्रिंसिपल हँसा । बोला—बच्चों की-सी बातें न करो । मुझे सज्जाद के विरुद्ध विधान के अनुसार तो कोई बात नहीं मिलती । उसने मुझे बोलने का मौक़ा ही न दिया । अंत में बोला—तो अपनी ग़लती महसूस करते हो न ?

मैं चुप रहा । मैंने समझा, शायद बात यहीं ख़त्म हो गई । मुझे चुप देखकर वह फिर बोला—मुझे बड़ी खुशी हुई है कि तुमने अपनी ग़लती महसूस की है । आज सुबह स्टाफ़ ने एक रूलिंग दी है । उसके मुताबिक़ तुम ज़रूर काम करोगे । आओ, माफ़ी लिख दो कि तुम्हें अपनी हरकत पर सख़्त अफ़सोस है । मुझे आना-कानी करते देखकर बोला—तुम्हारा साल बिगड़ जायेगा । वजीफा रुक जायेगा, तुम कालेज से निकाल दिये जाओगे । तुमने वह काम किया है जिससे विद्यार्थी संघ लाभ उठा सकता है । लिख दो ।

मैं काँप उठा । काँपते हाथों से मैंने दस्तखत किये ।

कामेश्वर स्तब्ध बैठा रहा । मैक्सुअल ने हाथों में मुँह छिपा लिया । वीरेश्वर ने

सिर झुका लिया। उसकी मुद्रा से प्रकट था कि वह भी माफ़ी माँग आया था। किंतु कमल हँसा और उसकी हँसी उस माफी माँगने से भी ज्यादा दर्दनाक थी। कामेश्वर ने चौंककर उसकी तरफ देखा। कमल हँसता रहा। कामेश्वर ने उसका कंधा झकझोरकर उससे कहा—कमल! इस तरह इनका अपमान न करो। कालेज और घर में बड़ा अंतर होता है। कोई नहीं जानता कि किसके घर में किसकी क्या हालत है! आजकल जीना भी बहुत मुश्किल है।

कमल चुप हो गया। कामेश्वर ने सिगरेट का अंतिम कश खींचकर सिगरेट फेंक दी और साथ ही कमल उन तीनों को देखकर ठठाकर हँसा पड़ा उसने कहा—माफ़ी मांग ली और लोगों से आकर कह दिया कि प्रिंसिपल क्या कर सका हमारा! मज़ाल है उसकी कि कुछ कर सके। मगर कल जब वह ही सुबह ऐसैंबली में पढ़कर उन कागज़ों को सुनायेगा, उस वक्त··· कमल बीभत्स कठोरता से ठहाका मारकर हँसा। कामेश्वर सिहर उठा। कमल ने धीरे से बुझते हुए कहा—मैंने माफ़ी नहीं माँगी, मुझे कालेज से निकाल दिया गया है।

तीनों स्तब्ध बैठे रहे, किंतु कमल फिर हँसने लगा। आज उसके पास और था ही क्या······?

—

[३६]

दान का प्रतिशोध

लवंग का जीवन क्या है, यह सबके लिए एक समस्या बन गया है। वह चुप ही रहती है। भगवती को वह अब कभी नहीं मिलती। सारा जीवन प्रायः छिन्न-भिन्न हो गया-सा लगता है। सभी एक दूसरे से मिलते हैं, किंतु वह उत्सुकता किसी में भी नहीं है। मा को अकेली छोड़कर ही भगवती जबसे गाँव से फिर कालेज में लौट आया है, अब किसी से नहीं मिलता। उस दिन लीला का हृदय व्याकुल किया था। इंदिरा को वह सब नहीं मालूम। कामेश्वर भी भगवती से नहीं मिलता। हृदय में संदेह की गाँठ पड़ गई है। राजेन की मृत्यु का शोक अधिक दिन तक किसी के भी हृदय में नहीं टिक सका। किंतु कभी-कभी जब भगवती सोने जाता है, राजेन का मुख उसकी आँखों के सामने नाचने लगता है। भगवती व्याकुल होकर करवटें बदलने लगता।

लवंग को विधवा के वेश में देखकर कालेज के लड़कों को कोई शोक नहीं हुआ। वे सब उसे टके सेर समझते थे और इसमें उन्हें कहीं भी अपने विचारों को सुधारने की सहनशीलता नहीं थी।

और लवंग का एक अनोखा रूप प्रारंभ हो गया है। इसे कालेज में एक लड़की जानती है, वह है लीला।

राजेन्द्र की मृत्यु को प्रायः दो महीने बीत चुके हैं। वह निर्दयी था, उसने वे आभूषण उतरवा दिये, वह सजधज छीन ली और एक प्रकार से उसे नंगा करके चला गया। देर तक लवंग बैठी रहती। चुपचाप कुछ सोचा करती। संध्या की उतरती धुंध में धीरे-धीरे उसकी दृष्टि जाकर लय हो जाती और फिर तन मन उस अंधकार में डूब जाते। वसंत की वह सुलगती वायु झनझनाने लगती। पेड़ में से ध्वनि

आती—आ रही हो ? और लवंग सूनी आंखों से ऐसे देखती जैसे मुझे बुलाया है ? सच, विश्वास नहीं होता।

पेड़ों पर बौर फूटती है, यहाँ तक कि नीम तक में .एक सुगंध फैल जाती है और धूप सुनहली होती है, दिन कैसे मधुर होते हैं···

रात को आकाश में तारे निकल आते हैं। कितना असीम विस्तार फैल जाता है। उन तारों के बारे में वह कुछ नहीं जानती, किंतु वे मन की तृष्णा को जगा देते हैं। एक पुरुष था तो करोड़ों मील पार वे भी सूने नहीं थे। आज वह पुरुष नहीं है तो अपना मन भी खाली है, शून्य है।

वायु कैसी मतवाली होकर चलती है। सरसों के खेत फरफराते हैं, कल वह उन्हें देखती, उनके फूल अपने जूड़े में लगा लेती और कोई होता जो उसे बाहु में बाँधकर चूम लेता। कितना अच्छा होता वह सब ? पर अब तो सब व्यर्थ है। वह जो जगह खाली हुई है उसे वह कैसे भर सकती है ?

लवंग चौंक उठी। उसने देखा। समर आया था। इतने बड़े ससार में आज उसका कोई नहीं। केवल एक यह ही है जो दुःख में सहारा बन गया है। कैसा निरीह ! कैसा उदास ?

भैया को तो कोई मतलब नहीं। सुना था, राजेन मर गया और धड़ाम से कुर्सी पर बैठ गये थे। फिर कहा था—लवंग ! ज़मींदारी है। घबराओ नहीं। पिताजी के रहते भी और बाद में भी सब तुम्हारी ही है। लेकिन मैं एक राय देता हूँ। मानना, न मानना तुम्हारा अधिकार है।

लवंग ने आँख उठाकर देखा। भैया ने कहा—तुम फिर से कालेज लौट जाओ।

और लवंग कालेज लौट आई। मन की एक फांस थी। वह तो अब भी है। जब भगवती की उसे याद आती है तब हृदय व्याकुल हो उठता है। तो क्या वह आज वास्तविक मालिक है ? कल जिसे उसने नौकर रखने को बुलाया था आज वह उसका संरक्षक हो सकता है ?

फिर धागा टूट जाता, या उलझ जाता। बड़ी देर में जब दोनों छोर मिलते तब वह उन्हें जोड़ने का प्रयत्न करती। किंतु इसका परिणाम और कुछ नहीं, हृदय में एक गाँठ पड़ना ही तो था। दूर करना चाहती है वह उस गाँठ को, किंतु फिर डोरा एक नहीं रहता, टूट जो जाता है।

क्या सचमुच जो वह कहता है उसी में विश्वास भी करता है या यह सब केवल दिखावे की बात है ! क्या वह वास्तव में इस सबसे इतनी घृणा करता है ! क्योंकि उसकी मा ने यह पाप किया था ? गैरकानूनी बेटा ! क्या ले सकेगा वह ? मुकदमा लड़ेगा तो हार ही जायेगा और फिर अदालत में जाने के लिए पैसे चाहिए। किंतु अकेली रहकर कैसे वह सब काम सँभाल लेगी ?

फिर कुछ समझ में नहीं आता। याद आता कालेज में हाजिरी पूरी नहीं है। शायद उसे इम्तहान में बैठने भी नहीं दिया जाये। लेकिन फिर ? फिर वह क्या करेगी ? इस साल जैसे भी हो सब पढ़ाई-वढ़ाई समाप्त कर दी जाये, और उसी समय बगल के बँगले में से यौवन-द्वार पर खड़ी कुसुमा की वीणा की झनझनाहट और वह मादक स्वर जो कोयल की कूहू की तरह दहकते अंगार-भरा, आकाशगंगा की तरह विशाल-विशालतर होकर क्षीण पृथ्वी को दूर ही दूर से घेर लेता और तब सुलगती, चाँदी की दूधिया चाँदनी जगा देती, सुला देती, समस्त संसार, ताल, पेड़, घास, घर; दूर काली सड़क की प्रकाश में चमकती सफेद सतह ! और फिर पानी पर बहती-बहती चाँद— बड़े-से चाँद की परछाहीं; वह कोने में से निकलकर झोंका सब ओर फैल गया है, कोई कह उठा है— सूनापन ! अँधेरा ! और लवंग वक्षःस्थल पर दोनों हाथ रखकर सुनती है हृदय की धड़कन…सारी सृष्टि यहीं गरज रही है, कौन बुला रहा है…यौवन ? गर्म लोहे से दाग दो न यह उन्माद कि पीड़ा से घायल निःशक्त होकर गिर जाये, फिर प्यास नहीं लगे, कंठ इतना सूख जाये कि पानी की आवश्यकता ही न रहे।

घृणा भी है, स्नेह की अज्ञात भावना भी है, उपेक्षा भी है, सबका प्यार पाने की गुप्त लालसा भी है, चाहती है सबसे घुलमिल जाऊँ, किंतु मन को शीघ्रता से विश्वास नहीं आता और अभी तक जो प्यास कभी प्यास नहीं मालूम दी उसे दो बूँद कंठ में डालकर कितना तीव्र बना दिया है उसने। चला गया है और समाज ने एक स्वर कह दिया है—तेरा जीवन प्यास को फूँक देने में है, क्योंकि अब तुझे पानी कभी भी नहीं मिलेगा। इसी से तो जीवन और भी भयावना मालूम देता है। लवंग खाली हाथ पसार देती है। गरीब हो, अमीर हो, कोई कैसा भी हो, किंतु क्या उससे भी गया बीता है ? साधन हैं, किंतु उन्हें भोगने का अधिकार नहीं रहा। और फिर अनेक-अनेक चित्र याद आते। लोग सबकी खिल्ली उड़ाते हैं, किंतु सबकी

गुप्त अभिलाषा होती है, काश वही उस स्थान पर होते। और लवंग विधवा थी। वह सारे संसार को अपने बंधनों में से ऐसे देखती जैसे वह एक वेश्या को देख रही थी, जिसे सब बुरा कहते, हैं किन्तु जिसका आनंद स्त्रियों की टीस है, यौवन पुरुष की तृष्णा है।

अखबार आता। कितना बड़ा युद्ध चल रहा है। किंतु लवंग के लिए उसका मूल्य? व्यर्थ है, सभी व्यर्थ है, वह उन्माद भी व्यर्थ है, यदि लवग में उसके प्रति अट्टहास करने की शक्ति नहीं है।

और फिर समर! कितना स्नेहशील है, और फिर भगवती·· वह क्या करे? लवंग बार-बार न रोया कर···अभी तो दो ही महीने बीते हैं, जाने कितना लंबा जीवन पड़ा है · दीर्घ आज राह सचमुच कँटीली हो गई है···पग-पग पर रेत धधक रही है, पाँव जल रहे हैं और भीतर मन का दीपक अब भी बुझ-बुझकर जल-जल उठता है, जैसे समस्त जीवन, समस्त आकुल यौवन, एक लपट है, निराधार शून्य में हाहाकार कर रहा है···

साँझ की वेला थी। 'एकसरि तारा' आकाश में निकल आई थी। भगवती कालेज की फील्ड पर टहल रहा था। एकाएक एक मोटर के हार्न ने उसका ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। देखा, लीला उतर आई थी। उसे ही बुला रही थी। विस्मय हुआ। उपेक्षा पीछे-पीछे ही चली आई। क्यों आई है? सदा के लिए सब कुछ हो गया, फिर भी इसकी दावा पर अभी घोर वर्षा नहीं हुई।

वह पास गया। लीला ने आतुरता से कहा—भगवती! आज मैंने तुम्हें व्यर्थ नहीं बुलाया।

'क्यों, क्या बात है?' भगवती ने पूछा। उसने अपने कानों से सुना, उसका स्वर कुछ रूखा था। लीला ने कुछ बुरा माना। उसने कहा—चलो मेरे साथ मोटर में। आज ही तुम्हें एक मजेदार चीज दिखाऊँगी।

भगवती ने कुछ सोचा। फिर कहा—चलो।

भगवती बैठ गया। लीला ने मोटर स्टार्ट कर दी। भगवती को विस्मय हुआ—आज इतनी हिम्मत कैसे आ गई? दिन दहाड़े बिठाये लिये जा रही है। आज कोई डर नहीं। कल तक तो बात करने में साँस भिंचती थी। किंतु लीला आवेश में थी। उसने वह सब बिल्कुल नहीं देखा।

एकाएक वह चौंक उठा। उसने कहा—कहाँ जा रही हो ?

'पार्क की ओर', लीला ने उसकी ओर देखे बिना कहा।

पार्क की ओर ? क्या दिमाग बिगड़ गया है। पार्क की ओर ? क्यों ? इतनी निर्भीक !

सड़क घूमी। लीला ने गियर बदला। यह पार्क आ गया। लीला ने ज़नज़नाती तेज़ी से गाड़ी ले जाकर एक पेड़ के नीचे खड़ी कर दी। और सड़क पर उतरकर कहा—मेरे साथ आओ।

भगवती को फिर विस्मय ने काट लिया। लीला तेजी से कदम बढ़ा रही थी। झाड़ियाँ आ गईं। भगवती ने चौंककर पूछा—कहाँ जा रही हो ?

'मेरे साथ आओ न ?' लीला ने आतुर होकर कहा।

'पहले मुझे बताना होगा।' और भगवती ने अपने चारों तरफ की झाड़ियों को ओर देखा जिन्होंने उन दोनों को सबसे छिपा लिया था।

'तुम्हें मुझपर संदेह है ?' लीला ने लौटकर पूछा।

'नहीं' घास पर बैठते हुए भगवती ने कहा—मैं तब तक नहीं चलूँगा जब तक तुम अपने मन की बात नहीं बताओगी।'

लीला ने कहा—'तुम मूर्ख हो।'

भगवती ने कहा—'वह मैं जानता हूँ।'

'भगवती !' लीला की आवाज़ तीक्ष्ण हो गई। किंतु भगवती बैठा रहा। लीला भी हारकर बैठ गई।

भगवती ने कहा—क्यों लाई हो मुझे इस एकांत में ?

लीला ने कहा—मैं तुम्हारे दुःख से दुखी हूँ।

'हूँ।' भगवती की आवाज़ निकली। 'फिर धन्यवाद !'

लीला ने चिढ़कर कहा—तुम मूर्ख ही नहीं हठी भी हो।'

भगवती हँस दिया। 'क्या बात है, कहतीं क्यों नहीं ?' उसने सरल स्वर से कहा।

लीला ने धीरे से कहा—एक बात कहूँ ?

भगवती ने सिर हिलाया।

'आज समर और लवंग इसी पार्क में आये हैं कहीं। ढूँढने पर मिल जायेंगे।

भगवती हठात् गंभीर हो गया। पूछा—'क्या होगा ढूँढ़कर?'

लीला सकते में पड़ गई। कैसे कहे। उसने कहा—तुम नहीं समझते जैसे।

'समझता हूँ, पर समझना नहीं चाहता।' स्वर दृढ़ था।

'जानते हो' लीला ने कहा—लवंग कितनी घमंडिन है। वही तुम्हारे रास्ते का एकमात्र काँटा है...

'काँटा?' भगवती ने चौंककर पूछा—'कैसा काँटा?'

लीला ने कहा—यदि तुम उसे इस समय लज्जित करते हो तो वह सारी जायदाद तुम्हारी हो जायेगी और जो लवग एक दिन तुम्हें नौकर रखने का दंभ दिखला रहीं थी, तुम उसे नौकर रख सकोगे।

भगवती ने देखा। क्या वास्तव में यह सत्य है? लीला में यह स्वार्थ क्यों है? उसने कहा—लीला! उससे भी क्या होगा?

'क्यों?' लीला ने व्यंग्य से कहा—कल तक तो बात-बात पर सुनाते थे, मैं ग़रीब हूँ, मैं ग़रीब हूँ और आज जब मौका आया है तो दूसरी शान दिखाने लगे कि मैं रईस नहीं होना चाहता, मैं अमीर नहीं होना चाहता।

'किंतु क्या दूसरों की निर्बलता का लाभ उठाना चाहिए?'

'और दुनिया में होता ही क्या है?'

लीला को मन ही मन क्रोध आ गया। उसने कहा—अच्छा, मान लो तुम्हें इस सबकी आवश्यकता नहीं, लेकिन क्या घर में ऐसी बात होती रहे और तुम देखते रहोगे? हिंदुओं में ऐसा तो नहीं होता।

भगवती हँस दिया। उसने कहा—लीला, कोई कुछ करे, हमें क्या? वे सब भी परिस्थितियों के ही दास हैं। मनुष्य में दुर्बलता होना स्वाभाविक है। अब कोई मुझसे कहे—लीला से प्रेम करना छोड़ दो तो क्या मुझे यही करना चाहिए?

लीला चौंक गई। उसने कहा—भगवती! यह तुमने सच कहा है?

भगवती ने घास पर लेटकर हाथ फैलाते हुए कहा—तो क्या तुम्हें मुझपर विश्वास नहीं हैं?

'विश्वास!' लीला ने सोचा। प्रकट रूप में कहा—तुमसे अधिक और किसमें मेरा विश्वास हो सकता है?

'नहीं लीला,' भगवती ने कहा—तुम मुझे कभी प्रेम नहीं करती थीं। अभी

तक जो तुमने किया वह एक गरीब के लिए तुम्हारी दया मात्र ही तो थी। मैं देखता हूँ, जबसे यह बात खुल गई है, तुम मुझसे घृणा करने लगी हो⋯⋯

बात समाप्त होने के पहले ही लीला ने हाथ रखकर भगवती का मुँह बन्द कर दिया। कहा—यह तुमने क्या कहा भगवती! मेरे हृदय को टूक टूक कर डाला। क्या तुम मुझे भी इंदिरा जैसी ही समझते हो?

भगवती ने बदलकर कहा—इंदिरा की बात जाने दो। उसने कभी मुझे स्नेह के अतिरिक्त आगे और कुछ नहीं दिया। वह कभी मुझसे प्रेम नहीं करती थी। किंतु तुम? तुमने मुझे प्यार करने की बात कही थी। आज तो वह बात नहीं रही। तुम तो मुझसे दूर-दूर भागती हो⋯

'किसने कहा तुमसे?' लीला आवेश में उसपर झुक गई 'तुमसे ऐसा किसने कहा'—वह रो रही थी—'तुमने ऐसा सोचा ही क्यों? यदि लीला मूर्खा है तो तुमने उसे डाँटकर ठीक क्यों न कर दिया? भगवती, तुमने यह क्या कह दिया? मैं तुमसे कभी दूर नहीं हो सकती, मैं कभी तुम्हें घृणा नहीं कर सकती⋯।' लीला के हाथों ने भगवती को घेर लिया, 'कोई भी मुझे तुमसे ससार में अलग नहीं कर सकता। मैं तुम्हारे बिना कभी भी जीवित नहीं रह सकती, भगवती, मैं तुम्हें प्यार करती हूँ, भगवती,' और लीला ने जी भरकर भगवती के गाल को चूम लिया जैसे अँगरेजी सिनेमा में होता है।

भगवती ने कहा—जीवन कितना सुंदर है?

लीला गर्म-गर्म श्वास ले उठी। और उसने मादक रक्तिम नेत्रों से भगवती को देखा। क्षण भर भगवती की आँखों में भी एक छलना नाच उठी, किंतु उसके बाद वह ठठाकर हँस पड़ा। उसने कहा—लीला! यह तुम क्या कर रही हो?

लीला ने चौंककर उसे छोड़ दिया। बैठ गई। वह कुछ भी नहीं कह सकी।

भगवती ने करवट लेकर कहा—और हिंदुओं में ऐसा होता है?

इससे ज्यादा कुछ नहीं। लीला रोने लगी। बहुत रोने लगी। भगवती पड़ा रहा। उसने कहा—बहुत न रोओ। कहीं इस समय लवंग ने हमें देख लिया, तो जायदाद मिलने की जो दो एक उम्मीदें हैं वे भी यहीं खतम हो जायेंगी। वह फिर ठठाकर हँस पड़ा। लीला ने चुप होकर उसकी ओर देखा। आँखों में आँसू थे। भगवती ने उसी के आँचल से उसके आँसू पोंछते हुए कहा—कमबख्त निकल आते हैं, वक्त भी

नहीं देखते। यह कीमती साड़ी आँसू पोंछने के लिए है? रहने दो लीला। रोओ नहीं। कोई देखेगा तो क्या कहेगा? ऐसे तो गाँव की औरतें ससुराल जाते वक्त रोया करती हैं।

लीला ने वीभत्स नेत्र क्रोध से उसे देखा और कहा—मैं तुमसे घृणा करती हूँ।

भगवती ने कहा—धन्यवाद! मतलब यह कि दिल से प्यार करती हूँ।

लीला क्रोध से फुँकारती धम-धम करती उठकर चली गई। जब वह झाड़ियों के पार जाकर अदृश्य हो गई, भगवती हँस पड़ा।

इसी समय लवग उधर से निकली जिधर भगवती की पीठ थी। वह कुछ उन्मत्त-सी थी। उसने देखा, भगवती अकेला पड़ा हँस रहा है। वह ऐसे ठिठक गई जैसे राही पथ में साँप को पड़ा देखकर उठा कदम पीछे धर लेता है।

\+ \+ \+ \+

दूसरे दिन कालेज की एसेंबली में प्रिंसिपल ने पढ़कर सुनाया—कल रात समरसिंह, एम० ए० के विद्यार्थी ने, अपने होस्टल में ज़हर खाकर आत्म-हत्या कर ली। उसने मरते समय एक पत्र छोड़ा है। मरने का कारण लिखा है कि 'मैं किसी भी योग्य नहीं हूँ, अतः अपने जीवन की अपमानित और घृणित सत्ता को अधिक नहीं चलाना चाहता। इसलिए मैं विष खाकर संसार को पवित्र कर देना चाहता हूं।' मैं आप लोगों से मृत आत्मा की शान्ति के लिए दो मिनट खड़े होकर सम्मान प्रदर्शित करने की प्रार्थना करता हूँ।

हाल से निकलते समय चारों ओर सनसनी फैल गई।

दोपहर के वक्त भगवती लेबोरेटरी में टाइट्रेशन कर रहा था। मेज़ पर स्टैंड में ब्यूरेट लगा हुआ था जिसमें एक सफ़ेद द्रव था, जिसके नीचे एक फ्लास्क में लाल रंग के द्रव में वह धीरे-धीरे बूँद गिराने में तल्लीन था।

डाक्टर कुमार ने कंधे पर स्नेह से हाथ रखकर कहा—हो गया?

'जी हाँ, टाइट्रेशन खत्म होने में तो अब देर नहीं, बस मिक्सचर निकालना बाकी रह गया है।'

'ठीक है, शाबाश', डाक्टर कुमार ने हँसते हुए कहा—और वे आगे बढ़ गये। किसी ने झाँककर पूछा—डाक्टर गया?

भगवती ने कहा—हाँ, आओ।

लीला फिसलती-सी भीतर आ गई। उसने कहा—बाहर चलो, मैं तुमसे एक बात कहना चाहती हूँ।

'मैं ज़रा अपना टाईट्रेशन खत्म कर'.....

'टाईट्रेशन! फिर होता रहेगा सब। चलो, चलो।'

भगवती ने मुस्कराकर कहा – चलो।

बाहर पेड़ के नीचे से निकलकर दोनों नागफनी के पास जाकर खड़े हो गये। भगवती ने लीला की ओर देखा—जैसे पूछा हो—अब कहो।

लीला ने कहा—कल तुमने मेरा इतना अपमान किया था, पर अब तो देख लिया?

'क्या?'

'यही कि कल चलते, तो आज समर की मृत्यु नहीं होती।'

'तो क्या', भगवती ने गंभीर होकर पूछा—'तुम्हारा मतलब है, लवंग ने ही समर को विष दिया था?'

'नहीं', लीला ने कहा—किंतु समर ने विष खाया क्यों है?

'अपमानित जीवन से अपने आपको मुक्त करने के लिए। पुरुष का शरीर लेकर यदि वह पुरुष नहीं था तो उसमें लवग का दोष!'

'तुम लवंग की ओर से बोल रहे हो?' लीला ने आँखें फाड़कर पूछा--और लवंग का इसमें कोई दोष नहीं!

भगवती ने दृढ़ता से कहा--मैं उसको अपमानित करके बदला लेना नहीं चाहता। मैं नहीं जानता मैं क्या करूँ! मा से भी आज मैं दूर हो गया हूँ। तुम भी मुझे वास्तव में प्यार नहीं करतीं। गाँव के दृश्य को देखकर आज मेरा मित्र, मेरा कामेश्वर भी संदेहों के कारण मुझे छोड़ गया है, केवल एक आशा थी और वह है इंदिरा। उसने कभी भी अकेले में भी मुझे देखकर आलिंगन करने की चेष्टा नहीं की, उसकी मित्रता में कोई भी स्वार्थ नहीं था।

'तुम झूठ बोलते हो। सरासर झूठ कह रहे हो।' लीला ने कटाक्ष करते हुए कहा--मैंने सब कुछ देखा है।

'क्या देखा है तुमने?' भगवती के होंठ का एक कोना उपेक्षा से पत्ते की तरह बल खाकर मुड़ गया।

'मैंने क्या नहीं देखा है? यह पूछते तो अधिक उपयुक्त होता। मैंने उसे तुम्हारी गोद में बैठे देखा है ढोंगी! मैंने उसे तुमसे उस अवस्था में आँखें मिलाते देखा है। तुमने जो वासना से पतित कहकर मुझे बार-बार अपमानित किया है वह और किसलिए? इसलिए कि तुम्हारा इंदिरा से संबंध था। और क्योंकि तुम्हें मालूम था कि लवंग को यह सब ज्ञात है इसी से तुममें कल इतना साहस नहीं था कि उसे जाकर पकड़ लेते।'

'तुम्हें यह मालूम कैसे पड़ा था कि लवंग कल पार्क जानेवाली थी।'

लीला ने कहा -मुझसे और किसी ने नहीं कहा—मैंने लाइब्रेरी में उन्हें एक दूसरे से बात करते सुना था।

'और तुमने विश्वासघात किया?'

'नहीं, मैं तुम्हें प्यार करती थी?'

'मुझे इसका विश्वास नहीं।'

'तुम्हें क्यों होने लगा? इंदिरा सलामत रहे। तुम तो हम दोनों को ही फाँसे रखना चाहते थे, किंतु वह तो मेरी क़िस्मत थी कि धोखे में नहीं फँसी।'

'लीला, वह मेरी बहिन है।'

लीला ने उपेक्षा से कहा—राजनीति में कम्युनिस्ट होना और प्रेम में प्रियतमा को बहिन बताना आजकल की सबसे बड़ी ईजाद है।

भगवती ने धीरे से कहा—इस विषय पर मैं किसी को भी कोई सफ़ाई नहीं देना चाहता।

लीला ने मुस्कराकर कहा—अब तो तुम इंदिरा से ब्याह कर सकते हो! अब तो तुम्हें धन की कमी नहीं! और तब भी मुझसे बातें करते समय ही तुम्हें अपनी ग़रीबी याद आती थी, इंदिरा को गोद में बिठाते वक्त बिरला बन गये थे!

'अच्छा मान लो यह सब सच है, लेकिन क्या इससे ही तुम्हें इंदिरा से जलन है?'

'जलन नहीं, मैं उसकी प्रशंसा करती हूँ। मैं उतनी चालाक नहीं हूँ। मैं यदि किसी की लड़की हूँ तो इसमें मेरा कोई दोष नहीं। मैं यदि इस तरह पली हूँ तो इसे अस्वीकार कर देना असंभव है।'

'तो तुम कहना क्या चाहती हो?' भगवती ने सिर उठाकर पूछा।

'कुछ नहीं। बस तुमसे बात करना चाहती थी।'

'ओह!' कहकर भगवती हँस दिया। उसने कहा--लीला, एक बात कहूँ, सुनोगी?

'कहो' लीला ने उत्सुकता से पूछा।

'विश्वास तो तुम नहीं करोगी, किंतु सुनकर यदि बुरा न मानो तो मैं कह सकता हूँ।'

'कहो न?'

'देखो! कामेश्वर, समर, समर तो रहा ही नहीं, वीरेश्वर, तुम, इंदिरा और लवंग यही न गाँव गये थे?'

'हाँ!'

'तो इन लोगों ने किसी से भी गाँव के किस्से नहीं कहे। तुम एक काम अगर करना चाहो तो कर सकती हो और मैं समझता हूँ तुम्हें वह करना ही चाहिए।'

'काम का नाम नहीं है?' लीला ने ऊब कर पूछा।

काम से ही तो नाम है मिस लीला!' भगवती ने हाथ फैलाकर कहा—गाँव के सारे किस्से, मैं नाजायज बेटा हूँ, लवंग दुश्चरित्रा है, मैं ढोंगी हूँ, इंदिरा व्यभिचारिणी है, यह सब तुम फैला नहीं सकतीं? मैं समझता हूँ, यह तुम्हारी प्रतिहिंसा को सबसे अधिक तृप्ति दे सकेगी। तुम इतनी निर्बल हो, मुझे तुमसे पूर्ण सहानुभूति है। जाओ, मेरी यही सलाह है।'

लीला ने कहा—तुम किसी से नहीं डरते? सारे वजीफे बंद हो जायेंगे।

जैसे ज़मींदार से रुपये लेने छोड़ दिये वैसे ही यह भी सही। इम्तहान के दिन हैं, खूब ट्यूशन मिल रहे हैं। ज़्यादा से ज़्यादा रोज सोलह सत्रह घंटे ही तो काम करना पड़ेगा। उसकी भी कोई चिंता नहीं। पर मैं चाहता हूँ, तुम अपने अपमान का बदला न ले सकने की असमर्थता की याद से न कसको, तुम मन भर कर एक बार अपनी सारी वेदना उँडेल दो···

लीला ने सुना और सिर झुका लिया।

---

[३७]

घरौंदे

जो मेहनत नहीं करता उसे खाने का अधिकार नहीं है। जो गैरहाज़िरी में कमाल करता है उसे इम्तहान में बैठने की गुंजाइश नहीं होनी चाहिए। यह एक क़ानून है। लेकिन संसार में आज दोनों ही बातें नहीं हैं, जैसे यद्यपि हर धर्म में झूठ बोलना मना है, धर्म के लिए लड़नेवाले अपने-अपने धर्म को बचाने के लिए उसी एक हथियार को काम में लाते हैं।

कालेज के दफ्तर में जब लवंग किसी काम से गई तो सेक्रेटरी ने कहा--मिसेज लवंग, आपकी हाजिरी पूरी नहीं, आप इम्तहान में नहीं बैठ सकतीं।

लवंग का चेहरा एकदम फक पड़ गया। उसने कहा--आपने अब आखिरी वक्त बताया है।

'इससे पहले मुझे फुर्सत नहीं मिली मिसेज़ लवंग, बिलकुल फुर्सत, साँस लेने की फुर्सत नहीं मिली।' और वह फिर नोट गिनने लगा। बैठा बनिया बाट तोला करता है। हमेशा यही दिखाते रहना चाहिए कि हमें बहुत काम है। आजकल फिर सेक्रेटरो के ऐंठ दिखाने के ज़माने आ गये हैं। लवंग सोचती हुई लौट आई। सीधे जाकर ऊषा से कहा—देखो ऊषा! हम इम्तहान में नहीं बैठ सकते।

ऊषा के मुँह से केवल एक शब्द निकला—अरे।

लवंग ने और कुछ नहीं कहा। वह चली गई। रास्ते में वीरेश्वर मिला। रोक-कर कहा—मिस्टर वीरेश्वर!

'जी,' वीरेश्वर ने उसपर दृष्टि डालते हुए उत्सुकता से पूछा।

'देखिए न? हमारी हाजिरी कम हो गई है। सेक्रेटरी कहता था, हम इम्तहान में नहीं बैठ सकते।'

'आप प्रिंसिपल से मिलीं?' वीरेश्वर ने सुझाते हुए कहा।

'अभी तो नहीं। लेकिन अगर पहले ही उससे मिलूँ और वह मना कर दे तो समझ लीजिए, फिर वह पत्थर की लकीर है। वह अँगरेज है, और हिंदुस्तानियों पर रियायत करना उसकी नज़र में अपने धरम को छोड़ना है।'

वीरेश्वर कुछ सोच में पड़ गया। कहा—पर आपके पास तो गैरहाज़िर रहने के ठोस कारण हैं। उसमें तो आपकी कोई गलती नहीं। फिर आप उसमें कर भी क्या सकती थीं?

'यही तो सोच रही हूं। कुछ समझ में नहीं आता।'

शाम तक लवंग इसी उलझन में पड़ी रही। अंत में उसने निश्चय किया और वह उसी हालत में जाकर मोटर में बैठ गई।

प्रोफ़ेसर मिसरा ने लवंग को देखकर मुस्कराकर स्वागत किया। नौकर को आवाज़ देकर कहा—चाय ले आओ।

लवंग मुस्कराकर बैठ गई।

प्रोफ़ेसर ने आज लवंग को मुद्दत के बाद अपने घर पर देखकर अपने भाग्य को सराहा। घर पर मिसेज मिसरा थीं नहीं। लड़कियां भी अपने रोज़गार से लगी कहीं चली गई थीं।

लवंग ने कहा—देखिए न? आज सेक्रेटरी साहब ने कहा कि हमारी हाजरी कम है। हम इम्तहान नहीं दे सकते।

'ओहो' प्रोफ़ेसर के मुँह से निकल गया। 'बड़े अफ़सोस की बात है।'

'मगर आप ही बताइए, इसमें मेरा क्या कुसूर है। आप तो सब कुछ जानते ही हैं?'

'Of course', प्रोफेसर ने सिर हिलाकर कहा—आपका इसमें कोई दोष नहीं।

लवंग ने लचककर कहा—तो फिर बताइए न हम क्या करें? कुछ समझ में नहीं आता।

अधेड़ प्रोफेसर ने देखा और मन ही मन मुस्कराया। प्रोफेसर ने गंभीरता से उत्तर दिया—तो आपने क्या सोचा इस बारे में?

'जी, मैं तो कुछ भी नहीं सोच सकी।'

प्रोफ़ेसर चिंतामग्न-से उठकर टहलने लगे। लवंग भी उठ खड़ी हुई। उसने प्रोफ़ेसर की ओर देखा।

× × ×

दूसरे दिन। वीरेश्वर उठकर उत्तेजित-सा बोल उठा—यह नहीं कामेश्वर। जहाँ तक मैं सोचता हूँ, जब तक मैं पहुँचा था तबतक लवंग और प्रोफेसर……

कामेश्वर ने काटकर कहा—यह तुम्हारी प्यास है जो दूसरों पर दोष लगाने में तनिक भी नहीं हिचकिचाती।

बाहर पगध्वनि सुनाई दी।

कामेश्वर ने कहा—कौन?

भीतर प्रवेश किया। देखा भगवती था। वीरेश्वर ने कहा—आओ! बैठो।

कामेश्वर ने उपेक्षा से मुँह फेर लिया। बात भी समाप्त हो गई, क्योंकि दोनों ही लवग के बारे में भगवती के सामने बातें करने में हिचकिचा रहे थे। थोड़ी देर तक सन्नाटा छाया रहा। अंत में भगवती ने कहा—क्या मैंने तुम लोगों की बातों में विघ्न डाला है?

'नहीं तो!' वीरेश्वर ने कहा—किसने कहा?

भगवती ने कहा—कहा तो किसी ने नहीं। लेकिन मेरे आते ही तुम लोग चुप क्यों हो गये? लवंग के बारे में ही तो बातें कर रहे थे, फिर रोक क्यों दीं?

दोनों ने एक बार आपस में आँखों की गति का अदला-बदला किया। उसमें विस्मय था।

'वह तुम्हारे भाई की बीबी है न?' कामेश्वर ने व्यंग्य से कहा।

'ओह!' भगवती हँसा—तो तुम भी मुझे सम्मानित व्यक्ति बना देना चाहते हो? मैं एक नाजायज़ बेटा हूँ, कभी भूलकर भी याद नहीं किया? मेरे घर में, यदि तुम उसे मेरा ही घर कहो तो बताओ, कौन-सी बात जायज़ है। मैं स्वयं इस योग्य नहीं हूँ कि किसी दूसरे को बुरा कहूँ।

कामेश्वर ने मुड़कर कहा—भगवती! धोखा दे रहे हो और वह भी अपने आप को?

भगवती ने तीक्ष्ण स्वर से कहा—भगवती ने कभी अपने आपको धोखा नहीं दिया।

'इसका सबूत' कामेश्वर ने आगे झुककर पूछा।

'इंदिरा !' भगवती के निर्दोष नेत्र चमक उठे। वह शब्द एक था या अनेक तोपों के एक साथ धू-धड़ाम छूटने की भाँति था, पर स्वर तो गर्जन बन गया और कामेश्वर ने चिल्लाकर कहा—भगवती !

'नहीं कामेश्वर ! भगवती इस बात से नहीं डरता कि तुम उसे आस्तीन का साँप कहोगे, या बहुत संभव है, क्रोध में उसपर वार भी कर बैठोगे। लेकिन वह सच बात सदा ही बार-बार दुहरायेगा।' भगवती ने स्वर बदलकर कहा—'कामेश्वर ! कालेज में तुम पहले व्यक्ति थे जिसने मुझे अपना स्नेह दिया था, किंतु जितनी सरलता से तुमने मुझे दूर कर दिया उसे देखकर मैं तुम्हारे प्रति श्रद्धानत हूँ, क्योंकि यह तुम्हारी दृढ़ इच्छाशक्ति दिखाता है, लेकिन एक दिन इंदिरा को मेरे सामने रोते देखकर जो तुमने अपने मन में अपने समाज के मापदंडों से गलत धारणा बनाई है उसी का मुझे दुःख है। मैं यह नहीं कहता कि इंदिरा को मैंने बहिन के रूप में माना है। क्योंकि मुझे इस तरह के पर्दे खींचने में शर्म आती है। लेकिन इंदिरा से कसम देकर पूछ सकते हो कि भगवती कभी भी तुम्हारा प्रेमी था ? और तुम कामेश्वर, जो मुझे नादानी के घर ले गये थे और सब कुछ जानते थे, फिर भी तुमने सोचा कि हमारा कोई और संबंध नहीं हो सकता ? मेरी असह्य यन्त्रणा में जिसने सबका भय त्यागकर एक मानवी के रूप में मुझे अपना हाथ पकड़ाने में तनिक भी हिचकिचाहट नहीं दिखाई उसी के प्रति तुमने अविश्वास दिखाया ? तुमने अपने आत्म-सम्मान को अपमानित किया, क्योंकि तुमने उसपर जमी काई पर पैर रखा और तुम धड़ाम से फिसलकर मुँह के बल गिर गये।'

भगवती हाँफ रहा था। कामेश्वर ने कुछ नहीं कहा—वीरेश्वर ने कहा—भगवती ! इतने उत्तेजित क्यों हो ?

'नहीं तो', भगवती ने कहा—और वह कृत्रिम रूप से मुस्करा उठा। उसने रुककर कहा--लवंग के बारे में मेरी कोई राय नहीं है। मुझमें उसमें कोई संबंध है, ऐसा तो मैं नहीं सोचता। फिर तुम लोग अपनी बातें करो न ?

'वीरेश्वर कहता था कि लवंग की हाज़री कम हो गई थी, इससे वह इम्तहान नहीं दे सकती थी। उसी शाम को वह प्रोफ़ेसर मिसरा के यहाँ गई कि वह शायद

हाज़री बढ़वा दे, क्योंकि उसकी चलती ही है, और वह अनुचित कार्यों को सिद्धि, अनुचित कार्यों की स्वार्थसिद्धि द्वारा करा दिया करता है।'

वीरेश्वर ने कहा--ठीक कहा--बिल्कुल ठीक कहा। दोपहर में मुझसे राह में लवंग ने अपनी परेशानी सुनाई थी। उसके बाद ही मैं दफ्तर में गया। मेरा मामला तो ठीक था। इसलिए मैं निश्चित लौट आया। फिर भूल गया। शाम को जब घूमने निकला, तो देखा रीडर श्रीवास्तव के साथ मिसरा की एक लौंडिया मोटर में जा रही थी। मैंने कहा—साइकिल पर ही तो हो। चलो लुत्फ़ रहेगा। दौड़ा दी झट पीछे पीछे। दिन कुछ-कुछ बाकी था। मोटर रुकी और लड़की उतरकर भीतर घुसी। रीडर श्रीवास्तव ने अपनी गाड़ी स्टार्ट कर दी और चला गया। मैंने लपककर उस लड़की को टोक दिया—कहा, सुनिए तो ज़रा। प्रोफसर मिसरा का घर यही है? लड़की क्या थी, बिल्कुल डबल रोटी। बोली—जी हाँ। मैंने झट से उससे कहा—मैंने कहा क्या आप ज़रा उन्हें इत्तला देने की तक़लीफ़ करेंगी?

'आइये न?' लड़की ने कहा। मैंने कहा -- चलिए।

अमा घर में घुसने की देर नहीं हुई कि एक हगामा। बराम्दे में से हमने सुना, मिसेज़ मिसरा गरज रही थीं -- तुम्हें शर्म नहीं आती? अपनी बेटी की उम्र की लड़की के गले में हाथ डाले बैठे हो। यह तो कहो भगवान की दया से मैं वक्त पर आ पहुँची। और वह भी एक विधवा से? तुम ब्राह्मण हो? दोनों तो लड़कियों का सत्यानाश कर दिया। जवान-जवान गैयों की तरह फिरती है, न बड़े का लिहाज़ न छोटे की शरम, सबके सामने बैलों की तरह मटकना···

यह सुनना था कि मिस मिसरा तो चिक उठाकर दूसरे कमरे में यह गई वह गई। मैंने सुना, मिसेज़ मिसरा कह रही थीं – और क्यों री? कौन है तू जो घर में घुस आई? क्या काम था तुझे? तू तो बड़ी खानदानी बनती थी? निकल जा यहाँ से रंडा! खबरदार जो फिर कभी भीतर कदम भी रखा, चीर के फेंक दूँगी। हाँ, धोखे में मत रहियो किसी के, एक को तो दो दिन में खा लिया और अब बूढ़ों पर नज़र फेंकी है, हाय री तेरी मंथरा डायन जवानी···

मैं समझ गया; बस अब लवंग बाहर आने ही वाली है। फौरन बराम्दे से बाहर खंभे की आड़ में हो गया। और मैंने देखा, मेरे सामने ही लवंग वहाँ से निकली थी। उसकी आँखें आँसुओं से भरी हुई थीं। ऐसा स्याह पड़ गया था उसका चेहरा कि अगर

ज़मीन फट जाती तो शायद उसे समा जाने में कम-से-कम उस वक्त तो तनिक भी हिचकिचाहट नहीं होती। लवंग ने जाकर मोटर में तशरीफ़ रखी और वह चली गई। बंदा अपनी जगह से निकलकर फिर बराम्दे में जा खड़ा हुआ और जाकर घंटी बजाई। कोई उत्तर नहीं आया। सो मैं बैठकर वहीं पर पड़ा 'इलस्ट्रेटेड वीक्ली आफ़ इंडिया' खोलकर देखने लगा। उठकर थोड़ी देर बाद फिर घंटी बजा दी। लाचार एक नौकर आया। मैंने कहा—प्रोफ़ेसर साहब हैं?

नौकर ने कहा—उनकी तबियत बहुत खराब है, वह इस वक्त माफ़ी चाहते हैं।

'ओह! कोई बात नहीं। एक बात कह देना उनसे। याद रहेगी? कहूँ?'

'जी हाँ, हुजूर, कह दूँगा।'

'कहना, मेरी हाज़री कम हो गई है, प्रोफेसर साहब चाहें तो वह पूरी कर सकते हैं। क्या वह ऐसा करना पसंद करेंगे?'

'सरकार यह तो अर्ज करने पर पता चलेगा। क्या नाम ले दूँ?'

'कह देना, वही जिन्हें छोटी बीबी अभी बाहर बिठा गई हैं, वही रीडर श्रीवास्तव, रेवतीप्रसाद श्रीवास्तव। याद रहेगा?'

'क्यों नहीं हुजूर? अभी लीजिए' बंदा भीतर गया, फ़रिश्ते ने फ़ौरन साइकिल सँभाली और चंपत।

'शाबाश'—कामेश्वर ने हँसते हुए कहा।

'फिर क्या हुआ सो मैं कुछ नहीं जानता, लेकिन एक बात है। क्या लवंग को ऐसा करना चाहिए था?' वीरेश्वर का प्रश्न सुनकर कामेश्वर ने उत्तेजना से कहा—भाई, यह सब भूख है। इसका कोई इलाज भी तो नहीं है। अब तो बिचारी को ज़िंदगी भर यों ही तड़पना है। औरतों के साथ यह ही तो चोट है।'

वीरेश्वर ठठाकर हँसा। 'और यहाँ बड़ी दावतें उड़ रही हैं!'

भगवती एकाएक उठा। उसने आगे बढ़कर वीरेश्वर के कंधों पर अपने हाथ रख दिये और गंभीर स्वर से कहा—वीरेश्वर! एक बात कहूँ मानोगे!

वीरेश्वर ने उत्सुकता से आँखें उठाईं।

भगवती ने कहा—यौन वासनाओं में ही मनुष्य का पूरा जीवन समाप्त नहीं हो जाता। उसे क्षमा करने का गर्व न करो। यदि तुम स्त्री होते तो और भी घृणित

कार्य करते। मैं तुमसे एक ही प्रार्थना करता हूँ। किसी और से यह बात कहकर अपने आपको कहीं भी नीचे न गिराना। स्वीकार है ?

वीरेश्वर को विस्मय हुआ। उसने कहा—तुम भी यही कहते हो भगवती ?

भगवती ने धीरे से कहा—तुम, मुझ पर अविश्वास करते हो, तभी ऐसी बात कह सके हो, अन्यथा कभी नहीं कहते। लेकिन मैं लाचार हूँ, क्योंकि मैं अब बुरा नहीं मान सकता।

भगवती कमरे से चला गया। वीरेश्वर ने हँसकर कहा—अब तो ख़ून एक हो गया है न ?

किंतु कामेश्वर ने इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया। उसे सुन्दर का मुख याद आ रहा था।

खबर जब अफ़वाह बन जाती है तब वह पैदल नहीं चलती, उड़ने लगती है। बात धीरे-धीरे लीला तक भी पहुँची। कालेज की फील्ड पर उसने भगवती को घेर लिया। उसने कहा—भगवती! तुमने सुना ?

भगवती ने उपेक्षा से कहा—क्या ?

'यही कि लवंग और प्रोफेसर मिसरा को मिसेज मिसरा ने पकड़ लिया...'

भगवती ने सिर हिलाकर स्वीकार किया। 'मुझे मालूम है।'

'फिर भी तुम्हें कोई दिलचस्पी नहीं।'

'मुझे इन यौन समस्याओं में अपनी विषमताओं का अंत ढूँढ़े से भी नहीं मिलता।'

'अच्छा!' लीला ने चिढ़ाते हुए कहा—पहले ब्रह्मचारी थे, अब योगी हो गये हो ?

भगवती कुढ़ा। लीला ने फिर कहा—तुम इतने मूर्ख हो, लेकिन मुझे जाने क्यों यह सब मूर्खता नहीं लगती। प्यार के कारण केवल बचपन पागलपन प्रतीत होता है।

कहकर देखा, भगवती के गालों पर लाज से लाली दौड़ गई। उसने झेंपकर कहा—धन्यवाद!

लीला ने धीरे से कहा—भगवती! तुम जीवन-जीवन लिये फिरते हो। एक बार इस जीवन की कसौटी को ही परख लें। बोलो साहस है ?

भगवती ने पूछा—क्या ?

'मुझे अपमानित तो नहीं करोगे ?'

'कभी किया है ? कभी तुमसे कुछ कहा ?'

'न। तुमने तो कुछ भी नहीं कहा। मैं कहती हूँ, मेरी जगह कोई और होती तो कभी की मर गई होती या तुमसे बात तक करना छोड़ देती।'

'अच्छा, ख़ैर, असली बात कहो।'

'इंदिरा से तो तुम्हारा वैसा कोई संबंध ही नहीं। ठीक है न ?'

'बिल्कुल।'

'तो चलो, हम-तुम कहीं भाग चलें। परदेश में दोनों कमायेंगे खायेंगे। कोई बंधन न होगा। नये सिरे से कोई ज़िंदगी बसेगी। चारों तरफ़ सुख ही सुख होगा ......'

भगवती ने हँसकर कहा—मैं और आप अगर साथ-साथ अकेले रहेंगे तो चारों तरफ़ सुख ही सुख क्यों फैल जायेगा ? कुछ आपके जाते हो वहाँ तपोवन तो बसेगा। नहीं कि शेर और बकरी एक साथ घाट पर पानी पियेंगे !

'तुम शायद अब भी सोच रहे हो, मैं तुमसे मज़ाक कर रही हूँ।'

'नहीं, तुम मज़ाक नहीं करतीं ! तुम मुझपर बुरी तरह मोहित हो गई हो, इसलिए तुम्हें मेनिया हो गया है।'

लीला ने रुआँसी होकर कहा—क्या तुम्हें कभी मेरी बात का यकीन नहीं होगा ! तुम मुझसे इतनी घृणा क्यों करते हो !

भगवती ने कहा—मैं करता किससे नहीं ?

'क्यों ? इंदिरा से भी !'

'नहीं। उसकी इज़्ज़त करता हूँ।'

'तभी लीला से घृणा करनी पड़ती है'

'नहीं,' भगवती ने गंभीर होकर कहा—भाग चलना तो कठिन नहीं। अभी भी चल सकते हैं। लेकिन मैं एक कारण से डरता हूँ।

'वह क्या ?' लीला ने शंकित होकर पूछा।

भगवती ने नीचे देखते हुए उत्तर दिया—'फिर हमारे बच्चों को

दुनिया हरामजादे कहेगी और तुम सुन सकोगी कि तुम्हारा प्रेमी भी एक हरामजादा है ?'

छिपी बात कितनी कठोर और घृणित होकर लौट आई, जैसे एक बार सुंदरी को देखा जाये, फिर दूसरी बार भीतर से उसकी हड्डी का ढाँचा निकालकर देख लिया जाये। लीला ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसने कहा भगवती ! आज मैं तुमसे सदा के लिए विदा लेती हूँ। आशा है, अब हम दोनों कभी एक दूसरे से नहीं मिलेंगे। भगवती, मैं अब जीवन से घृणा करने लगी हूँ।

भगवती ने कहा—लाचारी है लीला ! जीवन स्वयं ही कितना घृणित है।

'तो मैं जाऊँ ?' लीला ने व्याकुल होकर पूछा। इसी समय उसके कंधे पर हाथ रखकर इंदिरा ने कहा—क्यों जाने की क्या जरूरत है ? फिर भगवती से मुस्कराकर कहा—अच्छा जी ! यह तो तुमने हमें कभी नहीं बताया।

भगवती ने कुछ उत्तर नहीं दिया। लीला ने विस्मय से देखा। इंदिरा उसे देखकर स्नेह से मुस्करा रही थी। इंदिरा ने ही कहा पढ़ाई शुरू कर दी ?

भगवती ने कहा—बहुत पहले !

'ठीक किया ! और तुमने लीला ?

'उन्हें अभी प्रेम से ही फुर्सत नहीं मिली है।' भगवती ने परेशानी दिखाते हुए कहा।

इंदिरा ने कहा—'मैं तुम्हारे ब्याह में मदद तो पूरी करती, लेकिन एक डर है। मुझे लगता है लीला ! तुममें असल में इतना साहस है नहीं। अगर तुम अब कुछ जोश में, जल्दीबाजी में कर भी बैठीं तो याद है कप्टन राय मारते-मारते चमड़ी उधेड़ देंगे।' इंदिरा हँस दी। भगवती भी। लीला चुप हो गई। कुछ देर खड़ी रही, फिर इंदिरा से कहा—मैं जानती हूँ, तुम क्या हो ? तुम भगवती को फँसाकर उस जायदाद की मालकिन बनना चाहती हो, ताकि तुम दोनों मिलकर लवग को वहाँ विधवा करार देकर पद्रह रुपये महीने बाँध दो।

इंदिरा चौंक गई। उसने कहा—लेकिन लवग तो आज गाँव जा रही है। कालेज में अब उसकी रहने की तबियत नहीं। इम्तहान वह दे नहीं सकती। मैं अभी मिलकर आई हूँ।

लीला ने उसकी ओर छाया भरी आँखों से देखा। इंदिरा ने कहा—वह जानती है कि वह बदनाम हो गई है। इसी से चली जाना चाहती है।

'कहाँ जाएगी?' लीला ने पूछा।

'गाँव। और कहाँ!'

'गाँव क्यों?' लीला ने पूछा।

'गाँव के अतिरिक्त और कहाँ जायेगी वह?' इंदिरा ने पूछा—इस घर में तो अब अधिक दिनों तक नहीं रह सकती। और फिर हिंदू स्त्री के लिए पति का घर ही तो सबसे बड़ी चीज़ है। आखिर जमींदार के बाद सब कुछ उसी का तो है। लीला ने भगवती की ओर देखा। वह निश्चल निर्विकार खड़ा था। जो कुछ इंदिरा ने कहा है वह बिल्कुल ठीक है। भगवती वही तो सुनना चाहता था।

थोड़ी देर बाद लीला चली गई। इंदिरा ने भगवती की ओर देखा। पूछा—भैया मिले थे?

'हाँ'—भगवती ने संक्षिप्त उत्तर दिया।

'कोई बात हुई?'

'यही इधर-उधर की। वह लोग लवंग को दोष दे रहे थे और चाहते थे मैं भी उसे बदनाम करने में शामिल हो जाऊँ। मैंने तो अस्वीकार कर दिया।'

'यही मुझे तुमसे आशा थी।'

भगवती ने कहा—इंदिरा! जबसे उन सब लोगों को मेरे जन्म के विषय में यह सब बातें ज्ञात हो गईं हैं, वे मुझसे घृणा करने लगे हैं।

'क्यों! उसमें तुम्हारा क्या दोष है?'

भगवती ने उसकी ओर कृतज्ञता से देखा और कहा—मैं कहीं चला जाना चाहता हूँ सबको छोड़कर। कहीं अलग जाकर रहना चाहता हूँ जहाँ न स्नेह हो, न कृतज्ञता से उत्पन्न घृणा हो। जाने की आज्ञा दोगी?

'क्यों नहीं?' इंदिरा ने कहा—यदि तुम समझते हो कि तुम्हें उससे संतोष मिलेगा तो तुम्हें ऐसा करने का पूर्ण अधिकार है। क्या आज तक तुम्हें मैंने अपने मन की करने में कभी रोका है।

'नहीं, रोका तो नहीं।'

'तो फिर आज ऐसा प्रश्न पूछने का कारण!'

'मुझे इन लोगों ने जर्जर करने का प्रयत्न किया था। तुमने सुना था, लीला चलते-चलते तुमसे क्या कह गई है ?'

'सुना क्यों नहीं ? किंतु लीला ही क्या हमारे तुम्हारे संबंध का अंतिम निर्णय देने की अधिकारिणी है ? मेरी दृष्टि में वह केवल विक्षुब्ध है। तुम्हें उसकी बात का कोई बुरा नहीं मानना चाहिए।'

'मैं तुम्हें प्यार करता हूँ इंदिरा, जब सारा संसार मुझसे घृणा करता है तब तुम्हीं मेरी एकमात्र सहायक हो। मैं सोच भी नहीं सकता कि उसका विक्षोभ मेरे हृदय को कभी भी विचलित कर सकेगा, जब उसके प्यार का वह वासनामय तूफ़ान मैं पशु की भाँति झेलकर जीत गया हूँ।'

इंदिरा ने कहा—मुझसे कोई पूछे कि तुम किसे चाहती हो, तो मैं तुम्हारे अतिरिक्त किसी को नहीं बता सकती।

'मैं नहीं जानता हमारे इन सबंधों का मूल क्या है ?'

'परस्पर का स्वार्थ, या उसे कह लो प्यार।'

भगवती ने उत्तेजित होकर पूछा—स्वार्थ ! वह क्या है इंदिरा ?'

'...कि हम दोनों एक दूसरे को सुखी देखना चाहते हैं, कि हम दोनों जीवन भर एक दूसरे को प्यार करते रहें, कि वह केवल एक ज्वार न हो जो भाटे के साथ उतर जाये और हमारे जहाज़ फिर सूखे में पड़े-पड़े अगले ज्वार की प्रतीक्षा किया करें।'

'तुम सचमुच नारी हो।'

'और तुम इतने कठोर दिखकर भी इतने कोमल हो, यह मेरे अतिरिक्त और कौन कह सकेगा ?'

---

[३८]

'....का....'

रात हो गई। फिर चारों ओर अँधेरा छा गया। सुंदर वहीं बैठी रही। ज़मींदार साहब आँखें मूँदकर पड़े थे। कंबल से उनका समस्त शरीर ढँका हुआ था। कमरे में फिर से दवाओं की तेज़ बू फैल गई थी। चारों तरफ़ सन्नाटा छाया रहता था। वह विशाल इमारत प्रायः सूनी पड़ी रहती थी। लवंग के आ जाने से भी कोई हलचल नहीं हुई। आज लवंग विधवा के रूप में लौटी थी। अबकी उसके पास एक भी सुहागिन नहीं आई। जो मिली वह बुढ़िया ही मिली। प्रत्येक ने दबी ज़बान से सुंदर की दुश्चरित्रता को खोलने का प्रयत्न किया।

गाँव भर में बात बिजली की तरह फैल गई थी। राह पर गाँव के छैले आपस में दिल्लगी करते। कुरमा हलवाई के यहाँ बहुत दिनों तक इसी विषय पर बातचीत चलती रही। लवंग ने सब कुछ सुना और एक कान से सुनकर दूसरे कान से सब निकाल दिया। उसकी आत्मा छटपटा उठी। कल तक बिना अंगरेज़ी के वह एक भी बात नहीं कर पाती थी। यहाँ एक भी अंगरेज़ी का शब्द प्रयुक्त हुआ नहीं कि गाँव-वाली उसके दस नाम धरेंगी। कल तक राजेंद्र था। उसकी ओट में सब कुछ हो सकता था। आज तो कुछ भी नहीं हो सकता। एकदम धुर पश्चिम से जो उसे धुर पूरब में लौटना पड़ा इससे मन-ही-मन उसपर एक घृणा-सी छा गई और उसने निश्चय कर लिया कि जो कुछ है इसी सबके लिए है। यह सोचते ही उसने अपनी रेशमी साड़ियाँ उतारकर आलमारियों में बंद कर दीं और निकालकर एक बिना किनारी की सफ़ेद साड़ी पहन ली। हाथ में चार सोने की चूड़ियाँ; और सब कुछ नहीं।

दिन पर दिन बीतते गये। जिस दिन वह आई थी, ज़मींदार साहब ने एक बार उसकी ओर आँखें खोलकर देखा और फिर जैसे अनुप्राणित असह्य वेदना से अपनी पलकों को गिरा लिया। लवंग वहीं बैठ गई। पिताजी आधे से अधिक मूर्च्छित थे।

लवंग ने एकबार अविश्वास और उपेक्षा भरी आँखों से सुंदर की ओर देखा और पूछा— कितने दिन से बीमार हैं ?

'आज एक हफ़्ता हो गया' सुंदर ने धीरे से उत्तर दिया।

'और एक हफ़्ते से कुछ खबर तक नहीं दी ?'

सुंदर ने उसकी ओर आँखें गड़ाकर कहा—उन्होंने मना कर दिया था।

'क्यों ?'

'क्योंकि उन्हें अपने पाप का प्रायश्चित्त करने का भय हो गया है।'

लवंग ने अप्रत्याशित प्रश्न पूछा—और तुम्हें नहीं ?

सुंदर हँसी। उसने कहा कल तक किसी और को ज्ञात न था तबतक वह पाप न था। आज क्या ज्ञात होने से ही वह सब पाप हो गया ? यदि पाप का ही प्रायश्चित्त करना था तो आज ही क्यों, आज से बहुत पहले से करना था। दुनिया क्या कहती है क्या इसी की परवाह करनी चाहिए ?

लवंग ने कुढ़कर कहा—और भी क्या पाप का कोई मापदंड है ?

'है क्यों नहीं ? मन की निर्बलता और अपने आपको धोखा देना ही तो पाप है। बाकी सब संबंधों की छाया है। आज एक बात ठीक है, कल वह नहीं रहती ; तो इस सबका माप कौन बनेगा ?'

लवंग को कोई उत्तर उपयुक्त नहीं जँचा था। वह उठ गई थी। सुबह-शाम वह नित्य जाकर पिताजी की रोगशय्या के पास बैठ जाती और काम करने की चेष्टा करती किंतु सुंदर ने उसे कभी भी ऐसा मौका खुलकर नहीं मिलने दिया। वह जो कुछ करती, खुलकर करती। उसमें लगन होती और कभी भी किसी दूसरे के कहने की परवाह नहीं करती। उसका मन जो कहेगा, सुंदर वही करेगी, किसी दूसरे के कहने-सुनने का कोई प्रभाव नहीं। वह जानती है गाँव आज उसको बदनाम कर रहा है, किंतु वह कहती है—बीस बरस पहले भी तो संदेह था, तब कोई कुछ कहने की हिम्मत भी नहीं करता था। जानते हो इसका कारण क्या है ? जिसके हाथ में कल उठी हुई तलवार थी आज सब उसी को रोगशय्या पर पड़ा हुआ तड़पता देख रहे हैं। इसी से तो आज वे सब कुछ कह रहे हैं।

लवंग को इस उत्तर से संतोष नहीं होता। वह सोचती—क्या उसे अपने पति के वृद्ध पिता की सेवा करने का भी अधिकार न था ? और फिर कल्पना के स्वर

खुलने लगते। एक समय सुंदर युवती होगी। उस समय पिताजी भी युवक होंगे, और फिर प्रयत्न करती कि उस रूप को अपनी सत्ता की वास्तविकता में अवतरित करके उसके महत्त्व को समझती। क्या यह दुःख आज उसी उन्माद का परिणाम है? कुछ नहीं। यह सब कुछ नहीं। फिर विचारों के पत्ते काँपने लगते जैसे अँधेरी रात में पेड़ हिल रहा हो।

क्या हो रहा है संसार में, कुछ ज्ञात नहीं। यह गाँव है। इतना वैभव है। वह उसकी एकमात्र स्वामिनी होगी। किंतु क्या होगा उस प्रभुत्व का? न कोई सिर पर स्नेह से, वात्सल्य से हाथ फेरनेवाला है, न कोई प्यार करनेवाला, न ऐसा ही जो आज एक छोटा-सा तिनका होता जिसपर वह सब कुछ न्यौछावर कर देती कि वह एक पहाड़ बन जाये। फिर उसकी शक्ति देखकर लोग काँप उठें और वह शक्तिमान आकर लवंग के चरणों पर 'मां' कहकर सिर टेक दे। उस समय लवंग को कितना हर्ष होता, कितना सुख होता किंतु क्या होगा अब? किसलिए चाहिए इतना सब कुछ! कुछ भी तो करने का उसे अधिकार नहीं। उसी दिन लवंग ने आकर श्रीकृष्ण के अनुपम चित्र को हाथ जोड़ा। पुरुष के उस सौंदर्य ने लवंग के हृदय को सांत्वना दी। मस्तिष्क के निम्न स्तर में उस सांत्वना ने उसे कुछ आभा दिखाई और परंपरा ने उसे भक्ति का रूप देकर उसे न्यायपूर्ण बना दिया।

इस व्यक्ति को अब समाज में कुछ नहीं करना है। वह एक भार है। उसे भी अपने जीवन के लिए कुछ करना है। समाज ने उसे धकेलकर बाहर कर दिया है। उसे चाहिए एक शराब जिसके छल में वह अपने जीवन को उबा देनेवाली नीरवता को काट जाये। और लवंग ने उस दिन यही किया!

शरीर की भूख कल्पनाओं से नहीं बुझती, अतः लवंग का विक्षोभ दिन पर दिन प्रखर होता गया।

वह जाकर पिताजी की खाट के पास बैठ गई। वे उस समय चैतन्य थे। कराह उठे। लवंग ने झुककर कहा पिताजी! कैसी तबियत है? पहले से तो अच्छी है?

ज़मींदार साहब ने सिर हिलाया। वह अधिक बोलना नहीं चाहते। शहर के दोनों डाक्टर अब गाँव में बस गये हैं। पाँच-पाँच सौ रुपये से कम नहीं फटकारते। लवंग देर तक उनके हाथ को अपने हाथ में लिये बैठी रही।

गाँव पर साँझ उतर रही है। उस हल्के धुँधलके में धूल की सघनता है। स्तर पर स्तर जमता अंधकार धीरे-धीरे घना हो चला है। सामने ही कुछ छप्परों के ढेर हैं। उनमें भी मनुष्य रहते हैं। उनमें भी दुःख-सुख हैं, राग द्वेष हैं, वे भी परस्पर लड़ते हैं, मिलते हैं। उनका जीवन हमें पशु का-सा लगता है किन्तु क्या वास्तव में वे पशु हैं? यदि पशु ही हैं तो उनको मनुष्य के रूप में सोचना व्यर्थ है।

आज कोई पेड़ नहीं दीखता। विशाल पत्थर और ईंटों की इमारत अंधकार के समुद्र में चट्टान की तरह खड़ी है। एक दिन यहीं एक व्यक्ति आया था। उसके साथ उसकी प्रेम-पूरिता स्त्री होगी। उन्होंने ईंट ईंट करके यह वैभव खड़ा किया होगा। उसके बाद यही परंपरा चल निकली। लोगों ने आकर उनके सामने सिर हो झुकाया। काश आज राजेन जीवित होता! लवग भी तूफान की तरह गरजती हुई इधर से उधर भागती। किंतु कहाँ है वह सागर-तीर जहाँ जाकर इन प्राणों को विश्राम मिलेगा? क्या पति के बिना स्त्री की सत्ता व्यर्थ है? कितना बद्ध है यह समाज! कितना अंधा है यह ससार। दम घुट रहा है, किंतु पंजे फिर भी गर्दन छोड़ना नहीं चाहते। एक मनुष्य का जीवन केवल दूसरों की दया पर ठोकरें खाता फिरे! अपनी यौन वासनाओं की उलझन में ही वह अपनी समस्त शक्ति का हनन कर दे और फिर · और फिर···

यह सब भी कुछ नहीं। केवल उपहास।

पेड़ हरहरा रहे हैं। हरहराना इन्होंने न किसी से सीखा है, न ये छोड़ना जानते हैं। आकाश के गहन अंधकार में वे तारे! जैसे किसी की काली पुतली में तारा काँप रहा हो।

अरे धमनियों में रुधिर है निष्ठुर! वहाँ पानी होता तो मैं व्याकुल होकर तुझे क्यों पुकार उठती?

तेरी मृत्यु यदि तेरी समाप्ति ही थी तो मेरे जीवन का आरंभ उसमें क्यों उलझ गया कि छुड़ाना चाहती हूँ, पर छूट नहीं पाती।

इन आँखों में आशा की घोर प्रतारणा है निर्मोही! जिस छवि की मुझे लालसा वही क्या मेरे जीवन की गहन अँधियारी में एक मात्र तारा थी। बुझ जाये यह दीप। मैं लौ का अवसाद करूँ कि इस धीरे-धीरे उठते हुए धुँए का।

पागल राही! तू नहीं ठहरा, न ठहर। पर तुझे क्या मालूम, मैं कबसे तेरी राह देख रही थी। तू समझा था कि वह मेरी उच्छृंखलता थी। अरे तू क्या समझता कि तेरे होने के कारण ही मैं अपने को स्वामिनी समझती थी, तेरी उपस्थिति का हर्ष, वह महोल्लास, जो मेरे रक्त में ऊष्मा बनकर छाया हुआ था, वह सब तेरा ही तो उन्माद था। आकर तो सभी चले जाते हैं। अपने पदचिह्न तक मिटा जाते हैं, किंतु कभी तूने निर्जन में भटकते हुए, प्यास से तड़पते की करुण पुकार भी सुनी है?

कहाँ सुनता तू पाषाण! तूने तो मुड़कर भी नहीं देखा। तेरी भी यदि यन्त्रणा असह्य थी तो ले मेरे हृदय का जाल, फेंक दे उसमें वह मछली, समय जिसे खींच लेगा और पानी से दूर वह तड़पा करेगी...

मैं देखा करूँ कि मेरी पुकार पर स्वयं मेरा अभिमान हँस रहा है, और मैं कुछ नहीं कर सकती, कुछ नहीं कर सकती.....

लवंग की उस विह्वलता को देखकर सुंदर ने कहा—बेटी!

लवंग चौंक गई। कितना अच्छा है यह शब्द! कितना अधिक प्यार है इसमें एक दूसरे के लिए सब कुछ समर्पित कर देने की आकांक्षा। कहाँ है 'प्रिया' में यह सामर्थ्य जो केवल आलिंगन में समाप्त हो जाता है। यह तो युग-युग का अवलंबन है! जीवन का गौरव! और फिर लवंग को विस्मय हुआ। सुंदर ने किस धन के बल पर यह इतनी बड़ी स्नेह की अट्टालिका खड़ी कर ली। समाज उसे पाप का भंडार कहता है, किंतु वह किसी से भी भीत नहीं है। यदि यह उसकी आत्मा की शक्ति नहीं तो और है क्या?

फिर लवंग के मस्तिष्क में चोट हुई। यह समाज के अत्याचार के कारण विधवा है। अन्यथा यह अब सुहागिन है। मा है। जिसके प्रेम ने दोनों भुजा फैला रखी हैं, जो दो धाराओं को मिलाने की एकमात्र साधना है, शक्ति है वह तो विधवा नहीं।

फिर सुंदर का वह चित्र आँखों के सामने खेल गया जब वह चक्की पीसती थी, अपने शरीर को ऐसे तोड़ती थी जैसे मज़दूर पत्थर को तोड़ देता है ..

सुंदर ने प्यार भरी दृष्टि से देखकर कहा—लवंग, इतनी उदास क्यों रहती है?

तो क्या सचमुच सुंदर इस सबकी उदासी का कोई कारण नहीं समझती? किंतु लवंग की आँखों में पानी भर आया। वह सुंदर के वक्षःस्थल पर सिर रखकर सिसक उठी। आज उसे जीवन में पहली बार लगा कि मा का स्पर्श जीवन की सबसे पवित्र

अनुभूति है। जब प्रतीत होता है कि हे दीपक, मैं तेरी शिखा से निकली हुई क्षीण ज्योति हूँ, मैं तुझमें अपना स्नेह घुलमिलकर लय कर देना चाहती हूँ··· ।

क्यों, है यह स्पर्श इतना भव्य ! क्यों नहीं, गिर रही है यहाँ नीली छाया जो प्राणों पर ऐसे दाग छोड़ जाती है जैसे किसी ने लोहे का प्रहार किया हो। एक विराट् पर्वत। उसके ऊपर जमा हुआ हिम। हिमनिस्सृत यह नदी।

मा ! कौन-सा जीवन है जिसको तुम कुचलो और मैं हँस न सकूँ। तुम कुचलोगी ! पर तुम्हारी कुचलन भी तो एक प्यार है ! टूट जायेगा मा का हाथ न उठेगा कभी करने घातक प्रहार। फूट जायेंगी आँखें, पर कभी द्वेष की छाया उनमें विष नहीं घोलेगी मा ! मा !!!

वृद्ध ज़मींदार साहब ने पुकारा—सुंदर !

सुंदर चली गई। लवंग फिर भी अकेली बैठी सोचती रही। दिन रातों में उलझे हुए हैं, रात दिनों में उलझी हुई है जैसे मेज में दराज होती है, जब जो चाहे खींच ली। यह तो मन का दिन है, मन की रात है। और जीवन की वास्तविकता से क्या संबंध शेष रह गया है, जब अधिकार मांगने का भी अधिकार नहीं तो स्वामित्व का कौन कर्त्तव्य है जो आकाश में अब भी गर्जन के बाद इन्द्रधनुष होकर निकला करे ? क्या होगा आकाश को वह रंगीनियाँ दिखाकर जब बिजलियों की तपिश को सहलाने की भी तृष्णा शेष नहीं।

फूट रही है कोंपल। वसंत दहक रहा है। आ मेरे भौंरे ! मेरी कली का रस उफनकर बहनेवाला है। पी ले, नहीं तो पवन को झकोर में सारा यौवन ही लुटा दूँगी, कहकर कि यह न मेरा था, न मैं इसकी थी। ले जा इसे, यह मेरा नहीं है, यह मेरा नहीं है······ ।

× × × ×

ज्वर दिन पर दिन बढ़ता जा रहा था। यातना असह्य होती जाती थी। दोनों डाक्टर घड़ों की तरह अपना दिमाग़ खाली पाकर ज़्यादा से ज़्यादा दोनों हाथों से धन खरोंचते जा रहे थे। पंडित और मगनराम ही की स्वामिभक्ति थी कि सारा काम चलता जा रहा था। अभी भी तो वह व्यक्ति था जिसका नाम सुनकर दूर-दूर तक गाँव काँप उठते थे।

उस दिन भर ज़मींदार साहब मूर्च्छित पड़े रहे। कोई चेतना का लक्षण दिखाई

नहीं दिया। घर भर में सबका दिल आज दहशत से भर गया था। लवंग और सुंदर की आँखों में बार-बार पानी भर-भर आता था। डाक्टर सिरहाने बैठे इंजेक्शन पर इंजेक्शन लगा रहे थे। आज वह योद्धा जिसका नाम ब्रिटिश साम्राज्य का एक गौरव था, हताश-सा, मूर्च्छित-सा पड़ा था। यदि टेनीसन जीवित होता तो वह 'गुलामों के राजा की मृत्यु' नाम की एक लंबी और शोकविद्ध कविता भी लिख देता। किंतु सुंदर तो वह सब नहीं कर सकती।

क्या होगा अब! बार-बार यही प्रश्न मस्तिष्क में बादल की तरह घिर-घिर आता है और आँखों की तरह बरस जाता है। इस समय तो यह 'सर' नहीं। इस समय तो यह केवल एक वृद्ध है, रोगी है, मनुष्य है, जिसका जीवन आज मौत का उतना ही मुहताज है, जितना अपने आपका।

सुंदर ने बाहर निकलकर कहा—लवंग!

लवंग ने सिर उठाकर देखा, और दोनों रो पड़ीं। उस रुदन में कितना भीषण विषाद है! कितनी अथाह कसक है! कोई भी कुछ नहीं कर सकता? और क्या कमी है? किंतु लवंग जानती है आदमी सब कुछ का अभिमान करके भी अभी तक मौत को नहीं ज़ीत पाया।

एकाएक डाक्टर ने आकर कहा—'जमींदार साहब बुला रहे हैं।'

दोनों भीतर गईं। बैठीं और सुंदर ने धीरे से कहा—कैसी तबियत है अब?

'अच्छी है,' जमींदार साहब ने धीरे से क्षीण स्वर में कहा—फिर साँस खींचने के लिए चुप हो गये। फिर कहा—बेटी! अपने वकील साहब को तो बुलवाले ज़रा।

'क्या होगा पिताजी?' लवंग ने उत्सुकता से प्रश्न किया। किंतु मन ही मन वह कारण समझ गई थी। शायद वसीयतनामा लिखाना चाहते हैं। फिर उसे विस्मय हुआ। मृत्यु-शय्या पर भी व्यक्ति सरलता से अपने चारों ओर फैली समृद्धि और वैभव से अपना नाता नहीं तुड़ा पाता। कदाचित् यह पिता का स्नेह है। कौन नहीं समझ लेता कि अब वह सदा के लिए जा रहा है। फिर क्यों न उसकी संतान उसके बाद सुख भोगे।

ज़मींदार साहब ने कहा—तू नहीं जानती बेटी। तू अभी बच्ची है। मेरी हालत बिगड़ती जा रही है।

उन्होंने अपने दोनों हाथों से निराशा का इंगित किया। और उनके मुँह से एक दर्दनाक कराह निकली। एक लंबी साँस खींचते हुए उन्होंने कहा—हाय! अब तो सहा भी नहीं जाता।

सुंदर! तेरे हृदय पर यह शब्द हथौड़े की चोट की तरह तेरे दिल को बिल्कुल पत्तर बना देना चाहते हैं। रो नहीं। लवंग को फिर कौन धीरज बँधायेगा? कल ही तो बिचारी का सुहाग उजड़ा है और आज यह वज्रपात! लेकिन आज तक तो कभी इस व्यक्ति के मुख से ऐसे शब्द नहीं निकले। आज इस सिंह के मुख से यह कराह निकली है।

सुंदर काँप उठी। उसने लवंग से कहा—बेटी!

लवंग ने कहा—मा!

ज़मींदार साहब के मुख पर एक मुस्कराहट दौड़ गई। उन्होंने कहा—लवंग! अपनी मा को कभी छोड़ोगी तो नहीं?

लवंग रो पड़ी। उसने कहा—यह आप क्या कह रहे हैं पिताजी!

ज़मींदार साहब ने कहा—तो बुलाओ वकील साहब को। समय अधिक नहीं है।

लवंग ने आवाज़ दी—मगन!

मगन ने प्रवेश किया। उसके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं।

लवंग ने उसे भेज दिया। थोड़ी देर मौन रहकर उन्होंने कहा—लवंग! जो मैं करूँगा उसमें तुझे कोई आपत्ति तो नहीं होगी?

'नहीं पिताजी!' उसका गला रुँध गया।

'तू लड़की है। नादान है। फिर नाराज़ तो नहीं होगी? मेरी शपथ खा।'

लवंग ने पैरों पर हाथ रखकर कहा—आप मेरे जीवन के अंतिम सहारे हैं, आप पर भी अविश्वास करके मैं किसलिए रहूँगी...

सुंदर ने उसे अपनी छाती से चिपका लिया। वकील साहब आ गये थे। सुंदर और लवग बाहर चली गईं। वकील साहब ने भीतर बैठकर वसीयतनामा लिखा। बाहर बैठे पंडित की आँखें बार-बार गीली हो जाती थीं, वह जब व्याकुल हो उठते थे तब उनके मुँह से फूट पड़ता था—

'नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि,
नैनं दहति पावकः... ।'

नीचे लोग आ-आकर भारी-भारी चेहरे लिए इकट्ठे हो रहे थे। गाँव के दक्षिण की ओर के मंदिर में आज तीन दिन से अखंड-कीर्तन हो रहा था, जिसकी एक क्षीणतर ध्वनि सुनाई पड़ती थी—

हरे हरे श्याम श्याम,
श्याम श्याम हरे हरे······।

जब वकील साहब चले गये तब जमींदार साहब ने लवंग और सुंदर को बुलवा लिया। लवग आकर पास बैठ गई। उन्होंने कहा--बेटी! वसीयत उस बक्स में रखी है। ले यह मेरे सिरहाने से चाबी निकाल ले।

लवंग ने सिर झुका लिया। हाथ नहीं बढ़ाया। सुंदर उठी और चाबी को निकाल कर उसके आंचल में बांध दिया। लवंग भारी हृदय से बैठी रही।

ज़मींदार साहब ने एक बार कराह कर कहा—सुंदर! मैं अब जा रहा हूँ। कोई लाभ नहीं है। मैं अपने करने के सब काम कर चुका हूँ। कोई झगड़ा नहीं रहा। लेकिन एक बात से मेरा हृदय बार-बार व्याकुल हो उठता है···।

लवंग ने पूछा—क्या है वह पिताजी?

बेटी! मेरा दाह कौन देगा?

लवंग कांप उठी। सुंदर रो दी। किंतु उन्होंने पुरुष स्वर से कहा—रोओ नहीं। तुम दोनों सचमुच पागल हो। अरे रोने से क्या मैं बच जाऊँगा?

फिर एक नीरवता कमरे में सांस घोटने लगी। डाक्टर ने घड़ी देखी और इंजेक्शन तैयार करने लगा। दूसरा डाक्टर बेग में से निकाल-निकालकर गर्म पानी के लिए 'गौज' रूई रखने लगा।

पंडितजी ने भीतर प्रवेश किया। उनका गला रुँधा हुआ था। उन्होंने हाथ जोड़कर कहा—मालिक! आपने तो जीवन में कोई पाप नहीं किया। पाप तो हमने किया है जो आपको इस हालत में देखकर भी हम लोग कुछ नहीं कर सकते।

ज़मींदार साहब ने एक बार मुस्कराकर उसकी ओर देखा और उनकी आँखें झपकने लगीं। पंडित ने कहा—मालिक! आप तो हमें ऐसे निष्ठुर बनकर छोड़ रहे हो, लेकिन इस नाव को अब और कौन खे सकेगा?

पंडितजी बालकों की भांति रो उठे। ज़मींदार साहब बड़बड़ाने लगे—सुंदर··· मैं निर्दोष हूँ—तुमने कितना कष्ट सहा है···मेरे लिए···

सुंदर रो उठी। वह बोली—किसने कहा मैंने तुम्हारे लिए कष्ट सहा। झूँठ है। मैंने कभी दुख नहीं उठाया। इस जीवन में जितना सुख मैंने उठाया है उतना शायद ही किसी ने पाया हो···।

लवंग ने विस्मय से सुना और श्रद्धा से उसका शीश झुक गया।

जमींदार साहब का अर्द्ध स्वर फिर स्पष्ट हुआ—भगवती···बेटा···

सब चौंक उठे।

पण्डितजी ने कहा—बहूरानी! सुना तुमने मालिक ने क्या कहा! अब समझ में आया इस निर्मोही के प्राण कहाँ अटक रहे हैं।

लवंग ने उत्तर नहीं दिया।

पंडितजी ने कहा—भूल जाओ सारे रागद्वेष बहुरानी! यह समय इन बातों का नहीं। क्या तुम समझती हो इस पुकार को टाल देना ठीक होगा? बाप अपने बेटे के लिए तड़प रहा है। क्या तुम चाहती हो वह अपने मौत के बिस्तर पर इसी तरह छटपटाता हुआ तड़प-तड़प कर मर जाये? क्या तुम इसे अपना कर्त्तव्य नहीं समझतीं कि उसकी अंतिम इच्छा को पूरा किया जाये?

लवंग फिर भी नहीं बोली। पंडितजी ने फिर कहा—बहूरानी एक क्षण की भी देरी आज जीवन भर को देर हो जायेगी। दीपक की अंतिम चमक झिलमिला रही है। यह जो अब बिस्तर पर बच्चों की तरह हाथ पैर फेंक रहा है आज तुम्हारी दया पर आश्रित है। कल यह मालिक था, आज तुम मालकिन हो जाओगी। देखो! ज़रा उसकी ओर! जीवन भर जो समाज के बंधनों से डरकर अपने पुत्र को अपना पुत्र नहीं कह सका, आज उसे मौत के बिस्तर पर प्यार करना चाहता है। आज बेटे की ममता उसकी साँस में फाँस बनकर अटक रही है। देखो, बाप अपने बेटे का मुँह देखने के लिए अंतिम समय पर तड़प रहा है···।

लवंग ने हठात् कहा—पंडितजी! मोटर फ़ौरन भेज दो। कहला दो अगर वह नहीं आयेगा तो उसके बाप को कोई दाह भी न देगा। अगर वह अपने बाप के लिए भी नहीं आयेगा तो मैं गले में फाँसी लगाकर मर जाऊँगी···।

सुंदर रोते-रोते चिल्ला उठी—लवंग!

और पंडितजी आँखें पोंछते हुए बाहर चले गये।

———

[३९]

अट्टहास

आकाश स्वच्छ है। इसमें एक भी बादल क्यों नहीं आ जाता? इतना शून्य भी किस काम का? कहीं आंखों के रुकने के लिए स्थान तक नहीं।

इंदिरा ने कहा—फिर? बस बात खत्म हो गई?

भगवती चौंक गया। उसने कहा—ओह! मैं तो भूल ही गया। क्या कह रहा था मैं?

'तुम बता रहे थे कि रवीन्द्रनाथ ठाकुर का दिल उस रूढ़ियों से भरी शिक्षाप्रणाली से ऊब उठता था।'

'हां, तो उसमें धीरे धीरे एक विद्रोह की भावना दिन पर दिन प्रखर होने लगी······'

नौकर ने आकर कहा—बीबीजी! बाबू को कोई मोटरवाला बुला रहा है।

'कौन है?' इंदिरा ने चौंककर पूछा।

'कोई ड्राइवर है।'

'ड्राइवर?' भगवती ने चौंककर कहा।

'उसे यहीं ले आओ।' इंदिरा ने बात ख़त्म करने के लिए कहा—तो जाइए आप। पढ़ा दिया हमें तो! अब तीन दिन बाद इम्तहान है। इतनी ख़ुशामद की तब तो दो दिन से आपको एक घंटा हमारे लिए बर्बाद करने की फ़ुर्सत मिली है, अब फिर वही रोना।'—वह चिढ़ गई थी।

'लेकिन', भगवती ने कहा—'यह हो कौन सकता है?'

'मैंने तो सब मोटरवालों को खीर खाई है न?' इंदिरा ने ताना मारते हुए कहा।

नौकर ने प्रवेश किया। उसके साथ लवंग का ड्राइवर था। उसके चेहरे पर हवा-इयाँ उड़ रही थीं। उसने छूटते ही कहा- सरकार...मालिक...

उसका गला रुँध गया। घबराहट के कारण वह कुछ भी नहीं कह सका।

'क्या हुआ काली चरन ?' भगवती ने पूछा।

'सरकार ! मालिक की हालत बहुत खराब है। आखिरी वक्त पर उन्होंने आपका नाम लिया है। आपको लवंग बीबी ने बुलाने के लिए मोटर भेजी है।

'अभी ?' भगवती ने पूछा।

'जी हाँ !' कालेचरन ने नम्रता से कहा—उन्होंने कहा है कि बेटे के बिना दाह देने का अधिकार किसी को भी नहीं है।

भगवती हँस पड़ा। उसने कहा--इंदिरा, सुना तुमने ?

इंदिरा ने कहा—कालीचरन ! तुम बाहर बैठो। अभी जवाब मिलता है।

दोनों नौकर जाने लगे। इंदिरा ने अपने नौकर से कहा—जाओ ज़रा भैया को तो भेज दो। कहना अभी एकदम बड़ा ज़रूरी काम है।

नौकर चला गया। इंदिरा ने कहा--पिताजी बीमार थे ?

भगवती ने कहा—मुझे तो कुछ भी नहीं मालूम।

कामेश्वर के कमरे में घुसते ही इंदिरा ने कहा--तुमने सुना भैया ! जमींदार साहब मृत्यु-शय्या पर पड़े हैं। उन्होंने भगवती को बुलाया है। लवंग ने मोटर भेजा है।

'लवग ने ?' कामेश्वर ने चौंककर कहा।

'क्यों विस्मय हो रहा है ? क्या तुम समझते थे लवंग सिर्फ़ अभिमान का पत्थर है ? स्वार्थ में पड़कर कौन क्या-क्या नहीं करता। किंतु यदि मनुष्य अपने पाप का प्रायश्चित्त अपने आप करता है तो क्या उसे उसका भी अधिकार नहीं ?'

भगवती ने कहा—तो तुम समझती हो इसमें कोई चाल नहीं है ?

'मैं क्या जानूँ ?' इंदिरा ने उत्तर दिया।

'तो फिर तुम कैसे कह सकती हो कि इसमें मुझे अपमानित करने का कोई नया षडयंत्र नहीं है ?'

कामेश्वर ने कहा—लेकिन ज़मींदार साहब मृत्युशय्या पर हैं। उन्होंने तुम्हें याद किया है।

'किसलिए ?' भगवती ने कठोर स्वर से पूछा।

'क्योंकि वे तुम्हारे पिता हैं।'

'पिता ?' भगवती ठठाकर हँसा। इंदिरा ने उसकी ग्लानि को समझा।

उसके चुप होने पर कामेश्वर ने कहा—भगवती ! एक कहना मानोगे ?

भगवती ने शुष्क होकर कहा—क्या ?

'मुझे संदेह है। पहले वादा करो।'

'नहीं। पहले मैं जानना चाहता हूँ कि तुम मुझसे क्या कहना चाहते हो ?'

इंदिरा ने बढ़कर कहा—'भगवती ! क्या तुम मुझपर भी अविश्वास करते हो ?'

'नहीं' भगवती ने कहा—'अविश्वास मैं कामेश्वर पर भी नहीं करता। किंतु जहाँ तुम लोगों के विचार भोंथरे हो जाते हैं, वहाँ मैं क्या कर सकता हूँ ?'

कामेश्वर ने टोककर कहा—'यह समय इन बातों का नहीं है भगवती ! तुम्हें चलना ही होगा।'

भगवती चौंक उठा। उसने कहा—मैं ? मैं उन लोगों को सदा के लिए छोड़ आया हूँ। मा से बढ़कर तो और कोई न था। जब उसे भी मैंने छोड़ दिया तो फिर बंधनों को आवश्यकता ?

'तब तो तुम्हारे बराबर कोई अकृतज्ञ नहीं।' इंदिरा ने तीखे स्वर से कहा—जिसने तुम्हारे लिए अपने आपको इस तरह घुलाया है, तुम्हारे सम्मान को जीवित रखने के लिए अपने आपकी बलि दी है, तुम उसे इतनी सरलता से नहीं टाल सकते। किसलिए उसने संसार का विरोध सहा ? किसलिए उसने ख़ून के घूँट पीकर भी कभी तुम्हें आँखों में एक भी आँसू छलका कर नहीं दिखाया ? किसलिए उसने अपने जीवन की सबसे बड़ी साधना को, अपने अरमानों को, निर्मलता की चट्टानों पर सिर पटक-पटककर चूर हो जाने दिया ? किसलिए उसने भूखे मरकर भी अपनी मर्यादा को नीचे नहीं गिराया ? किसलिए उसने ज़मींदार साहब से कभी भी अपने लिए धन नहीं लिया ? किसलिए उसने अंतिम समय तक उनसे केवल उधार ही माँगा ? भीख तो नहीं ली ? तुम समाज के इन बंधनों से घृणा करते हो ? और उन बंधनों के परे कभी मनुष्य को मनुष्य के रूप में सोच भी नहीं पाते ? क्या यह सब इसी लिए था कि एक दिन तुम समर्थ होकर अपनी मा को, स्नेह और ममता से पराजित मा को कठोर बनकर घृणा से ठोकर मार दो। यदि तुम घृणा के पात्र

नहीं हो तो वह कैसे हुई ? तुम्हारी इस निर्बलता से मा का तो कुछ नहीं बिगड़ता। जिस स्त्री के प्रेमी ने उसे धोखा दिया, समाज ने जिसके हृदय को पत्थर से कुचल कर उसे दूसरे व्यक्ति से बाँधकर उससे व्यभिचार कराया, जिसने फिर भी सब कुछ सहा, उसका तुम क्या बिगाड़ सकोगे ? एक बात और होगी कि प्रेमी की जिस छाया के लिए उसने एक-एक करवट से अनेक-अनेक रातें जागकर बिता दीं उसने भी उसका अपमान किया, उसने भी उससे घृणा की, क्योंकि वह समाज का दास था, उसी समाज का जिसने स्वयं उसे ही घृणित करार दिया।

भगवती ने व्याकुल होकर कहा—लेकिन उस पिता की तो कोई बात नहीं; जिसने जीवन भर अपने पुत्र को अपने पास नहीं बुलाया, आज वह इतना व्याकुल क्यों हो गया ? मृत्यु की याचना क्या जीवन के दान से अधिक है ? जिसने जीवन भर अपने हृदय को छला है आज वह यह क्या करना चाहता है ? यदि वह कुछ ही घड़ियों का अभिमान है तो उसे भी क्यों नहीं चूर हो जाने देतीं ?

इंदिरा हँस दी। उसने कहा—यह तो अभिमान की कोई वेला नहीं ? आज तो तुम्हें जाना ही होगा।

उसके स्वर में ऐसी आज्ञा थी कि भगवती सकपका गया। इसी समय कामेश्वर की माता ने प्रवेश किया। उन्हें देखकर तीनों खड़े हो गये। उन्होंने बैठते हुए कहा—क्या बात हो गई ? क्यों लड़ रहे हो तुम लोग ?

इंदिरा ने कहा—देखो न ममी। इनके पिताजी मृत्यु-शय्या पर पड़े हैं। लवंग ने इन्हें लेने को मोटर भेजी है। लेकिन यह जाने से इंकार कर रहे हैं।

मा ने कहा—भगवती बेटा ! मैं सब जानती हूँ। सब कुछ जानती हूँ। लेकिन आज तो रूठने का कोई समय नहीं। फिर भी वह तुम्हारे मा-बाप हैं। इस बात को तुम आज नहीं सोच सकते, क्योंकि तुम पिता का हृदय नहीं समझ सकते।

कामेश्वर काँप उठा। उसने अपने आपको मुश्किल से सँभाला।

भगवती ने काँपते स्वर से कहा—तो क्या आप भी यही चाहती हैं कि मैं सचमुच वहाँ जाऊँ ?

'क्यों नहीं ?' मा ने कहा—तुम न रहोगे तो वहाँ रहकर कोई भी क्या करेगा ? पिता पुत्र के काम न आया न सही, लेकिन पुत्र अपना हक क्यों छोड़ दे। क्या तुम उनके खून और मांस से नहीं बने हो ? यह बंधन साधारण नहीं होते।

तभी वह जीवन भर की झूठ को आज तोड़ देना चाहते हैं, तभी तो मृत्यु शैय्या पर उनके प्राण तड़प रहे हैं कि वे अपने बेटे का मुख आज देख जायें।

उनकी आँखों में एक तरलता छा गई। उन्होंने फिर कहा—उठो भैया! आज नहीं, आज इस अभिमान की कोई आवश्यकता नहीं। इंदिरा, कामेश्वर जाओ! तुम दोनों भाई-बहिन भी इसके साथ जाओ। बेचारा कितना अकेलापन अनुभव कर रहा है।

× × ×

मोटर वेग से भागी जा रही थी। तीनों स्तब्ध बैठे थे। जैसे आज बोलने को कुछ भी नहीं रहा।

पहिये तेजी से घूम रहे हैं। धूल के दीर्घ गुबार पीछे उड़ते चले आ रहे हैं जैसे आज भागते हुए जीवन का प्रबल वात्याचक्र पीछा कर रहा है, जैसे धूमकेतु के पीछे उसकी जगमगाती जलती पूँछ घिसट रही है।

इंदिरा सोच रही है, कामेश्वर सोच रहा है, भगवती सोच रहा है। एक गुत्थी, एक उलझन, एक गंभीर अतल में निस्तब्ध लहरों का अंधकार। किसी का भी कोई अंत नहीं। एक दिन ऐसे ही इस खेल का प्रारंभ हुआ था, आज ऐसे ही अंत होनेवाला है।

साँझ, रात, उस तीव्र गति में फिसल रही हैं जैसे मोटर अनेक देशों को पार किये जा रही है।

क्या हुआ यदि एक व्यक्ति मर रहा है। कल सैकड़ों आदमियों को उसके लिए ज़बर्दस्ती शोक मनाना पड़ेगा। परसों सगे संबंधी कुत्तों की तरह जायदाद पर टूट पड़ेंगे। और तब लवंग क्या करेगी?

भगवती ने फिर मन-ही-मन कहा—जायदाद के लिए ही तो वह लौटकर गई है। क्या उसे छोड़ सकेगी? कभी नहीं। परिणाम होगा—मुक़दमेबाज़ी।

हृदय की भावनाओं की ऊष्मा का कचहरी में अंत देखकर भगवती मन-ही-मन हँसा। धनिक अपने धन के लिए रहते हैं। किसान मेहनत करते हैं और यह लोग मौज करते हैं, बुरे-से-बुरे प्रभाव समाज पर इनके अतिरिक्त और कोई नहीं डालता। जहाँ मनुष्य और मनुष्य समान नहीं हैं, जिनके वैभव के नीचे खेतिहर कभी भी

पेट भर करके खाना नहीं खा सकते, कभी अपने आपको सीधा खड़ा हुआ नहीं सोच सकते, सदा के दास, सदा के ग़ुलाम···

कितना अत्याचार। कितने पर्दों की आड़ में चलनेवाला अनाचार। एक व्यक्ति के लिए कितने बड़े समूह का बलिदान, जैसे वह समूह उसके बिना अपने पैरों पर खड़ा नहीं हो सकता, जीवित नहीं रह सकता, और उसके लिए और कोई राह नहीं है······

आपस में वे कहते रहें, मरते रहें, उनके अज्ञान पर यह अपनी होली जलाकर रंगों से फाग खेलें···

उनका अज्ञान बाप से बेटे तक पहुँचे, बेटे से बेटे के बेटे को पहुँचता रहे; जैसे इनकी यह ज़मींदारी पीढ़ी-पर-पीढ़ी उतरती रहे, क्योंकि यह ज़मीन उसकी है जो यदि जान जायेगा, संगठित होकर माँग बैठेगा, तो यह ज़मीन वास्तविक अधिकारी के हाथ में पहुँच जायेगी।

लाखों आदमी युद्ध-क्षेत्र पर मर रहे हैं। उनमें भी···

इंदिरा ने कहा—भगवती! वह देखो, दूर रोशनी दिखाई दे रही है। हम लोग क़रीब आ पहुँचे।

आकाश में उजाला फूट निकला ड्राइवर अब भी मशीन की तरह चिपका बैठा था। हवा के ठंडे-ठंडे झोंके आ-आकर मुँह पर बज रहे थे।

इंदिरा ने पूछा—ड्राइवर! अभी कितनी दूर है?

'बस आ ही गये। ड्राइवर ने सूखे स्वर से उत्तर दिया और झट से मोटर को मोड़ दिया।

गाड़ी रुकने का एक घर्र-घर्र-सा शब्द हुआ। तीनों उतर गये। चारों तरफ़ सन्नाटा छा रहा था। किसी ने ऊपर से झाँककर देखा और फिर वहाँ से हट गया।

नौकर-चाकर इधर-से-उधर पैर दबाकर चलते थे। ड्राइवर थक गया था। उसने कहा—जाइए सरकार! ऊपर ही चले जाइए। आज भी क्या कोई लेने आयेगा तब ही जायेंगे?

भगवती ने कुछ नहीं कहा। तीनों आगे बढ़ गये।

भगवती हिचक रहा था। क्या कहेगा वह पिता से!! पिता!!!!

इंदिरा उसकी हिचकिचाहट को समझ गई। उसने कहा—कितना सन्नाटा छा

रहा है। चलो भगवती! जल्दी चलो और उसने उसका हाथ पकड़कर कहा—हे भगवान्! तेरा ही भरोसा है।

उस समय पूरी तरह से भोर हो गया था। एकाएक हृदय पर एक चोट-सी हुई और एक आहत छाया उनके नयनों पर डोल उठी।

भगवती के पैर ठिठक गये। इंदिरा और कामेश्वर उसके पीछे स्तब्ध हो गये। ऊपर के कमरे में से रोने की ध्वनि आ रही थी। दीपक बुझ चुका था।

एकाएक सामने से आते पंडितजी ने देखा और रोते हुए पुकार उठे—आ गये बेटा? यह देखो, यह कौन सो रहा है? जगा नहीं सकते इसे? कह नहीं सकते कि ले अभिमानी, आज तेरा बेटा लौट आया है। अब तो आँखें खोल दे। क्यों? ऐसी नींद क्यों आ गई? तू तो कभी भी इतना निठुर नहीं था?

भीतर कमरे में से 'हाय' करके रोने की आवाज़ आई, जैसे अब कुछ नहीं रहा। सारा हृदय घुमड़कर बाहर निकल आना चाहता है। यह रुदन नहीं है। यह महीनों, सालों की स्मृतियों का आज भीषण हाहाकार मच रहा है, क्योंकि उनमें आग लग गई है। स्त्रियों के उस हृदय-वेधी क्रंदन को सुनकर इंदिरा रो दी।

भगवती ने भीतर जाकर देखा। वह एक यात्री अब सो रहा है। उसे जगाना नहीं, क्योंकि वह बहुत दिन तक चलते-चलते थक गया है। जो आशाएँ, जो अर-मान उसने बनाये थे वे आज भी आकाश में निर्धूम लटके तारों की तरह जल रहे थे, भटक रहे थे; उनमें से कोई पृथ्वी पर आकर उसकी आँखों के द्वार से उसके मन में नहीं समा सका।

भगवती ने सुना। लवंग कह रही थी—"भगवती! तुम्हारा नाम ले-लेकर रह गये। किंतु तुम जल्दी नहीं आ सके। अगर थोड़ी देर और पहले आते, तो वह साध भी पूरी हो जाती..."

और वह फिर रोने लगी। भगवती निश्चल खड़ा रहा।

लवंग ने ही फिर कहा—'मुझे पहले से मालूम होता तो मैं तभी मोटर भेज देती। मा ने भी नहीं कहा। एक शाम, एक रात तो ऐसी तड़प-तड़पकर बिताई है, बेटा! भगवती! आया सुंदर? आया न लवंग? नहीं आयेगा। वह कभी नहीं आयेगा। मैंने एक पाप ही नहीं किया। वह बदला ले रहा है, लेने दो उसे बदला,

हे परमात्मा, वह बालक है, उसे क्षमा कर देना ··आ जाते एक बार बेटा···तो मैं सुख से मर जाता···

चार बजे सुबह एक बार पूरी तरह से आँखें खोल दीं। इधर-उधर देखा। मा ने पानी पिलाया। ताक़त आई, पूछा—सुंदर, भगवती आ गया ?

मा ने कहा—मोटर लाने भेज दी है। आता होगा। निश्चय आयेगा। ऐसा कठोर वह कभी नहीं है, अवश्य आयेगा···

पर उन्होंने सिर हिलाकर कहा—वह कभी नहीं आयेगा! मेरे पास अब वह कभी नहीं आयेगा।

और सचमुच तुम कभी नहीं आये अभागे। किसके पास आये हो अब ? वह तो नहीं रहा जिसके पास तुम आना चाहते थे। वह तो अब नहीं रहा, जिसकी आँखों में तुम्हें देखकर स्नेह से पानी भर आता। वहाँ क्या देख रहे हो ? अरे वह तो मिट्टी है। हाय··'

और लवंग फिर ज़ार-ज़ार रो उठी।

गाँव की स्त्रियाँ इकट्ठी होने लगी थीं। इंदिरा ने फिर लवंग को सभाल लिया। सुंदर चुपचाप बैठी थी। रोयेगी भी नहीं, ऐसा मन सूख गया है।

लवंग ने फिर रोते-रोते कहा—"अब वह कभी नहीं लौटेंगे पागल! क्या देख रहे हो घूर-घूरकर। अंतिम शब्द तुम्हारा ही नाम था। उस अवस्था में, उस बेहोशी में भी वे तुम्हें नहीं भूल सके। तब मा ने कान पर चिल्लाकर कहा—भगवती आ गया है। देखो।

एक बार अधखुली आँखों से देखा। मा ने आँखों के सामने कृष्ण की तस्वीर रख दी। देखा और मुस्कराये। बाहर सुनाई दिया—पंडितजी ने कहा—सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।"

लवंग ने फिर धीरे से कहा—"और उसके बाद सब शेष हो गया।"

भगवती निश्चल ही खड़ा था। सुंदर ने देखा और कहा—भगवती!

भगवती ने मुड़कर देखा।

सुंदर ने कहा—तेरे पिता मर गये हैं।

भगवती तब फूट-फूटकर रो दिया।

× × ×

सारा गाँव इकट्ठा हो गया था। चारों ओर भविष्य के विषय में काना-फूसी हो रही थी। नाजायज़ बेटा आग देगा? यह तो अधरम है। फिर भी मरे शेर को देखकर कुत्ता दूर-ही-दूर से भूँका करता है। सगे-संबंधी इत्यादि अनेक लोग इकट्ठे हो गये थे। पंडितजी ने बाहर जाकर जमींदार साहब की अंतिम इच्छा बताई। भगवती को देखकर कुछ सगे-संबंधी, जिनकी इच्छा थी कि अब तो औरत है, उसे बनाकर सब हथिया लेंगे, मन-ही-मन क्षुब्ध हुए। पंडितजी ने सब बात समझकर यह भी फैला दिया कि ज़मींदार साहब वसीयतनामा लिख गये हैं।

सब दाहक्रिया समाप्त होते-होते साँझ की छायाएँ गिरने लगीं। तन और मन थक गये। आज जैसे घर काटने दौड़ रहा है। सब कुछ लुट चुका है। कितना लंबा हो गया है रास्ता मरघट से घर तक का!

घर पहुँचकर नहाने के बाद किसी ने कुछ भी नहीं खाया। लवंग और सुंदर भी भूखी बैठी थीं। उसी कमरे में ज़मीन पर फ़र्श बिछ गया था।

लवंग ने कहा—तुम आ गये भगवती, इसकी मुझे एक सांत्वना है। मैं समझती थी, तुम नहीं आओगे।

भगवती ने पूछा—'क्यों?'

'क्योंकि तुम मुझसे डरते थे, जैसे आदमी साँप के विष से डरता है।'

इंदिरा ने कहा—क्यों भगवती? जीत मेरी ही न हुई? यदि मैं तुमको आज यहाँ आने पर मजबूर न करती, तो क्या सदा के लिए ही पराजित नहीं हो जाते?

भगवती के उदास शोकातुर मुख पर क्षीण हँसी की एक चंचल रेखा काँप उठी और ऐसे ही लय हो गई जैसे बाहर आकाश में संध्या।

मगन ने लाकर उस स्थान पर दिया रख दिया जहाँ पर मृत्यु हुई थी। और दीप की हल्की ज्योति विराट् प्रकाश बन गई क्योंकि उन्हें लगा, वह जीवन के लिए मृत्यु का अंधकार दूर कर रही थी।

लवंग ने भगवती की ओर देखकर कहा—भगवती! मैंने तुमसे आज तक कभी प्रेम नहीं किया। और अब भी मैं नहीं सोचती कि मुझे तुमसे प्रेम करने का कोई कारणविशेष है। यदि तुम्हें यह गर्व हो कि तुमने जीवन भर कष्ट उठाये हैं तो आज मेरे ऊपर वह भी नहीं चल सकता। जानते हो क्यों? क्योंकि मैं एक विधवा हूँ। विवाह मैं कर सकती हूँ, किंतु मेरे स्थान की मर्यादा इसे कभी भी स्वीकार

नहीं करेगी इसी से मैं जीवन भर अपने को धोखा देने का प्रयत्न करूँगी। आशा है, परमात्मा मुझे अवश्य क्षमा कर देंगे।

भगवती ने हँसकर कहा—यह भी एक धोखा है। आध्यात्मवाद के चक्कर में अपने आपको मिटा देने का ढोंग किस लिए जब जीवन रहने के लिए मिला है? लेकिन उस तप का भी क्या होगा जो दूसरों की मेहनत पर पलता है।

इंदिरा ने चौंककर देखा।

लवंग ने बक्स खोलकर कहा—भगवती! पिताजी ने सारी जायदाद मेरे नाम कर दी है। लेकिन मेरे लिए यह व्यर्थ है। लो इसे! यह तुम्हारी है…।

सुंदर के मुँह से निकला लवंग!

'मा!' लवग ने हँसकर कहा—मेरे पास तुम हो तो मुझे और क्या चाहिए?

उसने भगवती के हाथ पर वसीयतनामा रख दिया। इंदिरा ने खोलकर पढ़ा। उसके मुँह से निकला—अरे!

सब चौंक गये। कामेश्वर ने कहा—क्या हुआ?

इंदिरा ने सोचा, क्या ज़मींदार चाल खेल गये? क्या यह भगवती की मा का षड्यंत्र है? उसने पूछा—लवंग! तुमने इसे पढ़ा है?

लवंग ने सरलता से उत्तर दिया—नहीं तो। क्यों?

भगवती हँसा। उसने हँसकर कहा—तुमने पढ़ा हो या नहीं। लेकिन मुझे इ... से कुछ भी नहीं चाहिए। दुःख का अंत व्यक्तिगत सुख नहीं है। दुःख के कारण का अंत ही दुःख का अंत है। मैं इस जीवन में नहीं पड़ता जहाँ मनुष्य मनुष्य नहीं रहता। जहाँ दूसरों की हड्डियों और ख़ून पर हँसनेवाला, अपने दिल की सलाह को भी अपने झूठे अभिमान और ढोंग की भयानक छलना में भूल जाता है। मैं इसे सबसे घृणा करता हूँ। इसलिए नहीं कि मैं इसमें पशु बन जाऊँगा, किंतु इसलिए कि मेरे कारण कितने ही व्यक्तियों को पशु बन जाना पड़ेगा।

'लेकिन' कामेश्वर ने चिल्लाकर कहा—जायदाद तो तुम्हारे नाम है।

फिर एक बार वज्रपात हुआ। सबको आशाओं के विपरीत लवग मुस्करा दी। भगवती ठठाकर हँस पड़ा। उसने कहा—तब तो त्याग करने का भी यश मिल गया! उसने मुड़कर कहा—लवंग! यह मेरा कुछ नहीं। यह सब तुम्हारा है।

लवंग ने सिर झुका लिया। सुंदर ने बढ़कर कहा—बेटा! आज तूने सिर ऊँचा कर दिया। मैं अपना सुख किससे कहूँ?

भगवती ने दोनों हाथ फैला दिये और गद्गद स्वर से कहा— मा!

और वह छोटा-सा शब्द अपनी विराट् गरिमा के कारण दूर-दूर तक गूँज किंतु देवताओं ने फिर भी आकाश से एक भी फूल नहीं गिराया।

इति